तृषा गई एक बूंद से
(पुस्तक का पूर्वनामः शांति की खोज)

प्रवचन-क्रम

1. शांति की खोज..2
2. सात चक्रों की साधना..23
3. संकल्प की कुंजी...39
4. सत्य की छाया है शांति...56
5. सत्य की खोज..73
6. परमात्मा की अनुभूति...87
7. जागरण के तीन सूत्र..104

तृषा गई एक बूंद से
पहला प्रवचन

शांति की खोज

मेरे प्रिय आत्मन्!
मनुष्यता क्या है? मनुष्य क्या है? एक प्यास, एक पुकार, एक अभीप्सा!
जीवन ही एक पुकार है। जीवन ही एक अभीप्सा है। जीवन ही एक आकांक्षा है। लेकिन आकांक्षा नरक की भी हो सकती है और स्वर्ग की भी। पुकार अंधकार
की भी हो सकती है और प्रकाश की भी। अभीप्सा सत्य की भी हो सकती है और असत्य की भी।
चाहे हमें ज्ञात हो और चाहे हमें ज्ञात न हो, अगर हमने अंधकार को पुकारा होगा, तो हम अशांत होते चले जाएंगे। अगर हमने असत्य को चाहा होगा, तो हम अशांत होते चले जाएंगे। अगर हमने गलत को चाहा होगा, तो शांत होना असंभव है। शांति छाया है--ठीक की चाह से पैदा होती है। सम्यक चाह से शांति पैदा होती है।
एक बीज अंकुरित होना चाहता है। अंकुरित हो जाए तो आनंद से भर जाएगा, अंकुरित न हो पाए तो अशांत और पीड़ा अनुभव करेगा। सरिता सागर होना चाहती है। सागर तक पहुंच जाए, असीम से मिल जाए, तो शांत हो जाएगी। न पहुंच पाए, भटक जाए मरुस्थलों में, तो अशांत हो जाएगी, दुखी हो जाएगी, पीड़ित हो जाएगी। किसी ऋषि ने गाया हैः हे परमात्मा! अंधकार से आलोक की तरफ ले चल! मृत्यु से अमृत की तरफ! असत्य से सत्य की तरफ! वही सारी मनुष्यता के प्राणों की आकांक्षा भी है, वही पुकार है। और अगर हम जीवन में शांत होते चले जा रहे हों, तो समझना चाहिए कि हम उस पुकार की तरफ चल रहे हैं जो जीवन के गहरे से गहरे प्राणों में छिपी है। और अगर हम अशांत हो रहे हों, तो जानना चाहिए कि हम गलत दिशा में जा रहे हैं, उलटी दिशा में जा रहे हैं। अशांति और शांति लक्ष्य नहीं हैं, केवल सूचक हैं, केवल लक्षण हैं। शांत मन खबर देता है इस बात की कि हम जिस दिशा में चल रहे हैं वही दिशा जीवन की दिशा है। अशांत मन खबर देता है इस बात की कि हम जहां चल रहे हैं वह जगह चलने की नहीं। हम जिस ओर जा रहे हैं वह जाने की मंजिल नहीं। हम जहां पहुंच रहे हैं वहां पहुंचने के लिए पैदा नहीं हुए।
अशांति और शांति लक्षण हैं--हमारे जीवन के विकास को सम्यक दिशा मिली
है या असम्यक दिशा मिल गई है। शांति लक्ष्य नहीं है। और जो लोग शांति को सीधा ही लक्ष्य बना लेते हैं वे कभी भी शांत नहीं हो पाते। अशांति को भी मिटाना सीधा संभव नहीं है। जो आदमी अशांति को ही मिटाने में लग जाता है वह और भी अशांत होता चला जाता है। अशांति सूचना है--जीवन उस दिशा में जा रहा है जहां जाने के लिए वह पैदा नहीं हुआ है। और शांति खबर है इस बात की कि हम चल पड़े उस मंदिर की तरफ जो कि जीवन का लक्ष्य है।
एक आदमी को बुखार है, शरीर उत्तप्त है, गरम है। शरीर की गर्मी बीमारी नहीं है, शरीर की गर्मी केवल खबर है कि शरीर के भीतर कोई बीमारी है। शरीर गर्म नहीं है तो खबर मिलती है कि शरीर के भीतर कोई बीमारी नहीं है। गर्मी खुद बीमारी नहीं है, केवल बीमारी की खबर है। गर्मी का न होना भी स्वास्थ्य नहीं है, सिर्फ खबर है कि भीतर जीवन स्वस्थ दिशा में चल रहा है। और अगर कोई आदमी अपने शरीर के बुखार को जबरदस्ती ठंडा करने की कोशिश में लग जाए, तो इससे बीमारी से मुक्त नहीं होगा, मर सकता है।
नहीं; शरीर का बुखार नहीं दूर करना पड़ता है। बुखार मित्र है, खबर देता
है कि भीतर बीमारी है; बीमारी की खबर लाता है। अगर शरीर उत्तप्त न हो और भीतर बीमारी बनी रहे, तो आदमी को पता ही नहीं चलेगा--कब बीमार हुआ, कब समाप्त हो गया।
अशांति ज्वर है, बुखार है, गर्मी है, जो चित्त पर घिर जाती है और खबर देती है कि तुम प्राणों को वहां ले जा रहे हो, जहां नहीं ले जाना है। शांति--बुखार का चला जाना है और खबर है कि प्राण उस दिशा में चलने लगे, जहां चलने के लिए पैदा हुए हैं। यह बात प्राथमिक रूप से समझ लेना जरूरी है, तो

आने वाले चार दिनों की "शांति की खोज" की यात्रा पूरी-पूरी स्पष्ट हो सकती है।
शांति को मत चाहिए और अशांति को दूर करने की कोशिश मत करिए। अशांति को समझिए और जीवन को बदलिए। जीवन की बदलाहट शांति का अपने आप आगमन बन जाती है।
जैसे कोई आदमी किसी बगीचे की तरफ घूमने निकले, वह जैसे-जैसे बगीचे के पास पहुंचने लगता है, वैसे ही ठंडी हवाएं उसे घेरने लगती हैं, वैसे ही फूलों की सुगंध उसके आस-पास मंडराने लगती है, पक्षियों के गीत सुनाई पड़ने लगते हैं। उसे विश्वास हो जाता है कि मैं बगीचे के पास पहुंच रहा हूं। पक्षियों के गीत आने लगे, ठंडी हवाएं आने लगीं, फूलों की सुगंध आने लगी। शांति परमात्मा के पास पहुंचने की खबर है। वह परमात्मा के बगीचे के पास उड़ने वाले फूलों की सुगंध है। और अशांति परमात्मा की तरफ पीठ करके चलने की खबर है। इसलिए मौलिक रूप से आदमी जिन कारणों को समझता है कि इनके कारण मैं अशांत हूं, वे कारण अशांति के कारण नहीं हैं।
अगर कोई आदमी समझता हो कि मैं इसलिए अशांत हूं कि मेरे पास धन नहीं है,
तो वह गलती में है। धन मिल जाएगा और अशांति कायम रहेगी। कोई आदमी समझता हो कि मेरे पास बहुत बड़ा मकान नहीं है इसलिए अशांत हूं। मकान मिल जाएगा और अशांति कायम रहेगी, बल्कि अशांति थोड़ी बढ़ जाएगी। क्योंकि मकान नहीं था, धन नहीं था, तब तक कम से कम एक राहत थी कि मैं इसलिए अशांत हूं कि मकान नहीं है, धन नहीं है। मकान और धन के हो जाने के बाद वह राहत भी छिन जाएगी। मकान भी मिल जाएगा, धन भी मिल जाएगा और अशांति अपनी जगह खड़ी रहेगी। और तब प्राण और भी बेचैन हो जाते हैं।
इसलिए दरिद्र की बेचैनी उतनी कभी नहीं होती जितनी समृद्ध की बेचैनी होती है। अमीर आदमी की तकलीफ को गरीब आदमी कभी भी नहीं पहचान पाता। बिना अमीर हुए पहचान पाना मुश्किल है। क्योंकि अमीर के पास गरीब का संतोष भी नहीं रह जाता कि मैं गरीब हूं, इसलिए अशांत हूं। कम से कम एक कारण तो पता रहता है कि मैं इसलिए अशांत हूं। किसी दिन गरीबी मिट जाएगी और शांति आ जाएगी।
लेकिन आज तक कोई आदमी गरीबी मिटाने से शांत नहीं हुआ है। गरीबी मिट जाती है, शांति तो नहीं आती, अशांति और बढ़ जाती है। क्योंकि पहली दफा यह पता चलता है कि धन के मिलने से अशांति के टूटने का कोई संबंध नहीं है। तब एक आशा भी टूट जाती है कि धन के मिलने से मैं शांत हो जाऊंगा।
इसीलिए जितना समाज धनिक होता चला जाता है, उतना ही समाज ज्यादा अशांत होता चला जाता है। आज अमेरिका से ज्यादा अशांत शायद दुनिया में कोई दूसरा समाज नहीं है। और अमेरिका के पास जैसी समृद्धि है वैसी मनुष्य के इतिहास में कभी किसी समाज, किसी देश के पास नहीं थी। बड़ी हैरानी होती है कि इतना सब तुम्हारे पास है, फिर तुम अशांत क्यों हो? हम अगर अशांत हैं तो समझ में आती है बात कि हमारे पास कुछ भी नहीं है।
लेकिन कुछ होने और न होने से शांति और अशांति का कोई संबंध नहीं है। मनुष्य के जीवन में शरीर है, मन है, आत्मा है। शरीर की जरूरतें हैं। अगर वे पूरी न हों, तो जीवन कष्टपूर्ण हो जाता है। शरीर की जरूरतें हैं-- रोटी है, कपड़ा है, मकान है--अगर शरीर को न मिलें, तो जीवन एक कष्ट की यात्रा बन जाएगा। शरीर पूरे वक्त खबर देगा कि मैं भूखा हूं, मैं नंगा हूं, दवा नहीं है, प्यास लगी है, पानी नहीं है, रोटी नहीं है। शरीर पूरे वक्त अभाव की खबर देगा। और अभाव की खबर जीवन को कष्ट से भर देती है। ख्याल रहेः अशांति से नहीं, कष्ट से!
यह हो सकता है, एक आदमी कष्ट में हो और अशांत न हो। और यह भी हो सकता है,
एक आदमी बिल्कुल कष्ट में न हो और अशांत हो। बल्कि अक्सर यही होता है। जो आदमी कष्ट में होता है उसे अशांति का पता ही नहीं चलता। कष्ट ही इतना उलझा लेता है कि अशांति पर ध्यान देने की सुविधा और फुरसत नहीं मिलती। जब सब कष्ट समाप्त हो जाते हैं, तब पहली दफा ध्यान आता है कि अशांति भी भीतर है। गरीब आदमी कष्ट में होता है। समृद्ध आदमी अशांति में होता है।
शरीर में कष्ट होते हैं, और अगर शरीर की जरूरतें पूरी हो जाएं तो शरीर में कष्ट का अभाव हो जाता है। लेकिन शरीर के तल पर सुख का कभी कोई अनुभव

नहीं होता। यह भी समझ लेना जरूरी है। शरीर में कष्ट हो सकते हैं, सुख शरीर में कभी नहीं होता। हां, कष्ट का अभाव हो जाए, कष्ट न हों, तो उसी को हम सुख समझ लेते हैं।
अगर पैर में कांटा गड़ा है तो तकलीफ होती है और पैर में कांटा न गड़ा हो
तो कोई आनंद नहीं होता। कि हम जाकर मोहल्ले में खबर करें कि आज मेरे पैर में कांटा नहीं गड़ा, मैं बहुत आनंद में हूं। कि आज मेरे सिर में दर्द नहीं हो रहा इसलिए आज मैं बड़ा सुखी हूं। सिर में दर्द होता है तो हम कष्ट में होते हैं, लेकिन सिर में दर्द न हो तो हम सुख में नहीं होते। यह शरीर के साथ समझ लेना बहुत उपयोगी है कि शरीर के तल पर सुख जैसी कोई चीज कभी होती ही नहीं; दुख होता है और दुख का अभाव होता है। दुख के अभाव को ही लोग सुख समझ लेते हैं। शरीर दुख दे सकता है, दुख नहीं दे सकता है; लेकिन सुख कभी भी नहीं दे सकता है।
इसलिए जो शरीर के तल पर ही जीते हैं उन्हें सुख का कभी कोई पता नहीं चलता। दुख का पता चलता है, दुख से बचने का पता चलता है। भूख लगी है तो कष्ट मालूम होता है, भूख मिट गई तो कष्ट मिट गया। बस शरीर यहीं ठहर जाता है। शरीर के बाद, शरीर के भीतर मन है। मन की हालत उलटी है। मन की भी जरूरतें हैं, मन की भी मांगें हैं, मन की भी भूख और प्यास है। साहित्य है, कला है, दर्शन है, संगीत है--वे सब मन की आकांक्षाएं हैं, मन की भूख और प्यास हैं। वह मन का भोजन है। लेकिन अगर किसी आदमी ने कालिदास का काव्य न पढ़ा हो, तो इसके कारण कोई कष्ट नहीं होता। या किसी आदमी ने अगर किसी बड़े कलाकार का सितार न सुना हो, तो इस कारण कोई कष्ट नहीं होता। नहीं तो आदमी एकदम मर जाए कष्ट से। क्योंकि इतनी चीजें हैं मन की दुनिया में जिनका हमें कोई पता ही नहीं।
मन की दुनिया में, जिस चीज का आपको पता नहीं है, अनुभव नहीं है, उसका कोई कष्ट नहीं होता; लेकिन पता चले तो सुख जरूर होता है। अगर आपको सितार सुनने मिल जाए तो सुख होता है। नहीं सुना था तब तक कोई कष्ट नहीं था। अगर आप काव्य नहीं समझते हैं, नहीं सुना है, नहीं समझा है, तो कोई कष्ट नहीं है। लेकिन सुनने मिल जाए तो सुख जरूर होता है।
मन के तल पर सुख है। एक बार सुख का अनुभव शुरू हो जाए और फिर सुख न मिले, तो सुख का अभाव मालूम पड़ता है; लोग उसी को मन का कष्ट समझ लेते हैं। शरीर के तल पर सुख नहीं होता, सिर्फ दुख का अभाव होता है। मन के तल पर सुख होता है और सुख का अभाव होता है, कष्ट जैसी कोई चीज नहीं होती।
लेकिन मन की एक और खूबी है। मन के तल पर जो सुख होते हैं, वे क्षण भर के लिए होते हैं, उससे ज्यादा कभी नहीं हो पाते। क्योंकि मन को जो सुख एक बार मिला, उसकी पुनरुक्ति से उसे सुख नहीं मिलता।
अगर आज आपने किसी वीणावादक से वीणा सुनी और कल फिर वही वीणा सुनाए, तो
आज जितना सुख हुआ था उतना कल नहीं होगा। और परसों फिर सुनाए, तो और भी कम होगा। और अगर दस-पांच दिन सुननी पड़े, तो जिससे पहले दिन सुख हुआ था उसी से दुख की प्रतीति शुरू हो जाएगी। और अगर दो-चार महीने सुनना पड़े, तो आप अपना सिर फोड़ लेंगे और भागना चाहेंगे कि अब मैं इसे नहीं सुनना चाहता हूं।
मन के तल पर मन प्रति बार नये सुख की आकांक्षा करता है। शरीर हमेशा पुराने ही सुख की आकांक्षा करता है, नये सुख की कभी नहीं। शरीर को अगर आप नया-नया रोज-रोज मौका दें, तो शरीर तकलीफ में पड़ जाता है। शरीर अगर रोज दस बजे रात सोता है, तो रोज दस बजे रात ही सो जाना चाहता है। और अगर ग्यारह बजे सुबह भोजन करता है, तो ठीक ग्यारह बजे ही भोजन कर लेना चाहता है। शरीर एक यंत्र की भांति है, वह रोज पुनरुक्ति चाहता है, रिपीटीशन चाहता है और उसमें जरा भी हेर-फेर नहीं चाहता। जिस आदमी के शरीर को रोज बदलाहट करनी पड़ती है, उस आदमी का शरीर बहुत तकलीफ में पड़ जाता है।
आधुनिक सभ्यता ने शरीर को इसीलिए नुकसान पहुंचाया है कि आधुनिक सभ्यता रोज शरीर को नया होने के लिए आग्रह करती है। और शरीर बेचारा पुराना ही रहना चाहता है। इसलिए गांवों के लोग जितने स्वस्थ दिखाई पड़ते हैं, उतना शहर का आदमी स्वस्थ नहीं दिखाई पड़ता। उसके शरीर को रोज नई जरूरत, नई व्यवस्था, नये नियम का पालन करना पड़ता है। शरीर मुश्किल में पड़ जाता है।

शरीर के पास समझ नहीं है कि वह रोज अपने को नया करने के लिए तैयार हो जाए। वह पुराने की ही मांग करता है।
मन, मन रोज नये की मांग करता है, वह पुराने से जरा भी राजी नहीं होना चाहता। जरा पुरानी पड़ी चीज और मन इनकार करने लगता है कि बस हो गया। उसे रोज नया मकान चाहिए, रोज नई कार चाहिए। और उसका वश चले तो रोज नई पत्नी चाहिए, रोज नया पति चाहिए। इसलिए जिन सभ्यताओं ने धीरे-धीरे मन के आधार पर निर्माण शुरू किया है, वहां तलाक की संख्या बढ़ती जानी अनिवार्य है। क्योंकि मन के आधार पर जीने वाली कोई भी सभ्यता स्थायी नहीं हो सकती। पुराने पूरब के देश शरीर के आधार पर जी रहे हैं। नये पश्चिम के देशों ने मन के आधार पर जीना शुरू किया है। मन रोज नई बात मांगता है।
मैंने सुना है, अमेरिका में एक अभिनेत्री ने अपने जीवन में बत्तीस विवाह किए। हमारी कल्पना के बाहर है! हमारे देश की पत्नी प्रार्थना करती है भगवान से कि आने वाले जन्म में भी यही पति उपलब्ध हो। अगर अमेरिका की पत्नी कोई प्रार्थना करेगी--हालांकि वह प्रार्थना ही नहीं करेगी--अगर वह प्रार्थना करेगी तो यही कि कम से कम इतना ध्यान रखना कि यही आदमी दुबारा न मिल जाए! अगले जन्म की बात का भरोसा भी नहीं है, इसलिए पत्नी होशियार है, वह इसी जन्म में उसे बदल लेना चाहती है।
जिस अभिनेत्री की मैंने बात की, जिसने बत्तीस विवाह किए, उसने इकतीसवां जो विवाह किया, पंद्रह दिन बाद पता चला कि यह आदमी एक बार पहले और उसका पति रह चुका है। क्योंकि इतनी जल्दी बदलाहट की दस-पंद्रह दिन में कि कहां फुरसत रही पहचानने की कि किसको पहचानूं!
हमारे मुल्क की पत्नी दस-पांच जन्मों के बाद भी आदमी को पकड़ लेगी हाथ
कि आप भूल गए? वह जन्मों-जन्मों तक पहचान रखेगी।
मन की आकांक्षा नित्य प्रतिपल नये की है। इसलिए मन पुराने से ऊब जाता
है और घबड़ा जाता है। अगर कोई प्रियजन आपको मिल जाए और आप उसे छाती से लगा लें, तो पहले क्षण बहुत आनंद की पुलक मालूम होगी। लेकिन वे मित्र अगर बहुत ही प्रेमी हों और छाती छोड़ने को राजी न हों, तो दो-तीन-चार मिनट के बाद घबड़ाहट शुरू हो जाएगी। वह आनंद की पुलक खो गई। और अगर वह आदमी बिल्कुल पागल हो--जैसा कि प्रेमी पागल होते हैं--और आधा घंटे तक आपको पकड़े ही रहे, तो आप अपनी या उसकी गर्दन दबा देने को उत्सुक हो जाएंगे। लेकिन क्या हुआ? यह आदमी आकर हृदय से लग गया था, बहुत सुखद मालूम पड़ा था, अब तकलीफ क्या हो गई? यह घबड़ाहट क्या हो गई? मन ऊब गया। शरीर कभी नहीं ऊबता है; मन सदा ऊब जाता है।
इसलिए आप जान कर हैरान होंगे कि बोर्डम जैसी चीज मनुष्य को छोड़ कर दुनिया के किसी और पशु में नहीं होती! आपने किसी भैंस को कभी बोर होते नहीं देखा होगा। या किसी कौवे को, या किसी कुत्ते को आप ऐसी हालत में नहीं देखे होंगे कि यह बोर हो गया, उदास हो गया, ऊब गया। नहीं; मनुष्य को छोड़ कर ऊबने वाला कोई प्राणी नहीं है। ऊब ही नहीं सकता कोई प्राणी, क्योंकि प्राणी सब शरीर के तल पर जीते हैं। शरीर के तल पर कोई ऊब नहीं होती; ऊब होती है मन के तल पर। और मन जितना विकसित होने लगता है, ऊब उतनी ही बढ़ने लगती है।
इसलिए पूरब के मुल्क इतने ऊबे हुए नहीं हैं, जितने पश्चिम के मुल्क ऊबे हुए हैं। और जब ऊब ज्यादा पैदा हो जाती है तो रोज नया सेंसेशन खोजना जरूरी हो जाता है, ताकि ऊब तोड़ी जा सके।
यह भी आपको जान कर हैरानी होगी कि आदमी अकेला ही प्राणी है जो ऊबता है
और आदमी अकेला ही प्राणी है जो हंसता है। आदमी को छोड़ कर दुनिया में और कोई जानवर हंसता नहीं! अगर रास्ते पर आप जा रहे हों और एक गधा हंसने लगे, तो फिर आप जिंदगी भर सो नहीं सकेंगे, इतने घबड़ा जाएंगे। क्योंकि हम अपेक्षा नहीं करते कि कोई जानवर हंसेगा। जो ऊबता नहीं है, वह हंसता भी नहीं है। हंसी ऊब को मिटाने की तरकीब है।
इसलिए जब आप ऊबे हुए होते हैं, तब चाहते हैं कि कोई मित्र मिल जाए, दो हंसी की बातें हो जाएं, थोड़ी ऊब कट जाए। आदमी को इतने मनोरंजन के साधनों की जरूरत इसलिए है कि आदमी इतना ऊब जाता है दिन भर में कि उसे कुछ मनोरंजन चाहिए। फिर मनोरंजन भी उबाने लगते हैं, तो नये ढंग के मनोरंजन चाहिए। फिर सब तरफ ऊब पैदा हो जाती है, तो युद्ध चाहिए। युद्ध से थोड़ी ऊब टूटती है।

आपने देखा होगा कि हिंदुस्तान और चीन का युद्ध हुआ, या हिंदुस्तान और पाकिस्तान का, तो कितनी चमक आ गई थी लोगों के चेहरों पर! आंखें कितनी रोशन मालूम पड़ती थीं! आदमी कितने ताजे और जिंदा मालूम पड़ते थे!
क्यों? जिंदगी इतनी ऊबी हुई है कि थोड़ी चहल-पहल हो जाती है, कुछ उपद्रव होने लगे; कहीं कोई दंगा-फसाद हो जाए, तो जिंदगी में थोड़ी रौनक आ जाती है, थोड़ी चमक आ जाती है; नींद थोड़ी टूट जाती है; लगता है कि अभी भी कुछ होने जैसा है, देखने जैसा है। अन्यथा सब देखा हुआ है, सब हो चुका है, वही दोहर रहा है, तो मन ऊब जाता है और मन घबड़ा जाता है।
यह आपको इसी के साथ--न कोई जानवर ऊबता है, न कोई जानवर हंसता है--और आपको ध्यान रहे, कोई जानवर स्युसाइड भी नहीं करता, आत्महत्या भी नहीं करता, सिर्फ आदमी को छोड़ कर। आदमी जिंदगी से इतना भी ऊब सकता है कि जिंदगी को खतम कर ले। और खतम करने में भी एक नयापन हो सकता है। खतम करना भी एक पुलक, एक सेंसेशन हो सकता है।
एक आदमी पर स्वीडन में एक मुकदमा चला। उसने समुद्र्र के तट पर बैठे हुए एक अपरिचित आदमी की पीठ में जाकर छुरा भोंक दिया। अदालत में उससे पूछा गया कि तुम्हारा इस आदमी से कोई झगड़ा था?
उसने कहा, झगड़े का सवाल नहीं; मैंने इस आदमी को कभी देखा ही नहीं! और छुरा मारने के पहले मैंने इसकी शक्ल ही नहीं देखी है! क्योंकि मैंने छुरा पीछे से मारा है, पीठ की तरफ से मारा है।
वह जज ने पूछा कि बड़े पागल हो! फिर किसलिए तुमने छुरा मारा?
उसने कहा, मैं इतना ऊब गया था कि जिंदगी में कुछ होना चाहिए। और मैं अपने बचाव में कुछ नहीं चाहता हूं। अगर मुझे फांसी हो सकती है, तो खुशी से मैं फांसी को देखने को तैयार हूं। क्योंकि जिंदगी में अब देखने लायक मुझे कुछ भी नहीं बचा है। सब देखा हुआ है। सब देखा जा चुका है। मौत भर एक नई चीज है। और हत्या मैंने कभी नहीं की थी, वह भी जरा देखने जैसी थी कि क्या होता है!
पश्चिम में हत्याएं बढ़ रही हैं, स्युसाइड बढ़ रहा है, आत्महत्या बढ़ रही है, अपराध बढ़ रहे हैं। उसका कारण यह नहीं है कि पश्चिम अपराधी हो रहा है। उसका कुल कारण यह है कि पश्चिम के जीवन में इतनी उदासी और ऊब है कि बिना अपराध किए उस ऊब को तोड़ने का और कोई उपाय नहीं सूझता है।
अभी मैंने सुना कि अमेरिका में उन्होंने एक नया खेल निकाला है। वह खेल बहुत खतरनाक है। और जब सभ्यताएं बहुत ऊब जाती हैं, तब इस तरह के खेल ईजाद करती हैं। वह खेल है कि दो कारों को पूरी शक्ति और तेजी से दौड़ाते हैं और दोनों के चाक रास्ते के बीच पर जो निशान बना होता है उस पर रखते हैं। एक इस तरफ से, दूसरा दूसरी तरफ से। पूरी शक्ति से दौड़ती हुई कारों को कौन पहले हटा लेता है एक्सीडेंट के डर से, वह हार जाता है; जो पहले नहीं हटाता, वह जीत जाता है।
अब अगर सौ या एक सौ बीस मील की रफ्तार से दो गाड़ियां आ रही हैं और दोनों के चाक एक ही लकीर पर हैं, तो प्राणों को बड़ा संकट है। कौन पहले हटेगा नीचे! जो हटेगा वह हार जाएगा। यह सभ्यता बहुत ऊब पर पहुंच गई है। अब जिंदगी को दांव पर लगाए बिना कोई रस मालूम नहीं पड़ता है।
इसीलिए सभ्यता जब ऊबने लगती है, तो जुआ पैदा होता है, शराब पैदा होती है, दांव पैदा होते हैं। जब कोई समाज बहुत जुआ खेलने लगे तो समझना चाहिए कि समाज बहुत ऊब गया है। अब बिना दांव पर लगाए, खतरे में पड़े, उसे कोई रास्ता नहीं मालूम पड़ता जिससे कुछ नई बात होने की संभावना पैदा हो जाए।
मन की दुनिया में चीजें रोज ऊब जाती हैं। और मन एक क्षण से ज्यादा किसी सुख को अनुभव नहीं कर पाता। एक क्षण बीता और सुख दुख हो जाता है। शरीर के तल पर कोई दुख नहीं है, कोई सुख नहीं है, कष्ट का अभाव है। मन के तल पर सुख होते हैं, लेकिन बिल्कुल क्षणिक होते हैं और एक क्षण में ही डूब जाते हैं और समाप्त हो जाते हैं। इसीलिए तो जिस चीज को पाने के लिए हम बिल्कुल पागल होते हैं कि सब कुछ लगा देंगे, वह मुट्ठी में आ जाए, हम एकदम उदास हो जाएंगे।
आप एक बहुत बढ़िया मकान खरीदना चाहते हैं। खरीद लें, और फिर अचानक पाएंगे कि सब खत्म हो गई बात। वह पुलक, वह दौड़, वह तेजी, वह खुशी जो पाने की

खोज में थी वह गई, मिलते ही गई। जो भी आप पाना चाहते हैं, पाते ही निराश हो जाएंगे। क्योंकि पाने में एक क्षण तो खुशी होगी, और एक क्षण के बाद सब पुराना पड़ जाएगा और सब बात वहीं खड़ी हो जाएगी।
मन के तल पर सुख हैं, लेकिन क्षणिक हैं। और जो आदमी शरीर और मन के बीच
ही जीता है वह आदमी हमेशा अशांति में जीएगा। क्योंकि जिस आदमी को शाश्वत सुख की झलक नहीं मिली, वह आदमी शांत कैसे हो सकता है? और मन और शरीर, दोनों तलों पर कोई शाश्वत सुख की झलक उपलब्ध नहीं हो सकती।
लेकिन फिर भी शरीर के तल पर जीने वाले एक अर्थों में शांत मालूम पड़ेंगे--मरे हुए शांत।
शांति दो तरह की होती हैः एक जीवंत, जीती; एक मुर्दा, मरी हुई। मरघट पर जाएं, वहां भी एक शांति है। लेकिन वह कब्रों की शांति है। वह शांति इसलिए है कि वहां कोई है ही नहीं जो अशांत हो सके।
बुद्ध एक गांव के बाहर ठहरे थे दस हजार भिक्षुओं को लेकर। उस गांव के राजा को उसके मित्रों ने कहा कि बुद्ध का आगमन हुआ है, आप भी चलें! दस हजार भिक्षु साथ में आए हुए हैं।
वह राजा बुद्ध के दर्शन करने गया। सांझ हो गई है, रास्ते में अंधेरा घिरने लगा है। वे पास पहुंच गए आम्रवन के, जहां बुद्ध ठहरे हैं, उनके दस हजार भिक्षु ठहरे हैं। अचानक उस राजा ने अपनी तलवार निकाल ली और अपने मित्रों को कहा कि मालूम होता है तुम मुझे धोखा देना चाहते हो! जहां दस हजार लोग ठहरे हों, हम इतने पास पहुंच गए, वहां कोई आवाज नहीं है! वहां इतनी शांति मालूम होती है! तुम कोई धोखा तो नहीं देना चाहते हो? वे मित्र कहने लगे कि आप बुद्ध और उनके मित्रों से परिचित नहीं हैं। आपने मरघट की शांति देखी है, आप जीवित शांति देखिए। दस हजार लोग उस बगीचे में हैं, आप चलें, अविश्वास न करें।
लेकिन वह राजा पग-पग पर डरने लगा--कहीं अंधेरे में वे धोखे में तो नहीं
ले जा रहे हैं! लेकिन वे मित्र कहने लगे, आप न घबड़ाएं, आप आएं, सच में ही वहां दस हजार लोग हैं। दस हजार लोग और वहां ऐसा सन्नाटा कि जैसे कोई न हो! वह बुद्ध के पास जब गया तो उनके चरणों में सिर रख कर वह कहने लगा, मैं हैरान हूं, दस हजार लोग! दस हजार लोग बैठे हैं वहां वृक्षों के नीचे और वहां परिपूर्ण सन्नाटा है जैसे कोई न हो!
तो बुद्ध ने कहा, तू सिर्फ मरघट की शांति ही पहचानता है मालूम होता है। जीवित शांति भी एक शांति है।
जो लोग शरीर के तल पर जीते हैं, एक अर्थ में शांत हैं। पशु शांत हैं; पशु अशांत नहीं हैं। कुछ मनुष्य भी शरीर के तल पर जीकर शांत होंगे। खाना खा लेंगे, कपड़े पहन लेंगे, सो जाएंगे; फिर खाना खा लेंगे, फिर कपड़े पहन लेंगे, फिर सो जाएंगे। लेकिन ऐसा संतोष शांति नहीं है; ऐसा संतोष सिर्फ चेतना का अभाव है। होश नहीं है। भीतर जैसे एक मुर्दा की हालत है, एक मरे हुए आदमी की स्थिति है।
सुकरात से किसी ने कहा कि तू इतना अशांत है सुकरात, इससे तो अच्छा होता एक सुअर हो जाता। सुकरात होने से क्या फायदा? सुअर गांव के किनारे घूमते हैं और कितने शांत हैं! डबरों में पड़े रहते हैं, कुछ भी खा-पी लेते हैं और कितने प्रसन्न और शांत मालूम पड़ते हैं!
सुकरात ने कहा कि मैं एक असंतुष्ट सुकरात होना पसंद करूंगा बजाय एक संतुष्ट सुअर के। सुअर संतुष्ट जरूर है, लेकिन इसलिए संतुष्ट है कि शरीर के ऊपर की कोई प्यास, कोई पुकार उसके जीवन में नहीं है। वह है ही नहीं एक अर्थों में। मैं असंतुष्ट जरूर हूं, क्योंकि एक पुकार मुझे खींच रही है। और ऊपर एक शांति है, उसे पुकार रहा हूं मैं, इसलिए असंतुष्ट हूं। और जब तक उसे नहीं पा लूंगा, असंतुष्ट रहूंगा। लेकिन मैं इस असंतोष को ही लेना चाहता हूं। इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूं।
हममें से जो लोग शरीर के तल पर ही संतुष्ट हो जाते हैं, उनकी स्थिति पशुओं से बहुत भिन्न नहीं हो सकती।
पशु का अर्थ हैः शरीर के तल पर ही संतुष्ट हो जाना, शांत हो जाना।
मनुष्य का अर्थ हैः मन के तल पर अशांत होना। और देवता का अर्थ हैः आत्मा के तल पर शांत हो जाना।

शरीर और आत्मा के बीच में मन है। मन की दुनिया में क्षण भर को सुख की झलक मिलती है। वह झलक क्षण भर की कहां से आती है? वह क्षण भर की झलक भी आत्मा से ही आती है। मन क्षण भर को अगर मौन हो जाता है तो आत्मा से क्षण भर को आनंद की झलक नीचे उतर आती है। उस मौन में वह शांति झलक जाती है। जैसे अंधेरी रात में कोई बिजली चमक जाए, तो एक क्षण को उजाला हो जाता है, फिर घुप्प अंधेरा हो जाता है। मन तो अंधकार है, लेकिन किन्हीं भी क्षणों में अगर एक क्षण को मन चुप हो जाए, तो पीछे छिपी आत्मा की रोशनी उतर आती है।
एक प्रियजन आपको मिला, एक क्षण को हृदय की धड़कन रुक गई, एक क्षण को मन
के विचार रुक गए, आपने उसे गले से लगा लिया। एक क्षण को सब रुक गया और आत्मा की झलक भीतर प्रवेश कर गई। पर एक ही क्षण को। फिर मन काम शुरू कर दिया, फिर मन ने दौड़ शुरू कर दी, फिर विचार आ गए, फिर सब दुनिया शुरू हो गई। फिर आप वहीं खड़े हो गए। फिर वह आदमी जो गले से लगा हुआ है, उबाने वाला हो गया; हटने का मन होने लगा कि हट जाऊं। वह जो प्रियजन के मिलने पर शांति की और आनंद की थोड़ी सी झलक मिली थी, वह प्रियजन से नहीं मिली थी, प्रियजन केवल अवसर बना था, मिली आपके ही भीतर से थी।
संगीत सुन कर जो क्षण भर को मन शांत हो जाए, तो झलक भीतर से उतरनी शुरू
हो जाती है। और आप सोचते होंगे कि सितार के बजने से मिल रही है वह शांति, तो आप गलती में हैं। सितार के बजने से केवल एक अवसर उपस्थित हुआ है और मन मुक्त हो गया और चुप हो गया है। मन के चुप होते ही भीतर की शांति उतर आई है। शांति सदा भीतर से उतरती है, आनंद सदा भीतर से उतरता है। लेकिन मन के लिए अगर बाहर से अवसर मिल जाए क्षण भर को, तो वह मौन हो सकता है। इस मौन होने की हालत में वह उतार भीतर से शुरू हो जाता है। मन चुप हुआ और भीतर से कुछ उतर आता है। इसीलिए मन क्षण भर को ही चुप होता है और क्षण भर को ही उतर पाता है, फिर सब खो जाता है।
लेकिन मन के पीछे आत्मा भी है। और इस आत्मा की जो दिशा है, इस आत्मा को उपलब्ध कर लेने का जो मार्ग है, इस आत्मा में प्रवेश हो जाने की जो चित्त-दशा है, वही चित्त-दशा आनंद को, शांति को, आलोक को उपलब्ध कराती है।
कैसे हम इस दिशा में प्रविष्ट हो जाएं?
एक छोटी सी घटना से मैं समझाने की कोशिश करूं।
मैं एक छोटे से गांव में पैदा हुआ। वह गांव तो बहुत छोटा है। उस गांव
के पास ही बहती हुई एक छोटी नदी भी है। वह नदी ऐसे तो साधारण है, लेकिन वर्षा में बहुत जानदार हो जाती है। वर्षा में, पहाड़ी नदी है, बहुत पानी उसमें आता है, उसका फैलाव कोई एक मील का हो जाता है। और बड़ी गर्जन से बहती है वर्षा में वह नदी। उस वर्षा की नदी को पार करना बड़ा मुश्किल है। लेकिन मुझे बचपन से ही उस नदी से प्रेम रहा है और वर्षा में भी पार करने का हमेशा शौक रहा है।
कोई पंद्रह या सोलह वर्ष का था, मित्रों के साथ तो कई बार वर्षा में उस नदी को पार किया था, लेकिन एक बार ख्याल आया कि रात अंधेरे में अकेले उसको पार किया जाए। बड़ी खतरनाक है! बड़ी तेज धार होती है! रात की अंधेरी रात में मैं दो बजे उसे पार करने को गया। जितना खतरा हो उतना आकर्षण भी होता है। अंधेरी रात थी। मैं उसमें उतरा। कितना श्रम किया उस पार पहुंचने के लिए, कोई दो मील बहता हुआ, चेष्टा, सारी चेष्टा की। लेकिन ऐसा लगने लगा कि जैसे दूसरा किनारा है ही नहीं। अंधेरे में किनारा दिखाई भी नहीं पड़े।
फिर थक गया। और ऐसा लगा कि आज बचना मुश्किल है। आखिरी चेष्टा की, आखिरी कोशिश की। जोर के थपेड़े हैं, अंधेरी रात है। दूसरा किनारा दिखाई नहीं पड़ता। और अब पहला किनारा भी बहुत पीछे छूट गया। अब लौटने का भी कोई अर्थ नहीं है। हो सकता है दूसरा किनारा ही पास हो और पिछला किनारा तो और भी दूर हो गया हो। और नदी जोर से बहाए ले जा रही है--कोई दो मील, तीन मील नीचे बह गया हूं। आखिरी कोशिश की। जितनी कोशिश की उतना ही लगा कि पहुंचना मुश्किल है। और फिर एक क्षण को ऐसा लगा कि मौत आ गई है; हाथ-पैर ने जवाब दे दिया; आंख बंद हो गई; लगा कि मर गया हूं; और समझ लिया कि बात खत्म हो गई है। कोई दो घंटे बाद आंख खुली तो किनारे पर पड़ा था, उस पार। लेकिन इस दो घंटे में कुछ हो गया--वह मैं कहना चाहता हूं। जैसे पुनर्जीवन हुआ। जैसे मरा और फिर वापस लौटा। जैसे ही मुझे यह लगा कि मर रहा हूं और मौत आ गई, तो

फिर मैंने सोचा कि जब मौत आ ही गई तो उसे शांति से देख लेना चाहिए कि वह क्या है।
आंख बंद करके मैंने हाथ-पैर छोड़ दिए। जैसे कोई--घुप्प अंधेरा तो था ही बाहर--जैसे भीतर भी कोई बहुत घुप्प अंधेरी गुहा में प्रवेश कर गया हूं। इतना गहरा अंधेरा पहले कभी नहीं देखा था!
बाहर अंधेरा है, लेकिन पूर्ण अंधेरा बाहर नहीं है। बाहर प्रकाश भी है, लेकिन बाहर पूर्ण प्रकाश नहीं है। बाहर का अंधेरा भी फीका है, बाहर का प्रकाश भी फीका है। अंधेरा पहली दफा दिखाई पड़ा कि कौन सा अंधेरा है जिसके लिए ऋषियों ने कहा होगा कि हे परमात्मा, अंधेरे से प्रकाश की तरफ ले चलो! तब तक मैं सोचता था यही अंधेरा जो बाहर घिर जाता है, इसी के लिए ऋषियों ने प्रार्थना की होगी कि परमात्मा, इस अंधेरे से प्रकाश की तरफ ले चलो! लेकिन मैं कई दफे सोचा कि इस अंधेरे को तो बिजली जला कर मिटाया जा सकता है। इसके लिए परमात्मा को कष्ट देने की क्या जरूरत? मैं बहुत बार हैरान हुआ था कि ऋषि बड़े नासमझ रहे होंगे। यह तो एक दीया जलाने से काम हो जाता, परमात्मा को पुकारने की क्या जरूरत थी? अवैज्ञानिक रहे होंगे। बुद्धि न रही होगी। नहीं तो दीया जला लेते और अपना काम कर लेते। अंधेरे को मिटाने की, परमात्मा से प्रार्थना करने की क्या जरूरत थी?
लेकिन उस दिन पहली दफा पता चला कि एक ऐसा अंधेरा है, जिसे दीये से नहीं मिटाया जा सकता, जहां तक दीया ले जाया नहीं जा सकता। पहली बार, किस अंधेरे के लिए आदमी के प्राणों की प्रार्थना रही है, वह समझ में आया। लेकिन उस अंधेरे को उसके पहले कभी जाना नहीं था। इतना घनघोर अंधेरा हो सकता है, इसकी कल्पना भी करनी मुश्किल है। चित्रकारों के पास इतना अंधेरा कोई रंग नहीं है। बाहर कुछ तो रोशनी हमेशा है। अगर चांद न होगा, तो तारे होंगे। अगर सूरज ढल गया होगा, आकाश में बादल छाए होंगे, तो भी सूरज की किरणें बादलों को पार करती होंगी। सच तो यह है कि बाहर का सब अंधेरा रिलेटिव है, सापेक्ष है; पूर्ण नहीं है, एब्सोल्यूट नहीं है। एब्सोल्यूट, पूर्ण अंधेरा क्या है, पूरी रात क्या है, वह पहली दफा ख्याल आया।
इतनी घबड़ाहट उस अंधेरे में मालूम हुई!
और तब मुझे समझ में आया कि बाहर का अंधेरा आदमी को इतना क्यों घबड़ाता है। बाहर के अंधेरे में कोई खतरा तो नहीं है। अंधेरी रात इतना क्यों घबड़ा देती है? और आदमी हजारों साल से अग्नि की पूजा क्यों करता है? तब मुझे लगा कि शायद बाहर का अंधेरा भीतर के अंधेरे की कोई धुंधली स्मृति दिलाता होगा। अन्यथा बाहर के अंधेरे में डर का कोई भी तो कारण नहीं है। और शायद बाहर जो दीये को जला कर और आग को जला कर और अग्नि की पूजा चल पड़ी होगी, वह भी किसी भीतर की अग्नि की तलाश का हिस्सा होगी।
अंधेरा पहली दफा देखा। और इतने जोर से उस अंधेरे में मैं चल रहा हूं--
वह अंधेरा और घना होता चला जा रहा है, और घना होता चला जा रहा है--और सारे प्राण तड़फड़ा रहे हैं। एक क्षण में हो गया होगा; बहुत देर नहीं लगी होगी। क्योंकि समय के भी स्केल, समय की भी धारणा, समय की भी तौल अलग-अलग है।
जब आप जागते हैं, तो घड़ी में जो कांटे चलते हैं, उनसे तौल चलती है। वह तौल भी बहुत पक्की तौल नहीं है। अगर आप सुख की हालत में हों, तो घड़ी के कांटे बहुत जल्दी घूम जाते हैं। और अगर दुख में हों, तो बहुत धीरे-धीरे घूमते हैं। अगर घर में कोई आदमी मर रहा है और आप उसकी खाट के पास बैठे हैं, तब देखिए कि घड़ी कैसी मरी हुई चलती है! चलती ही नहीं, ऐसा लगता है कि कांटे ठहर गए हैं, वहीं के वहीं हैं। रात लंबाती मालूम पड़ती है, रात बहुत लंबी हो जाती है, ऐसा कि जैसे अब इस रात का कोई अंत नहीं होगा!
घड़ी तो अपनी ही चाल से चलती होगी। घड़ी को क्या मतलब है कि आपके घर में कोई मरता है! लेकिन घड़ी लंबी मालूम होती है।
कोई प्रियजन मिल जाए बहुत दिन का बिछुड़ा हुआ, घड़ी एकदम छलांग लगाने लगती है; एक-एक सेकेंड नहीं चलती, एक-एक घंटे कूदने लगती है। रात ऐसे गुजर जाती है कि अभी तो सांझ हुई थी, अभी सुबह हो गई? इतने जल्दी? यह कैसे हो गया? और ऐसा लगता है कि घड़ी भी बहुत बाधा दे रही है प्रेम में। सारी दुनिया तो बाधा देती ही है, घड़ी भी बाधा दे रही है। इतने जल्दी गुजर जाती है रात।

बाहर भी सुख और दुख में घड़ी की चाल भिन्न हो जाती है। दुख जितना बड़ा हो, घड़ी की चाल उतनी लंबी हो जाती है। सुख जितना बड़ा हो, घड़ी की चाल उतनी धीमी हो जाती है। दुख अगर पूर्ण हो, तो घड़ी के कांटे खड़े हो जाएंगे, कभी नहीं चलेंगे! सुख अगर पूर्ण हो, तो भी घड़ी के कांटे एकदम घूम जाएंगे, पता ही नहीं चलेगा। कब घूम गए, वहीं दिखाई पड़ेंगे जहां पहले दिखाई पड़े थे।
फिर बाहर और भीतर भी टाइम, समय में फर्क पड़ता है। आप चौबीस घंटे गुजारते हैं। कभी एक क्षण को झपकी लग जाती है और एक सपना देखते हैं--कि आपका विवाह हो रहा है; बच्चे हो गए, लड़की बड़ी हो गई, उसकी शादी के लिए लड़का खोजने चल पड़े; लड़का खोज लिया है, लड़की का विवाह हो रहा है, और अचानक नींद टूट जाती है। घड़ी में देखते हैं कि सोए हुए अभी मुश्किल से एक मिनट हुआ था! झपकी एक मिनट लगी! एक मिनट में इतनी बड़ी प्रक्रिया कैसे हो गई? कि आपका विवाह हुआ, लड़की पैदा हुई, बड़ी हुई, उसका आप विवाह कर रहे हैं, उसको लड़का खोज लिया है, उसकी शादी-विवाह हो रही थी, बैंड-बाजे बज रहे थे। और अचानक नींद टूट गई! एक मिनट गुजरा बाहर और भीतर इतनी लंबी यात्रा कैसे हो गई? सपने में टाइम का मेजरमेंट, सपने में समय की गति भिन्न है, जागने में भिन्न है। यह उस दिन पता चला। इतनी तेजी से भीतर जाना शुरू हुआ और इतनी शीघ्रता से हो रहा है कि शायद समय ही नहीं लग रहा होगा। और प्राण तड़फड़ा रहे हैं कि कैसे इस अंधेरे के बाहर हो जाया जाए? कैसे इस अंधेरे के बाहर, कैसे अंधेरे के बाहर हो जाऊं? उस दिन पहली दफा पूरी प्यास मन में पकड़ी कि हे परमात्मा, अंधेरे के बाहर ले चल!
भीतर के अंधेरे का साक्षात न हो, तब तक यह प्यास पकड़ती भी नहीं। इन आने वाले दिनों में भीतर के अंधेरे के साक्षात के लिए हम कुछ कोशिश करेंगे। जिसे भीतर के अंधेरे का पता नहीं है, वह भीतर के प्रकाश के लिए कभी रोएगा नहीं, चिल्लाएगा नहीं, पुकारेगा नहीं।
वह कितनी देर उस अंधेरे में प्रवेश रहा। फिर जाकर एक द्वार पर सिर पीटने लगा हूं। आज तो कहता हूं तो बहुत लंबा मालूम पड़ता है। बहुत जोर से सिर पीट रहा हूंः दरवाजा खोलो! दरवाजा खोलो! कोई कह नहीं रहा हूं, भीतर कोई शब्द नहीं हैं, लेकिन प्राण पुकार रहे हैं। कुछ भीतर पुकार नहीं रहा हूं कि द्वार खोलो, ऐसा कुछ शब्द नहीं है भीतर। लेकिन सारे प्राण, रोआं-रोआं कह रहा है कि द्वार खोलो, मुझे बाहर निकल जाने दो!
जीसस का एक वचन सुना हैः नॉक, एंड दि डोर शैल बी ओपन। खटखटाओ, और द्वार खुल जाएंगे।
मैं सोचता था, इतनी सस्ती होगी बात क्या? कि खटखटाओ, और द्वार खुल जाएंगे? और परमात्मा के द्वार के लिए बात है यह! तो थपकी दो, और द्वार खुल जाएंगे? अगर ऐसी ही बात होती तो कौन आदमी राह चलते थपकी न दे देता! लेकिन उस दिन पता चला कि नॉक का मतलब क्या है।
सारे प्राण, सारी श्वास, सारा रोआं-रोआं चिल्लाने लगे। शब्दों में नहीं, भावों में! सारी आत्मा ठोंकने लगे द्वार को; तो द्वार जरूर खुल जाते हैं। द्वार खुल गए, और एक बिल्कुल दूसरा, ज्यादा बृहत्तर... अभी तो जैसे कोई एक टनल, एक गुफा, संकरी गुफा थी, जिससे निकल जाने को प्राण तड़फड़ाते थे। अब कुछ बड़ी गुफा है, जहां धीमा प्रकाश है। मन को थोड़ी राहत मिली है।
लेकिन आंख खोल कर उस धीमे प्रकाश को गौर से देखने पर--उस प्रकाश में बड़ी चहल-पहल है, भारी चहल-पहल है। रंग-बिरंगे बहुत से आकार घूम रहे हैं, भाग रहे हैं, दौड़ रहे हैं। और जैसे-जैसे उसमें आगे बढ़ा हूं--जैसे एक बहुत बाजार है, जहां बहुत भीड़-भाड़ है, जहां बहुत तरह के लोग हैं, इतनी चीजें घूम रही हैं। लेकिन चीजें बहुत अनूठी हैं, ऐसी चीजें पहले कभी नहीं देखीं।
सुना है कि प्लेटो यूनान में यह कहता था कि चीजें बाहर हैं, और चीजों
के रूप भीतर हैं, फॉर्म्स भीतर हैं। सुना था कि मन की दुनिया में सारी चीजों के रूप हैं।
आप मुझे बाहर दिखाई पड़ रहे हैं। मैं आंख बंद कर लूं, फिर भी आप दिखाई पड़ते हैं। आप तो बंद हो गए, आप तो बाहर रह गए। फिर कौन दिखाई पड़ता है भीतर? आपका कोई रूप भीतर रह गया, कोई थाट फॉर्म, कोई विचार-आकृति भीतर रह गई। बहुत विचार-आकृतियां हैं, जिनका मेला भरा हुआ है, जो दौड़ रहे हैं, भाग रहे हैं, चारों तरफ से घेर रहे हैं। इतना कोलाहल है! पहले तल पर घनघोर

अंधकार था, कोई कोलाहल नहीं था। दूसरे तल पर धीमी रोशनी है, लेकिन भयंकर कोलाहल है। कान फटने लगे हैं, इतनी तेज आवाजें हैं। इतनी तेज आवाजें हैं कि उनसे भी बच जाना जरूरी है, नहीं तो आदमी पागल हो जाएगा।
बाद में यह ख्याल आया कि पहला अंधकार का तल शरीर का तल रहा होगा। दूसरा तल मन का तल रहा होगा। शरीर के तल पर घनघोर अंधकार है। मन के तल पर घनघोर आवाजें हैं। शरीर एक टनल, एक छोटी गुफा है। मन एक विस्तार है। लेकिन विस्तार में बहुत भीड़ है, बहुत रंग हैं, बहुत ध्वनियां हैं, बहुत सुगंधें हैं। जो भी जाना हो, जो भी जीया हो, वह सब वहां मौजूद है, वहां कुछ मरता नहीं। अनंत-अनंत जन्मों में भी जो जाना होगा, जो जीया होगा, वह सब वहां मौजूद है। मन एक अदभुत संग्रह है सारे जन्मों का। वे सारे लोग जो मित्र रहे होंगे, वे सारे लोग जो शत्रु रहे होंगे, वे सारी बातें जो सुनी होंगी, वे सारी बातें जो कही होंगी, जो घटनाएं गुजरी होंगी, जीवन में जो-जो हुआ होगा--वह सब वहां जैसे इकट्ठा है। एक बहुत बड़े विस्तार में बहुत बड़ी भीड़ है और वह सब आवाज से भरी हुई, सब ध्वनियों से भरी हुई। वह भी घबड़ाने वाली और पागल करने वाली है।
क्या यही है असत--यह जो चारों तरफ से घेर रहा है और विक्षिप्त किए दे रहा है? और फिर वही पुकार है कि और आगे, और आगे, और आगे! दौड़ जारी है। फिर द्वार है, फिर सिर पटकना है, फिर चिल्लाना है, फिर द्वार का खुल जाना है। और एक तीसरी दुनिया--जहां कोई सीमा नहीं; जहां कोई अंधकार नहीं; जहां कोई ध्वनि नहीं; जहां कोई प्रकाश नहीं। जहां न अंधकार है, जहां न प्रकाश है। क्योंकि जिस प्रकाश को हम जानते हैं वह भी अंधकार का रूप है और जिस अंधकार को हम जानते हैं वह भी प्रकाश का रूप है। यहां कुछ है जिसे प्रकाश कहते भी मन डरता है, क्योंकि प्रकाश उसके सामने कुछ भी नहीं है।
लेकिन एक क्षण को, और एक आनंद की लहर सारे प्राणों में छा गई, और फिर वापसी और मैंने आंख खोली तो मैं किनारे पर पड़ा हूं। एक क्षण को लगा कि जैसे कोई सपना देखा। विश्वास नहीं आया कि जो हुआ, वह हुआ। बहुत सोचा, लेकिन हाथ में तो कुछ भी न था, सपना ही रहा होगा। लेकिन वह सपना फिर पीछा करने लगा।
फिर बहुत उपाय करके उस सपने की खोज जारी रही। और धीरे-धीरे उस दिन जो अचानक मृत्यु की घड़ी में घटित हो गया था, वह फिर सहज होना शुरू हो गया।
इन आने वाले तीन दिनों में उसी यात्रा पर आपको भी ले चलना चाहता हूं।
पहली यात्रा--शरीर के तल पर।
दूसरी यात्रा--मन के तल पर।
और तीसरा प्रवेश, तीसरी यात्रा--आत्मा के तल पर।
उसकी एक किरण की झलक भी मिल जाए--एक बार भी--फिर वह कभी भूलती नहीं। वही न्यूक्लिअस बन जाता है, फिर उसी के आस-पास सारा जीवन परिवर्तित होने लगता है। एक बार वहां की एक किरण उतर आए, और जीवन दूसरा हो जाता है, नया जन्म हो जाता है। और उसकी एक किरण उतर जाए तो सारे जीवन में शांति छा जाती है। फिर चाहे जीवन पर कितने ही उत्पात घटें--चाहे कोई छुरा लेकर छाती में भोंक दे, चाहे कोई गर्दन काट दे, चाहे कोई आग में जला दे, चाहे कोई अपमान करे, चाहे कोई सम्मान करे, चाहे कोई गालियां दे, चाहे कोई फूलों के हार डाले--फिर इस सब में कुछ फर्क नहीं रह जाता। जैसे सपने में सारी बातें हो रही हैं, होती हैं। भीतर शांति के उस तल पर कोई खबर नहीं पहुंचती। वहां शांति, वहां आनंद, वहां जो है वह अखंडित, अविचलित, अकंप बना रह जाता है। वहां पहुंचने का जो अनुभव जीवन में छा जाता है, उस अनुभव का नाम शांति है।
शांति मानसिक घटना नहीं है।
पश्चिम के सारे मनोवैज्ञानिक इस दृष्टि से बुनियादी रूप से भूल में हैं। पश्चिम के मनोवैज्ञानिक कोशिश कर रहे हैं आदमी को शांत करने की उसके मन के द्वारा। वे कभी भी सफल नहीं हो सकेंगे। शांति मानसिक घटना नहीं है। मन के तल पर ज्यादा से ज्यादा एडजेस्टमेंट हो सकता है, समायोजन हो सकता है। शांति कभी नहीं। शांति आध्यात्मिक घटना है, आध्यात्मिक उपलब्धि की छाया है।
इसलिए पश्चिम को शांति का कोई भी पता नहीं है कि शांति क्या है। और आज लाख चेष्टा चलती है मन को समझने की, उसकी बीमारियों को समझने की, उसके विचारों को समझने की, वृत्तियों को समझने की, मन की सारी की सारी स्थिति को

समझने की और मन को समझाने की, सुव्यवस्थित करने की। लेकिन वह चेष्टा शांति में ले जाने वाली नहीं होगी। शांति तो मन के ट्रांसेंडेंस से, मन के पार होने से, मन के अतीत होने से उपलब्ध होती है।
मन के तल पर कोई शांति नहीं। इसलिए मन की चाहे कितनी ही सुव्यवस्था की जाए, ज्यादा से ज्यादा इतना हो सकता है कि आदमी अशांति को सहने योग्य बन जाए, लेकिन शांत कभी नहीं बन सकता। अशांति को सहने योग्य बनना एक बात है, शांत हो जाना बिल्कुल दूसरी बात है। स्वस्थ होना एक बात है, बीमारी को सहने योग्य बन जाना बिल्कुल दूसरी बात है।
आज जितना मनसशास्त्र, जितना मनोविज्ञान चेष्टा कर रहा है, वह सारी की सारी चेष्टा मनुष्य को ज्यादा से ज्यादा सहने योग्य--अशांति को सहने योग्य बनाने में समर्थ कर सकती है, लेकिन शांत नहीं बना सकती। शांत तो मनुष्य बनता है तीसरे तल पर, आत्मा के तल पर। और क्यों आदमी शांत हो जाता है आत्मा के तल पर?
जैसे मैंने कहा, शरीर की भूख है कि रोटी चाहिए। मन की भूख हैः सुख चाहिए। वैसे ही आत्मा की भूख हैः परमात्मा चाहिए। परमात्मा आत्मा का भोजन है। और जिस दिन तीसरे तल पर प्रवेश होता है, उसी दिन वह मिल जाता है जिसे परमात्मा कहते हैं। उसके मिलते ही सारे जीवन में एक अपूर्व शांति छा जाती है उसके मिलन की। और उसका मिलन कुछ ऐसा नहीं है कि फिर खो सके। सच तो यह है, वह अभी भी खोया हुआ नहीं है; सिर्फ हमें पता नहीं है कि वह खोया हुआ नहीं है। उसे कभी खोया नहीं जा सकता। वह सदा है। भीतर है।
जैसे किसी के घर में खजाना रखा हो और वह घर के बाहर घूमता हो, और घूमता हो, और घूमता रहे। और जितना ज्यादा घूमे उतना ही भूल जाए भीतर जाने का रास्ता। और घूमने की आदत मजबूत होती चली जाए और बाहर का रास्ता लीक बन जाए। और वही रास्ता दिखाई पड़े और वह उस पर ही घूमता रहे, घूमता रहे, घूमता रहे। और धीरे-धीरे इतनी विस्मृति हो जाए कि भीतर कोई खजाना था, यह ख्याल ही भूल जाए। और बाहर घूमने की वजह से वह पूछता फिरे सारी दुनिया में कि खजाना कहां है? मैं क्या खोज रहा हूं, मैं क्या खोजना चाहता हूं, मुझे कुछ पता नहीं! और उसी खजाने के आस-पास घूमता चला जाए। आदमी करीब-करीब ऐसी हालत में है और इसीलिए अशांत है। जो उसका है, वही उसे नहीं मिल पाता है। जो उसको उपलब्ध है, उसको भी नहीं जान पाता है। जो वह है, उसकी भी खबर नहीं मिल पाती। और बाहर ही घूम कर जीवन नष्ट हो जाता है।
अशांति का अर्थ हैः बाहर घूमना।
शांति का अर्थ हैः भीतर प्रवेश।
लेकिन यह भीतर प्रवेश कैसे हो सकता है? यह भीतर प्रवेश बड़ी सरलता से
हो सकता है। लेकिन सरलता का मतलब सस्ता नहीं होता! सरलता का मतलब यह नहीं होता कि सस्ता हो सकता है। सच तो यह है कि सरलता से ज्यादा कठिन और कोई चीज जगत में दूसरी नहीं है। सरल होने से ज्यादा आरडुअस, कठिन और कुछ भी नहीं है। कठिन होना आसान है, सरल होना ही मुश्किल हो जाता है। क्योंकि सरल होने में अहंकार को कोई तृप्ति नहीं मिलती, कठिन होने में अहंकार को बड़ी तृप्ति मिलती है। सरल होने में अहंकार मर जाता है, कोई तृप्ति नहीं मिलती।
मैंने सुना है, इकहार्ट ने कहीं कहा है, कहीं कहा है कि टु बी आर्डिनरी इ.ज दि मोस्ट आरडुअस थिंग। साधारण होना सबसे कठिन बात है। और इकहार्ट जब मरा तो किसी ने कहा कि वह बहुत एक्सट्रा आर्डिनरी आदमी था, वह बहुत असाधारण आदमी था। कोई पूछने लगा, क्यों? तो उसने कहा कि वह बहुत साधारण था। इतना असाधारण आदमी इसीलिए था कि बिल्कुल साधारण था। इतना साधारण होना बहुत ही कठिन है। अजीब लगती है यह बात कि किसी आदमी को हम कहें कि वह बहुत असाधारण है, क्योंकि बिल्कुल साधारण है।
और ऐसे ही असाधारण और कठिन यह बात लगेगी कि बहुत सरल है। लेकिन सरल से
यह मत समझ लेना आप कि सस्ता है। सरल तो बहुत है, क्योंकि जो स्वभाव है उसको पाना कठिन नहीं हो सकता। जो हमारे भीतर ही है, उसे पाना कठिन नहीं हो सकता। जो हम ही हैं, उसे पाना कठिन नहीं हो सकता।
लेकिन बहुत कठिन हो गया है। क्योंकि बहुत जन्मों से हम एक ऐसे रास्ते
पर चल रहे हैं, जिस रास्ते का उससे कोई संबंध नहीं है। और वह यात्रा इतनी मजबूत होती चली गई है जन्म-जन्म, वह आदत इतनी मजबूत होती चली गई है कि अपनी

तरफ गर्दन मोड़ना ही मुश्किल हो गया है, पैरालिसिस हो गई है जैसे गर्दन में। जैसे किसी आदमी की गर्दन पैरालाइज्ड हो जाए, और उससे हम कहें--पीछे मुड़ कर देखो! वह कहे, बहुत कठिन है। हम कहें कि यह क्या कठिन बात है, पीछे गर्दन करो और देखो! वह कहे, वह आप कहते हैं, ठीक है, लेकिन मेरी गर्दन कुछ जड़ हो गई है, पीछे लौटती ही नहीं। जब तक कि मैं पूरा न लौट जाऊं, तब तक गर्दन नहीं लौटती, अकेली गर्दन नहीं लौटती। और आदमी अकेली गर्दन लौटा कर पीछे देखना चाहता है, इसलिए कभी भी पीछे नहीं लौट पाता; पूरे आदमी को लौटना पड़ता है, टोटल आदमी को लौटना होता है, तब लौटना होता है।
इसलिए धर्म समग्र जीवन का रूपांतरण है। धर्म कोई गर्दन को मोड़ लेना नहीं है। वह जैसा कवियों ने कहा है कि जब जरा गर्दन झुकाई और देख ली! ऐसी कोई तसवीर नहीं है वहां भीतर कि आपने गर्दन झुकाई और देख ली। गर्दन नहीं झुकती; पूरे ही आदमी को झुक जाना पड़ता है। वह पूरा टर्निंग है, वह पूरा कनवर्शन है। उसमें सिर्फ गर्दन नहीं झुकती, कोई एक हाथ-पैर नहीं झुकता, पूरा आदमी मुड़ जाता है। और पूरे आदमी का मुड़ना कैसे हो सकता है, वह मैं बात करूंगा।
लेकिन उसके पहले, क्योंकि हम रोज रात यहां ध्यान के लिए बैठेंगे। आज
भी ध्यान के लिए पंद्र्रह मिनट हम पीछे बैठेंगे, तो थोड़ा मैं ध्यान के लिए समझा दूं। और फिर कल से वह यात्रा कैसे हो सकती है एक-एक कदम, उस यात्रा को समझाने की कोशिश करूंगा। लेकिन समझाना उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना कि जो मैं कहूं उस पर थोड़ा प्रयोग करना है। वह प्रयोग हम अभी करेंगे, वह प्रयोग मैं आपको समझाऊं।
अभी हम ध्यान का एक प्रयोग शुरू करेंगे। वह प्रयोग ऐसे बहुत सरल है।
वह प्रयोग, स्वयं के भीतर जो सोए हुए हिस्से हैं उनको जगाने का प्रयोग है। स्वभावतः, अगर कोई सोया आदमी हो तो हम उसे पुकारते हैं। लेकिन हमें नाम मालूम हो तो हम नाम लेकर पुकार सकते हैं। और नाम अगर पता न हो तो हम क्या करेंगे? और हमें तो भीतर जो सोया है उसका कुछ भी पता नहीं है, कौन है? उसके नाम का कुछ पता नहीं। तो हम तो एक ही काम कर सकते हैं कि अपने प्राणपण से यह पूछें कि मैं कौन हूं? और अगर पूरी शक्ति से यह पूछा जाए कि मैं कौन हूं? तो धीरे-धीरे भीतर जो सोए हुए तल हैं, वे जागने लगेंगे। और जिस दिन भीतर तक यह प्रश्न पहुंच जाता है, अंतस तक--उस तीसरे द्वार तक--कि मैं कौन हूं? तो वहां जो बैठा है, वहां से उत्तर आना शुरू हो जाता है कि कौन हैं आप।
वह जिन लोगों ने कहा है, अहं ब्रह्मास्मि! मैं ब्रह्म हूं! वह किसी पुस्तकालय में बैठ कर किसी किताब में से उतार कर नहीं कह दिया है। पूछा है अपने से कि मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? पूछते ही चले गए हैं, सारे प्राण को डुबा दिया है इस पूछने में, इस इंक्वायरी में कि मैं कौन हूं? किसी दिन यह तीर घुसता चला गया भीतर और वहां से उत्तर आया कि मैं कौन हूं।
लेकिन हम सब बहुत होशियार लोग हैं। हम कहते हैं, हम क्यों मेहनत करें? किताब में लिखा हुआ है कि हम ब्रह्म हैं! उसी को याद कर लेंगे, झंझट में हम क्यों पड़ें? उसको कंठस्थ कर लेंगे। अगर सवाल उठेगा तो कह देंगे कि मैं ब्रह्म हूं! मैं आत्मा हूं! ये झूठे उत्तर... झूठे इसलिए नहीं कि जिन्होंने उत्तर दिए वे झूठे थे। झूठे इसलिए कि उत्तर आपके नहीं हैं! आपका जो उत्तर नहीं है वह झूठा है! किताबों से यह सीख लिया है कि मैं कौन हूं। और हमें कुछ भी पता नहीं है!
नहीं; परमात्मा के लिए खुद से ही पूछना होगा और खुद ही खोजना पड़ेगा।
और जिस दिन अपना उत्तर आता है, वही उत्तर है। उस उत्तर के आते ही सब कुछ और हो जाता है, सब कुछ और हो जाता है। जैसे अंधे आदमी को अपनी आंख मिल जाए, यह एक बात है। और अंधा आदमी दूसरे लोगों से सुन ले कि प्रकाश है और दोहराने लगे कि प्रकाश है, यह बात ही और है, इससे कोई संबंध ही नहीं है।
तो हम इधर पूछेंगे। और पूछना मुर्दा पूछना नहीं हो सकता, कि मरे-मरे पूछ रहे हैं कि मैं कौन हूं? ऐसे नहीं होगा। क्योंकि बहुत गहरी पर्तें हैं जहां आवाज पहुंचानी है।
अगर जंगल में आप भटक जाएं, अंधेरी रात हो, कोई साथी-संगी न हो, तो ऐसा पूछेंगे किसी झाड़ के नीचे, कोई है? यहां कोई है? ऐसा फिर नहीं पूछेंगे। फिर तो सारे प्राण लगा कर पूछेंगे कि कोई है यहां? मैं रास्ता भूल गया हूं! कि

जंगल का एक-एक पौधा कांपने लगे, एक-एक पहाड़ी गूंजने लगे, एक-एक घाटी पूछने लगे कि कोई है यहां? आप पूरी ताकत लगा देंगे।
उससे भी बड़ी भटकन है--जो जंगल में हो जाती है। क्योंकि जंगल में भटका आदमी कितनी देर भटका रह सकता है? सुबह घर लौट आएगा। न पूछे तो भी लौट आएगा। सूरज निकलेगा ही आखिर। लेकिन हम जिस जंगल में भटके हुए हैं वह बहुत जन्मों का है। न मालूम कितने जन्मों से भटके हैं। लेकिन इतने धीरे-धीरे पूछते हैं कि कहीं कोई रास्ता है, कि पूछने से ऐसा लगता है कि हमें कोई प्रयोजन नहीं है।
नहीं; यह पूछना टोटल हो सकता है। पार्शियल नहीं; खंड-खंड नहीं; छोटा- छोटा नहीं; पूर्ण हो सकता है। और यह आश्वासन है कि जो आदमी पूरी शक्ति से पूछे, आज और इसी वक्त भी उत्तर मिल सकता है, कल की क्या जरूरत है? लेकिन हमने कभी पूछा ही नहीं है! हमने कभी खोजा नहीं है! हम इसी ख्याल में हैं कि कहीं से उधार, कहीं से बारोड कुछ मिल जाए।
नहीं; सत्य की दिशा में कुछ भी उधार नहीं मिलता है, आनंद की दिशा में किसी दूसरे से कुछ भी नहीं मिलता है। अपना ही श्रम, और अपना ही संकल्प, और अपनी ही शक्ति! वही कसौटी भी है इस बात की कि हमारी मांग आथेंटिक है, हमने जो मांगा है वह हम सच में मांगने के हकदार हैं। एक ही पात्रता है इस खोज में, और वह यह हैः अपने को पूरी तरह खोज के साथ खड़ा कर देना। इस ध्यान की एक ही शर्त है और वह शर्त यह है कि धीरे-धीरे नहीं, आहिस्ता-आहिस्ता नहीं, ऐसे ही कामचलाऊ ढंग से नहीं, पूर्णतया, जैसे यह हमारे प्राणों का प्रश्न है। हो सकता है एक क्षण बाद हम न बचें! हो सकता है एक क्षण बाद श्वास न लौटे! तो यह कहने को न रह जाए कि हम अपने को बिना जाने फिर वापस लौट आए। ऐसी ही स्थिति है।
महावीर ने कहा है, जैसे घास के एक पत्ते पर सुबह ओस की बूंद होती है।
कब गिर जाएगी हवा के झोंके में, कुछ पता नहीं। ऐसा ही आदमी का जीवन है। घास के पत्ते पर ओस की बूंद! हवा का जरा सा झोंका और गिर जाएगी। ऐसा ही आदमी का जीवन है! इतनी ही इनसिक्योरिटी में; इतनी ही असुरक्षा में; इतने ही खतरे में; इतने ही डेंजर में। एक-एक पल का वहां कोई भरोसा नहीं है। और वहां जब आदमी अपनी खोज में जाता है तो इतने धीमे, ऐसे जैसे कोई जल्दी नहीं है। नहीं; ऐसे नहीं चल सकता है। इन तीन दिनों में हम जो ध्यान यहां करेंगे, उसमें यह आशा लेकर मैं चलूंगा कि वह परिपूर्णतया, आपने पूरा अपने को, पूरा कमिटमेंट, श्वास का, हृदय की धड़कन का, शरीर का, मन का, पूरा--जितने पूरे आप उसमें कूदेंगे उतने ही गहरे आप प्रवेश पा जाएंगे। जितनी पूर्णता से कूदेंगे उतने भीतर चले जाएंगे। और करना क्या होगा? करना कुछ बहुत नहीं है, छोटी सी ही बात है।
अभी हम सब बैठेंगे, तो सबको आराम से बैठ जाना है, और हाथों की सारी अंगुलियां एक-दूसरे में डाल लेनी हैं, ताकि पूरी ताकत से पूछना हो सके। और जितना हाथ पर दबाव बढ़ेगा, उतना पता चलेगा कि मैं कितनी शक्ति से पूछ रहा हूं। हाथ पत्थर हो जाएंगे। ये दसों अंगुलियों को एक-दूसरे के भीतर डाल लेना है, इनको अपनी गोद में रख लेना है, आराम से बैठ जाना है। इसके बाद हम आंख बंद करेंगे। और आंख बंद करने के बाद, ध्यान जो रहे, वह दोनों आंखों के बीच में रहे। वह क्यों बीच में रहे? वह आने वाले कल के दिनों में मैं समझाने की कोशिश करूंगा कि उसका अर्थ क्या है, क्या परिणाम हैं उसके। आंख दोनों बंद रहेंगी, लेकिन इस तरह रहेंगी कि जैसे हम बंद आंख से दोनों आंखों के बीच में भीतर देख रहे हों। हाथ बंद रहेंगे। रीढ़ सीधी रहेगी। और शरीर ढीला रहेगा।
पहले ऐसे बैठ जाएं। हाथ बंद कर लें, रीढ़ सीधी हो। रीढ़ इसलिए सीधी जरूरी है कि जितनी रीढ़ सीधी होगी उतने ही जोर से आप पूछ सकेंगे।
आपने ख्याल किया होगा कि जब भी जोश आ जाएगा तो रीढ़ अपने आप सीधी हो जाती है। लड़ाई-झगड़े में आपने देखा होगा कि कोई आदमी रीढ़ झुका कर लड़ाई-झगड़ा नहीं करता है। रीढ़ अपने आप सीधी हो जाएगी। जब पूरे प्राणों की पुकार होगी तो रीढ़ सीधी हो जाएगी।
तो रीढ़ सीधी। हाथ बंद। और वे हाथ आपके लिए मापदंड का काम करेंगे कि कितने जोर से आप पूछ रहे हैं, उतने ही जोर से हाथ जड़ होते चले जाएंगे। उनको

खोलना ही मुश्किल हो जाएगा। वे बिल्कुल बंद हो जाएंगे, जैसे उनमें खुलने की ताकत भी नहीं रही। और आंख दोनों बंद रहेंगी, और ध्यान दोनों पलकों के बीच में, मध्य में; नाक जहां से शुरू होती है दोनों आंखों के बीच में, नासाग्र जहां से हिस्सा शुरू होता है वहां अंदर आंखें दोनों रहेंगी।
फिर अपने भीतर... ओंठ बंद हैं और जीभ तालू से सट जाएगी, जब ओंठ बंद रहेंगे तो जीभ ऊपर तालू से सट जाएगी, अर्थात मुंह बिल्कुल बंद हो गया। मुंह से नहीं पुकारना है अब हमें, भीतर प्राणों से पुकारना है। और भीतर पूछना है कि मैं कौन हूं? इतनी तेजी से कि दो "मैं कौन हूं?" के बीच में कोई जगह न रह जाए। मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? इस भांति सतत और पूरी शक्ति से कि भीतर कोई शक्ति शेष न रह जाए।
यह हो सकता है कि शरीर कंपने लगे। यह हो सकता है कि आंख से आंसू बहने लगें। यह हो सकता है कि रोना आ जाए। अब जब शरीर पूरी ताकत से लगेगा तो यह सब हो सकता है। कुछ भी रोकना नहीं है। जो भी हो, होने देना है। एक ही ध्यान रखना है कि मैं तो पूछता ही चला जाऊं, पूछता ही चला जाऊं। मेरा तो पूरा जीवन दांव पर है; मैं पूछूंगा और जानना चाहता हूं कि भीतर क्या है? यह हम पंद्र्रह मिनट के लिए प्रयोग करेंगे। और इस प्रयोग के बाद हमारी बैठक समाप्त होगी।

तो अब आप बैठ जाएं। जो लोग, मित्र ऊपर खड़े हैं, वे अपनी जगह बैठ जाएं तो बड़ी कृपा होगी। बैठ जाएं, कुछ हर्ज नहीं हो जाएगा; थोड़े कपड़े खराब हुए तो कुछ हर्ज नहीं होगा, बैठ जाएं। क्योंकि कोई भी खड़ा रहेगा वह बाधा देगा, बैठ जाएं। चुपचाप अपनी जगह बैठ जाएं। और कोई बातचीत नहीं करेगा। और ध्यान रखेंगे आप कि आपके कारण किसी दूसरे को जरा भी बाधा न पड़े।
ठीक है, रीढ़ सीधी कर लें। हाथ बांध लें। आंख बंद कर लें। ध्यान दोनों आंखों के बीच, आंख बंद करनी है, ध्यान दोनों आंखों के बीच में ले जाएं, जैसे हम बंद आंखों से दोनों आंखों के बीच की तरफ देख रहे हैं। ठीक! ओंठ बंद हैं। अब भीतर पूरी शक्ति से शुरू करें, पूछेंः मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... तेजी से, गति से, तीव्रता से और पूरी शक्ति से। पूछते चले जाएं, पूरी शक्ति लग जाए, बढ़ाते जाएं... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... धीरे-धीरे नहीं, पूरी शक्ति से। और जितनी शक्ति से पूछेंगे, भीतर उतरना शुरू हो जाएगा।...
मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... पूछें तीव्रता से, शक्ति से, पूरी शक्ति से... हृदय की धड़कन-धड़कन पूछने लगे, श्वास-श्वास पूछने लगे। हाथ बंधते चले जाएंगे, रीढ़ सीधी होती चली जाएगी, शरीर कंप सकता है, आंख से आंसू बह सकते हैं, पर पूरी शक्ति लगा दें... और जैसे-जैसे शक्ति बढ़ेगी, वैसे-वैसे शांति बढ़ेगी। भीतर एक गहरी शांति पैदा होती चली जाएगी।... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... नहीं; धीरे-धीरे नहीं, पूरी शक्ति से... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... फिर मुझसे कहना नहीं चाहिए आकर कि नहीं कुछ हुआ। पूरी शक्ति से... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं हूं कौन? ... पूछें, पूछें... गहरे, गहरे... जैसे तीर की तरह आवाज पूछने लगे--भीतर, भीतर, भीतर... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... पूरा शरीर कंपने लगे--मैं कौन हूं? पूरी शक्ति लग जाए--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... एक गहरी शांति उतरनी शुरू हो जाएगी।... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... पूरी शक्ति से, पूरी शक्ति से... एक तूफान आ जाए... यह पूरा वातावरण पूछने लगे--मैं कौन हूं? इतनी आत्माएं इकट्ठी पूछें और परिणाम न हो! ... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... पूरी शक्ति से... जो हो हो।...
मैं कौन हूं? ... किसी दूसरे की कोई चिंता न करें, अपना--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... श्वास-श्वास, हृदय की धड़कन-धड़कन, कुछ याद न रह जाए, बस एक प्रश्न रह जाए--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... और भीतर, और भीतर... एक गहरी शांति छाती चली जाएगी। जितने जोर से

पूछेंगे, पीछे उतनी ही शांति मालूम पड़ेगी। जितनी गहराई से पूछेंगे, पीछे मन उतना ही गहरी शांति अनुभव करेगा।...
मैं कौन हूं? ... हिला डालें, अपने पूरे व्यक्तित्व को हिला दें... पूरे प्राण हिल जाएं--मैं कौन हूं? ... जैसे कोई किसी वृक्ष को हिलाता हो, उसकी जड़ें तक हिल जाएं--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... जानना ही है, पहचानना ही है, पहुंचना ही है--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... पूछें, पूछें, पूछें... एक प्रश्न ही रह जाए, एक प्रश्न ही रह जाए--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... खो गए हैं अंधकार में, मैं कौन हूं पूछते हैं। रास्ता खो गया है, अपना ही पता नहीं।... मैं कौन हूं? खोजना है, खोजना है... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... पांच मिनट और पूरी शक्ति से--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... पूरी ताकत लगा दें... मैं कौन हूं? ... पीछे कुछ बच न जाए, ऐसा न लगे कि मैं अधूरा-अधूरा कर रहा हूं। मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... एक चोट द्वार पर--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... जैसे किसी बंद द्वार पर चोट-- मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... गहरा अंधेरा है... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ...
जितनी तीव्रता से पूछेंगे, मन शांत होता चला जाएगा... मैं कौन हूं? ...
एक ही गूंज--मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... आखिरी दो मिनट, पूरी शक्ति से... पूरी शक्ति से... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ...
आखिरी मिनट... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ...
मन शांत होता चला जाएगा, एक गहरी शांति भीतर छा जाएगी। जैसे तूफान के बाद सब शांत हो जाता है।... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... आखिरी बार--मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... आखिरी ऊंचाई पर ले जाकर छोड़ना है--मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ... मैं कौन हूं? ...
छोड़ दें... बिल्कुल छोड़ दें... शांत हो जाएं... छोड़ दें। धीरे-धीरे आंख खोलें... मौन बैठे रहें थोड़ी देर... धीरे-धीरे आंख खोलें... फिर धीरे-धीरे हाथ खोलें... धीरे-धीरे आंख खोलें...

तीन छोटी-छोटी सूचनाएं मुझे देनी हैं, वे मैं सूचनाएं दे दूं, फिर हम
उठ जाएंगे।
पहली सूचना तो यह मुझे देनी है कि मेरे आते-जाते कोई भी व्यक्ति मेरे पैर न छुए। मैं किसी का गुरु नहीं हूं और न मानता हूं कि कोई किसी का गुरु हो या कोई किसी का शिष्य हो। तो मेरे कोई पैर न छुए। मैं कोई साधु-संत, कोई महात्मा भी नहीं हूं। साधु-संत और महात्मा होने की कोशिश मुझे बहुत बचकानी मालूम पड़ती है। तो मुझे कोई आदर, समादर, सम्मान देने की जरा भी जरूरत नहीं है। इतना ही सम्मान मेरे लिए बहुत है कि मैं जो कहता हूं उसे आप सुन लें। उसे मानने की भी जरूरत नहीं है। सोचें, प्रयोग करें। हो सकता है ठीक हो, तो रुक जाएगा; गलत होगा तो छूट जाएगा।
दूसरी बात यह मुझे सूचना देनी है कि मैं--मेरे पास कोई आए तो मेरा स्वभाव है उसे प्रेम देना। जिन्हें प्रेम से भय हो उन्हें मेरे पास नहीं आना चाहिए। मेरी हालत करीब-करीब वैसी है, जैसा प्लोटिनस बूढ़ा हो गया था, जिंदगी भर प्रेम को ही उसने प्रार्थना समझा। बुढ़ापे में उसके शरीर पर कोढ़ आ गया। तो भी लोग उसके पास आते तो उन्हें गले लगा लेता। लोग बहुत डरते, क्योंकि कोढ़ी शरीर से कौन गले लगना चाहे! लोगों ने आना-जाना बंद कर दिया। प्लोटिनस लोगों से पूछता कि लोग अब आते नहीं? संकोच में कौन उसे कहे! कुछ मित्रों ने बहुत हिम्मत करके कहा कि तुम्हारे शरीर में कोढ़ हो गया। तुम लोगों के हाथ हाथ में ले लेते हो, उन्हें गले से लगा लेते हो, किसी का माथा चूम लेते हो। लोग डरने लगे तुम्हारे पास आने से। वह प्लोटिनस कहने लगा, अरे हां, यह तो मैं भूल ही जाता हूं कि मैं शरीर भी हूं। यह मुझे ख्याल ही नहीं रहता कि शरीर में कोढ़ भी है।

मेरे पास भी कम आएं, क्योंकि मुझे कुछ पता नहीं कि मैं शरीर भी हूं, शरीर पुरुष का भी है, किसका है, मुझे कुछ पता नहीं। तो पुरुष आ जाते हैं पास तब तो बहुत झंझट नहीं होती, स्त्रियां पास आ जाएं तो बहुत झंझट हो जाती है। तो पूरा ख्याल रखें कि मेरे पास ही न आएं। मैं अपने स्वभाव को बदलूं, यह मुश्किल मालूम पड़ता है। लेकिन आप मुझ पर दया कर सकते हैं, मुझसे थोड़ा दूर-दूर रहें।
अभी यहां आया तो पता चला। एक संसद-सदस्य हैं बड़ौदा के, उन्होंने कुछ वक्तव्य दिया। उन्होंने वक्तव्य दिया तो मुझे पता चला कि वे ठीक कहते हैं। एक बहन दिल्ली आई हुई थी। वह संसद-सदस्य से कम बुद्धिमान नहीं, किसी युनिवर्सिटी में प्रोफेसर है। वह आई और मेरे पास रुकी और उसने मुझसे बहुत ही आग्रहपूर्ण निवेदन किया कि यह मेरा बड़ा सौभाग्य होगा कि मैं आपके साथ ही रुक जाऊं। मैं वर्षों से यह प्रतीक्षा करती हूं कि कभी दो दिन आपके साथ रहने मिल जाए।
मैंने कहा, तू पागल है, तू कभी भी आ सकती थी।
वह मेरे साथ रुक गई। मुझे पता नहीं कि उसका साथ रुकना बहुत अड़चन और कठिनाई की बात हो जाएगी। मुझे अगर किसी ने आकर कहा होता कि इसका साथ रुकना हमें बहुत अड़चन और कठिनाई की बात है, तो मैं उनको कष्ट भी नहीं देता। या उनसे कहता कि तुम भी आ जाओ और तुम भी यहीं सो जाओ, तुम भी यहीं रुक जाओ। उन्होंने मुझे तो कुछ कहा नहीं। मैं तो मीटिंग में गया। दूसरे दिन उन्होंने इस बहन का सब सामान निकाल कर बाहर कर दिया।
मैं आया तो वह खड़ी हुई रो रही है और उसने मुझे कहा कि मेरा बहुत अपमान किया गया, मुझसे बहुत अभद्र बातें कही गईं। मैंने कहा, यह तो बड़े आश्चर्य की बात है! तो उन मित्रों ने कहा कि जब आप आए तो यह बहन आपसे गले मिली। और यह तो बड़ा अनाचार है कि कोई बहन आपसे गले मिल जाए। तो मैंने उनसे कहा कि मुझे कह देना था तो अच्छा होता, उसका सामान निकालना या उससे कुछ बातें कहनी बहुत गलत बात है, अभद्र है।
फिर अभी इधर आया तो पता चला, उन्होंने वक्तव्य दिया है अखबारों में।
तो मुझे ख्याल आया कि वह भी निवेदन आप से कर दूं। मेरे पास कौन आता है, स्त्री-पुरुष है, मैं कोई हिसाब नहीं रखता हूं। इसलिए सम्हल कर ही मेरे पास आना चाहिए, वह अच्छा है। आगे भी मैं हिसाब रख सकता हूं, यह बड़ा मुश्किल है। तो मुझसे थोड़ा दूर ही रहना चाहिए, वह अच्छा है। संसद-सदस्यों को तकलीफ देना अच्छा नहीं होता। और संसद-सदस्य बेचारे देश का आचरण ठीक रखने की कोशिश करते हैं। उन्हीं के कारण देश का इतना अच्छा आचरण भी है, नहीं तो कभी का बिगड़ गया होता। देश इतना चरित्रवान और आचरणवान उन्हीं के कारण है। और मेरे जैसे लोग तो हमेशा से आचरण बिगाड़ने वाले रहे हैं। तो ऐसे लोगों से थोड़ा दूर रहना चाहिए।
तो दूसरा निवेदन यह है कि मेरे पास थोड़े फासले से ही नमस्कार किया तो बहुत अच्छा। मुझसे व्यक्तिगत रूप से भी मिलने सोच-समझ कर आना चाहिए। एक तो आना ही नहीं चाहिए। क्योंकि जो मुझे कहना है, वह मैं यहां कह देता हूं, मुझसे अलग और पूछने की कोई बात नहीं।
लेकिन मैं जानता हूं, कुछ बातें हो सकती हैं जो अलग पूछने की हों। लेकिन संसद-सदस्यों की इच्छा नहीं है कि मुझसे कोई अलग बात कर सके। सिर्फ पुरुषों तक बात चल जाए, तब तो ठीक है। स्त्रियां अलग आकर बात करने की कोशिश करें, तो बड़ी कठिनाई हो जाती है। तो स्त्रियों को तो कतई मुझसे अलग बात करने नहीं आना चाहिए। अब इसमें मेरा कसूर नहीं है, उनका स्त्री होना कसूर है या भारत में पैदा होना कसूर है, यह वे समझें।
और अगर कोई मुझसे एकांत में मिलने आए, तो उसे सोच-समझ कर आना चाहिए कि चरित्र जिसका ठीक नहीं, एक ऐसे आदमी के पास जा रहे हैं। तो सोच-समझ कर, विचार करके आना चाहिए। क्योंकि कठिनाई हो लोगों को, तकलीफ हो लोगों को, परेशानी हो...
और परेशानी वही होती है--जैसा हमारा चित्त होता है, वैसी ही परेशानी शुरू हो जाती है। जिनके चित्त में कामवासना अति है, उन्हें सिवाय कामवासना के और कुछ भी सारी दुनिया में दिखाई नहीं पड़ता है। दिखाई नहीं पड़ सकता है।

डाक्टर राममनोहर लोहिया ने एक किताब लिखी है। और उसमें पूछा है किताब में एक प्रश्न--कि बुद्ध जब वैशाली गए, तो वैशाली की जो नगरवधू थी, वेश्या थी, आम्रपाली, वह आकर बुद्ध के चरणों में पड़ गई और उसने कहा कि मुझे दीक्षा दे दो। तो डाक्टर राममनोहर लोहिया ने एक प्रश्न उठाया है कि मैं सोचता हूं कि उस वक्त उस सुंदर स्त्री को देख कर बुद्ध के मन में कैसी कंपन, कैसी लहर उठी होगी?
बड़े मजे की बात है! बुद्ध के मन में कैसी कंपन और कैसी लहर उठी होगी, यह डाक्टर लोहिया को ख्याल आता है। लेकिन डाक्टर लोहिया भी संसद-सदस्य थे और संसद-सदस्यों को फिकर करनी चाहिए। बिल्कुल फिकर करनी चाहिए। देश का चरित्र उन्हीं सबके ऊपर निर्भर है।
विवेकानंद हिंदुस्तान आए, सिस्टर निवेदिता का आना बंगाल में एक मुसीबत का कारण हो गया। संन्यासी के साथ और स्त्री! और उन्हें पता ही नहीं कि संन्यासी का अर्थ ही यह होता है कि जिसे स्त्री और पुरुष अब नहीं रहे। लेकिन वह कठिनाई हो गई, वह अड़चन हो गई, वह मुश्किल हो गई।
जीसस क्राइस्ट के पास मेग्दालिन एक औरत आई और उनके चरणों को पकड़ कर आंसुओं से धो डाला। बस सब गड़बड़ हो गई। ईसा उसी दिन से गड़बड़ शुरू हो गए। एक वेश्या को उन्होंने पैर क्यों छूने दिए!
अब जीसस के लिए भी कोई वेश्या है? और जीसस के लिए भी कोई स्त्री और पुरुष है? लेकिन जीसस गलती में हैं, संसद-सदस्य ज्यादा ठीक जानते और समझते हैं। और उन दिनों के संसद-सदस्य जो थे, उन्होंने जीसस को सूली पर लटकवा दिया।
सुकरात के ऊपर चरित्रहीनता का आरोप था कि यह लड़कों को बिगाड़ता है। रामकृष्ण परमहंस के पास विवेकानंद गए, तो विवेकानंद तो एक सुंदर युवक थे। तो अफवाह उड़ाई गई कि रामकृष्ण सुंदर लड़कों को प्रेम करते हैं। वह तो यह कहो कोई संसद-सदस्य नहीं था वहां दक्षिणेश्वर में, नहीं तो रामकृष्ण को पता चलता कि क्या मुसीबत हो सकती है।
तो उचित यही है, उनकी कोई गलती नहीं है, उन्होंने तो अच्छा ही किया, उन्होंने तो बात अच्छी ही कही, उनका कोई कसूर भी नहीं है, उनको ये बातें कहनी चाहिए। मैंने तो उनसे वहीं कहा था कि मैं जाहिर में बात कर लूं। तो वे कहने लगे, नहीं, जाहिर में बात करना ठीक नहीं है। लेकिन अब उन्हें खुद लगा कि जाहिर में बात होनी चाहिए। मैं तो जाऊंगा उनके इलेक्शन के वक्त वहां बड़ौदा और लोगों से कहूंगा कि इनको जरूर वोट देना, नहीं तो देश का चरित्र खराब हो जाएगा। इनको वोट देते ही रहना, नहीं तो देश के चरित्र की कोई संभावना नहीं है।
सारे देश के चित्त को कामुक बनाया हुआ है और चरित्र की सारी बातें चलती हैं। और कामुकता इतनी गहरी घुस गई है कि असंभव हो गया है स्त्री- पुरुष को क्षण भर को भूलना कि कौन स्त्री है, कौन पुरुष है। भूलना ही असंभव हो गया है। लेकिन वे दूसरी बातें हैं, मुझ जैसे गलत लोग करते हैं, अच्छे लोग ऐसी बातें नहीं करते। लेकिन लोगों को सावधान होना चाहिए। क्यों, मेरे पास आने की जरूरत क्या है? कोई जरूरत नहीं है। मुझे पत्र लिखने की भी जरूरत नहीं है, क्योंकि मैं बड़े गड़बड़ पत्र लिखता हूं।
तो तीसरी प्रार्थना आपसे यह करनी है कि मुझे पत्र मत लिखा करें। और स्त्रियों के साथ बड़ी मुसीबत है। अगर उनके पत्र का उत्तर न दो, तो ठीक पीछे से लगे हुए दूसरे पत्र पहुंच जाते हैं। पत्र का उत्तर दो तो कठिनाई शुरू होती है। तो मुझे पत्र न लिखा करें। मुझसे तो जो बात पूछनी हो, वह यहां पूछ ली।
और या फिर अगर किसी को मिलना ही हो, पुरुषों को तो उतनी तकलीफ नहीं है, स्त्रियों को अगर मिलना ही हो, तो अगर वे कम उम्र हों तो अपने बाप को साथ लाना चाहिए, वह रक्षक रहता है। ज्यादा उम्र हो, अपने पति को साथ लाना चाहिए, वह रक्षक रहता है। और ही ज्यादा उम्र हो, तो अपने बेटे को साथ लाना चाहिए, वह रक्षक रहता है। लेकिन अकेले कभी नहीं आना चाहिए। अकेले आना बिल्कुल ठीक नहीं। क्योंकि मैं प्रेमपूर्ण ही हो सकता हूं।
अब यहां हिम्मतभाई जोशी हैं, वे यहां बैठे होंगे कहीं। उनकी पत्नी मेरे साथ गई, जसु मेरे साथ इंदौर गई। उसे मेरे बगल के कमरे में ठहराया। वह

शाम को आई और कहने लगी कि मैं तो यहीं सोऊंगी आपके कमरे में। मैंने कहा, कमरा बहुत बड़ा है, तू सो जा। अब मुझे ख्याल नहीं रहा कि इस स्त्री को सोने के लिए कह रहा हूं, कोई संसद-सदस्य आस-पास इंदौर में भी तो होंगे। वह तो इंदौर का संसद-सदस्य सोया हुआ आदमी मालूम पड़ता है, उसे चरित्र का कोई ख्याल नहीं है। और इसलिए इंदौर के लोगों को उसे वोट नहीं देना चाहिए--कि तुम गलत आदमी हो! तुमको पता लगाना चाहिए, कौन कहां सोता है, कौन क्या करता है! और फिर मेरे जैसे गड़बड़ आदमी के साथ कौन सो गया, क्या हो गया। तो उसको ही जब... मैंने कहा, ठीक है। वह सो गई। वह बड़ी आनंदित रही होगी। वह तो भाग्य कहो किसी संसद-सदस्य को पता नहीं चला, और नहीं तो मुश्किल हो जाती।

ये जो लोग... कई बार चीलें आकाश में उड़ती हैं, इससे यह मत सोच लेना कि चीलें आकाश में हैं। चीलें उड़ती आकाश में हैं, उनकी नजर जमीन के घूरों पर पड़े हुए गंदे मांस के लोथड़ों में लगी रहती है। आकाश में उड़ान होती है, नजर मांस के लोथड़ों में लगी होती है। आकाश में उड़ने भर से मत समझ लेना कि चीलें आकाश में हैं, चीलों की नजर जमीन पर होती है और गंदे स्थानों पर होती है। आपकी नजर कहां है, वहीं आप होते हैं। संसदों में होने से कुछ फर्क नहीं पड़ता। नजर कहां है? लेकिन उनका कसूर नहीं है कोई, वे तो बेचारे जनहित के लिए सब कुछ किए। वह करना ही चाहिए जनहित में ऐसा। लेकिन आपको यह निवेदन करता हूं कि मेरे पास आने-जाने की कोई जरूरत नहीं है। और मुझसे किसी तरह के प्रेम-संबंध बनाने की भी जरूरत नहीं है। और मुझसे किसी के भी प्रेम-संबंध बन जाते हैं। वह गलती बात है। प्रेम ही गलती बात है।
तो यह तीसरा निवेदन आपसे करना है। और इन तीन दिनों के संबंध में या पीछे और जो बातचीत चली है उस संबंध में जो भी प्रश्न हों, वे आप लिखित दे देंगे, ताकि अंतिम दिन की बैठक में मैं उन सारे प्रश्नों पर चर्चा कर सकूं।
मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

तृषा गई एक बूंद से
दूसरा प्रवचन

सात चक्रों की साधना

मेरे प्रिय आत्मन्!
अंतर की यात्रा पर चलने के पूर्व उस मार्ग से थोड़ा परिचित हो लेना जरूरी है जिस पर चलना पड़ता है। उन द्वारों को भी समझ लेना जरूरी है जिन्हें खटखटाना पड़ेगा। उन तालों को भी समझ लेना जरूरी है जिन्हें खोलना पड़ेगा।
जो यात्री यात्रा-पथ के संबंध में बिना जाने चल पड़े, उसके भटक जाने की
ही ज्यादा संभावना है बजाय पहुंच जाने के। और बाहर के रास्ते तो दिखाई भी पड़ते हैं, भीतर का कोई रास्ता दिखाई भी नहीं पड़ता है। बाहर तो रास्तों के किनारे चिह्न भी लगे हैं कि रास्ते कहां जाते हैं, भीतर के रास्ते पर न कोई चिह्न हैं, न कोई माइल स्टोन हैं, न कोई प्रतीक हैं, अनचार्टर्ड! कोई नक्शा नहीं! शायद इसीलिए आदमी भीतर जितना भटकता है उतना बाहर नहीं भटकता।
आज की चर्चा में भीतर के रास्ते पर कुछ जरूरी बातों की पहचान कर लेना उचित है।
सबसे पहली बात तो यह समझ लेना जरूरी है कि जो शरीर हमें दिखाई पड़ता है,
वह शरीर बहुत से शरीरों का सबसे ऊपर का हिस्सा है। इस शरीर के भीतर और भी शरीर हैं। यह शरीर ही अकेला शरीर नहीं है। और जैसे ही हम भीतर यात्रा शुरू करते हैं, और शरीरों के बीच में मार्ग में गुजरने और पार करने की जरूरत पड़ती है। स्वयं तक पहुंचने के पहले इस शरीर के बीच में और स्वयं के बीच में और भी शरीर हैं।
इस शरीर के ठीक बाद जो पहला शरीर है--इस दिखाई पड़ने वाली देह, इस अन्नमय देह, इस फिजिकल बॉडी के ठीक पीछे जो शरीर है--वह प्राण शरीर है, ईथरिक बॉडी है। उस प्राण शरीर के संबंध में थोड़ी सी बातें जाननी जरूरी हैं। क्योंकि उसे पार करना होगा। और बिना समझे किसी भी चीज को पार करना, भटकाने का भी हो सकता है, खतरे का भी हो सकता है, नुकसान भी पहुंचा सकता है। इस शरीर के ठीक पीछे विद्युत की देह है, जिसे हम प्राण शरीर अब तक कहते रहे हैं। उस शरीर के जुड़ने के कारण ही इस शरीर से हमारा संबंध है। इस शरीर के गिर जाने पर भी वह शरीर शेष रह जाता है। मृत्यु के बाद भी कुछ घंटों तक वह शरीर शेष होता है। वह शरीर वापस इस शरीर से जुड़ने के लिए आतुर होता है। इसलिए जिन कौमों ने उस शरीर के संबंध में ठीक से पहचान कर ली है, वे अपने मुर्दे को शीघ्र जला देते हैं, बचाते नहीं। मुर्दे को जला देने के पीछे प्राण शरीर के संबंध में कुछ गहरे अनुभव हैं। जैसे ही शरीर जल जाता है, प्राण शरीर का आकर्षण शरीर के प्रति समाप्त हो जाता है। अन्यथा प्राण शरीर आत्मा को लेकर शरीर के आस-पास, मृत शरीर के आस-पास ही भटकेगा। भटकने की बहुत संभावना है।
यह जो शरीर के पीछे प्राण शरीर है, यह शरीर बहुत अदभुत है। और इसके पहले कि हमें विद्युत के संबंध में कुछ भी पता चला था, साधकों को इस शरीर के विद्युतमय होने का पता चल गया था। इसीलिए हजारों वर्षों से साधक लकड़ी के तख्ते का उपयोग करता है, या शेर की खाल का उपयोग करता है, या मृगचर्म का उपयोग करता है।
प्राण शरीर के निकट से गुजरने पर, अगर शरीर से विद्युत के बाहर निकल जाने की संभावना हो, तो नुकसान पहुंच सकता है, मृत्यु भी हो सकती है। यह अनुभव बहुत पहले ख्याल में आ गया। यह भी ख्याल में आ गया कि उस विद्युत शरीर के कारण ही स्त्री और पुरुष में फर्क है। यह जो ऊपर का शरीर में जो भेद दिखाई पड़ता है, यह भेद गौण है, असली भेद पुरुष और स्त्री के प्राण शरीर में है। पुरुष का प्राण शरीर पाजिटिव है, स्त्री का प्राण शरीर निगेटिव है। पुरुष के शरीर की जो विद्युत है वह विधायक है, स्त्री के शरीर की जो विद्युत है वह नकारात्मक है। और यही उन दोनों के बीच आकर्षण का कारण है। लेकिन जैसे ही कोई व्यक्ति ध्यान में प्रविष्ट होना शुरू होता है, प्राण शरीर का जो आकर्षण है, प्राण शरीर की जो तीव्रता है, प्राण शरीर की

जो विद्युत है, वह क्रमशः क्षीण होती चली जाती है और अंतर्मुखी होने लगती है। जिस दिन प्राण शरीर की विद्युतधारा अन्नमय शरीर की तरफ न बह कर, अंतस के दूसरे शरीरों की तरफ बहने लगती है, उसी क्षण व्यक्ति न पुरुष रह जाता है न स्त्री। उसके चित्त में स्त्री-पुरुष होने का कोई प्रश्न समाप्त हो जाता है।
बुद्ध एक पहाड़ के पास कुछ दिनों तक साधना करते थे। रात थी, पूर्णिमा
की रात थी। नगर से कुछ लोग आए थे, वे एक वेश्या को भी ले आए थे जंगल में-- आनंद के लिए, मंगल के लिए, प्रमोद के लिए। वे नशे में धुत्त होकर नाचने लगे। उन्होंने उस वेश्या के सारे वस्त्र भी छीन लिए। उन्हें नशे में डूबा हुआ देख कर वह नग्न स्त्री भाग गई। जब उन्हें थोड़ा होश आया तो हैरान हुए! वे उस स्त्री को खोजने निकले।
राह पर तो कोई नहीं मिला। उस जंगल में सिवाय बुद्ध के कोई भी न था। वे
एक वृक्ष के नीचे साधना में बैठे थे। उन लोगों ने जाकर बुद्ध को हिलाया और कहा, भिक्षु, यहां से जरूर तुमने किसी स्त्री को भागते देखा होगा, रास्ते पर चरणों के चिह्न हैं। वह स्त्री नग्न थी, वेश्या थी। हम पूछ सकते हैं कि वह कहां गई? किस ओर गई?
बुद्ध ने कहा, कोई भागता हुआ जरूर निकला था, लेकिन वह स्त्री थी या पुरुष, यह मेरे लिए थोड़ा बताना कठिन है। दस साल पहले तुम आए होते तो मैं बता सकता था। जब से मेरे भीतर का पुरुष क्षीण हो गया, तब से बाहर की स्त्री को ख्याल करूं तो ही दिखाई पड़ सकती है, अनायास नहीं। फिर उसने वस्त्र पहने थे या नहीं, यह भी मुझे पता नहीं। जब से अपने शरीर पर ही वस्त्रों के होने न होने का पता नहीं चलता, तब से दूसरे के शरीर पर वस्त्र हैं या नहीं, यह भी सवाल मिट गया है।
बुद्ध ने कहा, जो हम होते हैं वही हमें बाहर दिखाई पड़ता है। लेकिन मैं तुमसे पूछता हूं कि मित्रो, तुम उसे क्यों खोज रहे हो? क्या यह अच्छा न होगा--इस शांत और पूर्णिमा की भरी रात में तुम अपने को खोजो?
पता नहीं उन लोगों ने सुना या नहीं। कहते हैं, लोग सदा कहते रहते हैं-- अपने को खोजो! कौन सुनता है? हम सब किसी और की खोज में दौड़ते रहते हैं। और यह खोज भी, अगर हम बहुत गौर से समझेंगे, यह दूसरे की खोज भी हमारे प्राणमय शरीर की ही खोज है। प्राणमय शरीर अधूरा है, या तो पाजिटिव है या निगेटिव है। वह दूसरे शरीर को खोजता है जिसके साथ मिल कर पूरा हो सके। वह अधूरा है, आधा है। आधा शरीर आधे की खोज करता है और मांग करता है। इसलिए दूसरे की खोज चल रही है।
यह जो विद्युत शरीर है हमारे भीतर, यह हमारे इस देह शरीर से सात स्थानों से संयुक्त है। उसके सात जगह से कांटेक्ट फील्ड हैं, संपर्क स्थल हैं। उन संपर्क स्थलों का नाम ही चक्र है। इस शरीर को वह विद्युत का शरीर सात जगह छूता है, स्पर्श करता है। और उन सात जगह से ही इस शरीर को उस शरीर के द्वारा शक्ति मिलती है, प्राण मिलता है, जीवन मिलता है।
इन सात चक्रों के संबंध में भी थोड़ी बात जान लेनी जरूरी है। क्योंकि जैसे ही कोई व्यक्ति ध्यान में प्रविष्ट होना शुरू होता है, जैसे ही भीतर की यात्रा शुरू होती है, इन सात चक्रों के पास से भी उसे गुजरना ही पड़ता है। जाने-अनजाने इनके करीब से वह निकलेगा। हर एक व्यक्ति का अनुभव थोड़ा भिन्न होगा, क्योंकि हर एक व्यक्ति का अलग-अलग चक्र साधारण रूप से सक्रिय है।
इन चक्रों के संबंध में इसलिए भी समझना जरूरी है कि आपको अपनी पर्सनैलिटी, अपने व्यक्तित्व के समझने में भी बड़ा सहारा मिलेगा। आप समझ सकेंगे कि आप किस तरह के आदमी हैं, आपका टाइप क्या है। और उस समझ के द्वारा भीतर प्रवेश करने में बड़ी सहूलियत हो जाती है। क्योंकि जब हम यह समझ लें कि हम किस प्रकार के व्यक्ति हैं, तो हम यह जान लेते हैं कि हम कहां खड़े हैं। और जहां हम खड़े हैं वहीं से तो यात्रा करनी पड़ती है। जिस आदमी को यह भी पता न हो कि मैं कहां खड़ा हूं, वह यात्रा कैसे करेगा? कहां जाना है, यही जानना काफी नहीं है, उससे भी ज्यादा जरूरी जानना यह है कि हम कहां हैं। क्योंकि हम जहां हैं, वहीं से हम चलेंगे उस तरफ, जहां हमें पहुंचना है।

ये सात चक्र बहुत अदभुत घटना हैं। मनुष्य के शरीर में जो सबसे ज्यादा रहस्यपूर्ण हैं, वे ये सात चक्र हैं। ये कहीं शरीर को काटने-पीटने से, खोजने से नहीं मिल जाएंगे। इसलिए फिजियोलाजिस्ट के पास जाएंगे, वह कहेगा, कहां के चक्र? कैसे चक्र? शरीर में कोई चक्र नहीं हैं।
इस शरीर में हैं भी नहीं। चक्रों का अर्थ है कि भीतर का जो दूसरा शरीर
है, प्राण शरीर, वह सात जगह से इस शरीर को स्पर्श करता है। और उन्हीं सात द्वारों से इस शरीर को शक्ति मिलती है और प्राण मिलते हैं।
पहला चक्र, शरीर के पीछे जो रीढ़ है, उस रीढ़ के पुच्छ में है, सबसे आखिरी हिस्से में है। वह बहुत अदभुत चक्र है। उस संबंध में कुछ हम जानेंगे। सबसे पहला चक्र वहां है और सबसे अंतिम चक्र सिर के ऊपर है। फिर बीच में पांच चक्र और हैं। नंबर दो का चक्र जननेंद्रिय के पास है, वह सेक्स आर्गन के पास है। वह चक्र ही काम को, सेक्स को प्रभावित करता है और आंदोलित करता है। सारी दुनिया में, जैसे ही आदमी को जरा सा होश आया, उसने अपनी जननेंद्रिय को ढंक लेने की कोशिश की। क्योंकि ये जो चक्र हैं, अगर दूसरा व्यक्ति इन चक्रों पर अपनी आंखें गड़ा कर देख सके, तो वह इन चक्रों को प्रभावित करता है। इसलिए शरीर के सारे अंगों को उघाड़ छोड़ने में आदमी को कोई कठिनाई नहीं हुई, लेकिन सबसे महत्वपूर्ण चक्र के स्थान को ढंक लेने की अनिवार्यता मालूम पड़ी--चाहे पत्तों से ढंक लिया हो उसने, चाहे कपड़ों से, चाहे किसी और ढंग से।
जो नंबर दो का चक्र है, जिसको हम सेक्स-सेंटर कहें, काम-चक्र कहें, वही सर्वाधिक सक्रिय है मनुष्य के भीतर। क्योंकि प्रकृति को उसी की सबसे ज्यादा जरूरत है। उसी चक्र के द्वारा शरीर अपने को पुनरुत्पादित करता है, रिप्रोड्यूस करता है। उसी के द्वारा व्यक्ति नये-नये शरीरों को जन्म देने की तीव्रता और आकुलता से भरता है। जनन की सारी प्रक्रिया उसी चक्र के द्वारा चल रही है।
और जो व्यक्ति उस चक्र के प्रभाव में है या जिस व्यक्ति का वह चक्र सबसे ज्यादा सक्रिय है, उसके जीवन में सिवाय काम के, सिवाय वासना के और कुछ भी नहीं होता। वह चाहे धन कमाए, वह चाहे यश कमाए, चाहे वह बड़े पदों पर पहुंच जाए, लेकिन धन, यश और पद मूलतः उसकी कामवासना के तृप्ति के ही मार्ग होंगे, उपाय होंगे। उसके जीवन का लक्ष्य वहीं केंद्रित होगा।
मैं एक बहुत बड़े उपन्यासकार, एक बहुत बड़े लेखक, अनातोले फ्रांस का जीवन पढ़ रहा था। अनातोले फ्रांस ने अपने जीवन के अंत में अपने एक मित्र को... मित्र ने यह पूछा कि तुम्हारे जीवन में सबसे महत्वपूर्ण क्या था? अनातोले फ्रांस ने कहा कि जो बात मैंने किसी को नहीं कही वह मैं तुम्हें कहता हूंः मेरे जीवन में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण कामवासना थी, सेक्स था। उसका मित्र हैरान हुआ! उसने कहा कि तुम इतने बड़े उपन्यासकार, इतने बड़े लेखक! हम तो सोचते थे तुम्हारे जीवन में साहित्य और कला और संगीत, ये महत्वपूर्ण होंगे।
उसने कहा, वे सब गौण थे, वे सब बहाने थे।
अगर हम अपने व्यक्तित्व के बाबत खोजबीन करना चाहते हैं, तो हमें पहली खोजबीन यह करनी चाहिए--हमारे व्यक्तित्व का केंद्र क्या है? हम कहां जीते हैं?
और हमारे व्यक्तित्व का जो केंद्र हो, वह सूचना होगा इस बात की कि हमारे शरीर में कौन सा चक्र सर्वाधिक सक्रिय है और महत्वपूर्ण है। और यह भी ध्यान रहे कि जो चक्र महत्वपूर्ण होगा, हम उसी के माध्यम से पूरे जीवन को देखेंगे, पहचानेंगे, समझेंगे। हम कुछ और नहीं समझ सकेंगे।
खजुराहो की मूर्तियां हैं। अमेरिका से एक बहुत बड़ा चित्रकार उन मूर्तियों को देखने आया। मेरे एक मित्र विंध्य प्रदेश में मंत्री थे, शिक्षा मंत्री थे। उनको खबर की थी केंद्रीय सरकार ने कि जाकर उस अमेरिकी चित्रकार को वे खजुराहो की मूर्तियां दिखाएं। वे मित्र बहुत डरे हुए थे। वे डरे हुए थे कि इतनी नंगी मूर्तियां, इतनी अश्लील मूर्तियां। वह अमेरिकन चित्रकार देख कर हैरान होगा और क्या सोचेगा भारत की संस्कृति के लिए--कि कैसे लोग हैं? मंदिरों में ऐसी अश्लील मूर्तियां खोदी हैं! ऐसे मैथुन चित्र बनाए हैं! वह बहुत घबड़ाया हुआ था।

लेकिन कोई रास्ता नहीं था, ऊपर से खबर थी। तो उन मित्र को, उस अमेरिकन चित्रकार को लेकर खजुराहो जाना पड़ा। सारी मूर्तियां उन्होंने बहुत डरे- डरे दिखलाईं, बहुत भयभीत मन से, कि कहीं वह पूछ न ले कि ये मूर्तियां ही तुम्हारे भारत की संस्कृति हैं? ये तुम्हारे मंदिर हैं? तुम जो अपने को धार्मिक कहते हो!
लेकिन वह तो चित्रकार मूर्तियों में ऐसा लीन हो गया कि उसने तो कुछ भी नहीं कहा। वे मित्र जरूर उसको बार-बार कहते रहे कि ये हमारी भारतीय परंपरा के प्रतीक नहीं हैं, हमारी मूलधारा के प्रतीक नहीं हैं। कुछ गलत लोगों ने किसी गलत प्रभाव में इन मंदिरों को बना लिया है।
बाहर निकल कर उस मित्र ने कहा कि बहुत-बहुत धन्यवाद।
लेकिन उन मित्र को तो वही घबड़ाहट थी। उससे कहा कि आप अमेरिका में जाकर ऐसा मत कहना कि ऐसे अश्लील मूर्तियों वाले मंदिर हैं भारत में।
उस आदमी ने कहा, अश्लील मूर्तियां! तुम कहते क्या हो? मुझे फिर से चल
कर देखना पड़ेगा! मैंने इतनी सुंदर मूर्तियां कभी भी नहीं देखीं, इतनी भव्य मूर्तियां नहीं देखीं। उसने कहा, वापस चलो! क्योंकि तुम ज्यादा जानकार हो। जब तुम कहते हो मूर्तियां अश्लील थीं, तो मुझे फिर चलना पड़ेगा। क्योंकि अभी तो मैं जो देख कर आया हूं, इससे भव्य मूर्तियां मैंने कभी भी नहीं देखीं।
हम वही देखते हैं, जो हम देख सकते हैं। हम वही नहीं देखते हैं, जो है।
हम वही देखते हैं, जो हम देख सकते हैं। समस्त दर्शन जीवन में हमारा प्रोजेक्शन है। जो हमारे भीतर होता है वही हमें बाहर दिखाई पड़ता है।
एक कामुक व्यक्ति को सारा जगत काम से भरा हुआ दिखाई पड़ेगा। एक ईश्वर उपलब्ध व्यक्ति को सारा जगत ईश्वर से भरा हुआ दिखाई पड़ेगा। एक क्रोधी व्यक्ति को सारे जगत में सभी लोग क्रोधी मालूम पड़ेंगे। एक प्रेमी व्यक्ति को सारा जगत प्रेम से आंदोलित मालूम पड़ेगा। हम वही देखते हैं जो हम हैं। यह सारा जगत हमारे भीतर का ही प्रोजेक्शन है। जगत एक परदा है, उस पर हम वही देख लेते हैं जो हमारे भीतर छिपा है। तो अगर किसी व्यक्ति को जीवन में चारों तरफ सेक्स और काम दिखाई पड़ता हो, तो उसे जानना चाहिए कि उसके निजी व्यक्तित्व में सेक्स का केंद्र सर्वाधिक सक्रिय है। और वह है। क्योंकि प्रकृति को उसकी जरूरत है। प्रकृति को आपके और किसी केंद्र की इतनी जरूरत नहीं है, जितनी सेक्स के केंद्र की जरूरत है। क्योंकि वह उसी के द्वारा नये शरीरों को जन्म दे सकती है।
पशुओं में वही एक केंद्र सक्रिय है, और कोई भी केंद्र सक्रिय नहीं है। आदमियों में भी अधिक आदमियों में वही केंद्र सक्रिय है। लेकिन दूसरे केंद्र भी सक्रिय हो सकते हैं। और यह ध्यान रहे, जब तक सेक्स का केंद्र ही सक्रिय है, तब तक हममें और पशुओं में बुनियादी फर्क नहीं है। पोटेंशियली फर्क है कि हमारे दूसरे केंद्र सक्रिय हो सकते हैं। लेकिन वे सक्रिय हैं नहीं।
और आमतौर से आदमी वहीं जीता है। उसका साहित्य उठा कर देख डालें, तो सौ में से निन्यानबे प्रतिशत साहित्य काम के आस-पास घूमता है, सेक्स के आस-पास घूमता है। यह बड़ी आश्चर्य की बात है! चित्र उठा कर देखें; मूर्तियां उठा कर देखें; फिल्में उठा कर देखें; कविताएं उठा कर देखें; जो भी उठा कर देखें, पता चलेगाः आदमी का, निन्यानबे प्रतिशत काम के आस-पास क्यों घूमता है?
जरूर कहीं कोई बात है। काम का केंद्र ही एकमात्र सक्रिय केंद्र है।
और ध्यान रहे, ब्रह्मचर्य की साधना में इस काम के केंद्र को निष्क्रिय करने की व्यवस्था है। और यह निष्क्रिय हो जाए तो व्यक्ति के जीवन से वासना ऐसे विलीन हो जाती है जैसे हो ही नहीं। जैसे हम एक बटन को दबा दें और बिजली एकदम विलीन हो जाएगी, जैसे थी ही नहीं। क्योंकि वह कांटेक्ट, वह संपर्क टूट गया, जहां से प्रवाहित होती थी। ब्रह्मचर्य की साधना का अर्थ यह नहीं है कि कोई आदमी आंखें बंद करके बैठ जाए। ब्रह्मचर्य की बुनियादी वैज्ञानिक साधना का अर्थ हैः काम का जो केंद्र है वह निष्क्रिय हो जाए। उसके उपाय हैं, उसके टेक्नीक हैं, उसकी विधियां हैं।

सैकड़ों वर्ष पहले, पच्चीस वर्ष तक किसी भी युवक को ब्रह्मचर्य की साधना में रखा जा सकता था। उसका कारण यह नहीं था कि उनको फिल्म देखने नहीं मिलती थी। उसका यह भी कारण नहीं था कि स्त्रियां दिखाई नहीं पड़ती थीं या स्त्रियों को पुरुष दिखाई नहीं पड़ते थे। उसका कारण यह भी नहीं था कि वे कसम खाकर बैठे हुए थे। इस सब का कोई कारण न था। इस सबके पीछे वैज्ञानिक प्रक्रिया है। उस केंद्र को निष्क्रिय किया जा सकता है। उसके निष्क्रिय होते से ही सेक्स विलीन हो जाता है। उसका कोई पता नहीं चलता, जब तक कि वह केंद्र पुनः सक्रिय न हो जाए।
सौ में से तीन लोगों का केंद्र जन्म से ही निष्क्रिय होता है। और इस तरह के तीन प्रतिशत लोगों को समझ में ही नहीं आता कि लोग इतने पागल क्यों हैं? इतने दीवाने क्यों हैं? उनकी समझ के बिल्कुल बाहर होगा, उनकी कल्पना के ही बाहर होगा।
छोटे बच्चों का सेक्स केंद्र निष्क्रिय होता है। धीरे-धीरे सक्रिय होना शुरू होता है। चौदह वर्ष के करीब जाकर वह ठीक से गति लेता है। उसके पहले उन्हें कुछ बोध नहीं कि क्या हो रहा है। वह केंद्र जब सक्रिय होगा तभी बोध होगा। वह केंद्र सक्रिय नहीं होगा तो बोध नहीं हो सकता है।
इस बात को अपने चित्त में बहुत साफ होना चाहिए कि मेरा यह केंद्र अति सक्रिय तो नहीं है? अगर अति सक्रिय है, तो ध्यान के करने के पहले और ध्यान के बाद निरंतर अपने मन में यह दोहराना चाहिए कि मेरा यह केंद्र कम सक्रिय हो जाए। ध्यान के पहले और ध्यान के बाद, उस केंद्र पर भीतर ध्यान ले जाकर मन में यह सुझाव देना चाहिए कि केंद्र कम सक्रिय हो जाए। थोड़े ही दिनों में एक बुनियादी फर्क दिखाई पड़ना शुरू होगा।
उस केंद्र के बाद दूसरा केंद्र नाभि का केंद्र है। नाभि का केंद्र फियर और भय का केंद्र है। जैसे जननेंद्रिय का केंद्र सेक्स का केंद्र है, वैसे नाभि का केंद्र भय का केंद्र है। यह शायद आपको ख्याल में आया होगा कि जब भी आप भयभीत होंगे, नाभि डांवाडोल हो जाएगी और परेशान हो जाएगी।
अगर आप कार चला रहे हैं और एकदम से एक्सीडेंट हो, तो आपके शरीर में जो झटका पहुंचेगा वह नाभि पर पहुंचेगा, और कहीं नहीं। अगर कोई आदमी एकदम से आपकी छाती पर छुरा लेकर चढ़ जाए, तो सबसे बड़ा झटका नाभि पर पहुंचेगा। नाभि भय का केंद्र है। इसीलिए बहुत भय की अवस्था में किसी का मल-मूत्र भी छूट सकता है। उसके छूटने का और कोई कारण नहीं है। नाभि इतनी सक्रिय हो जाती है कि पेट को खाली करना जरूरी हो जाता है, अन्यथा नाभि सक्रिय नहीं हो सकती। नाभि भय का केंद्र है। जिन लोगों का भय का केंद्र बहुत सक्रिय है, उनको थोड़ा नाभि पर ध्यान देना अत्यंत जरूरी है। इसलिए बहुत-बहुत प्राचीन समय से, जिन लोगों को युद्ध की शिक्षा दी जाती, उनके नाभि केंद्र को ही सबल करने की कोशिश की जाती है। भय वहीं पकड़ता है। भय और कहीं भी नहीं पकड़ता। कभी आपको भय खोपड़ी में नहीं पकड़ेगा। जब भी भय पकड़ेगा तब पेट में पकड़ेगा। और स्त्रियां ज्यादा भयभीत होती हैं, उसका कुल कारण इतना है कि स्त्री को पेट में गर्भ रखना पड़ता है और उसका नाभि केंद्र निरंतर निर्बल और कमजोर होता चला जाता है।
स्त्री और पुरुष के बीच भय का और कोई भेद नहीं है। और इसलिए पश्चिम में जैसे-जैसे स्त्रियां बच्चों को पैदा करने से इनकार कर रही हैं, उनका भय समाप्त होता चला जा रहा है। अगर स्त्रियां कुछ समय तक बच्चे देना बंद कर दें, तो वे करीब-करीब पुरुषों जैसी हालत में खड़ी हो जाएंगी। इसलिए दुनिया की जिन कौमों में भी स्त्रियां पुरुषों जैसी होने की कोशिश कर रही हैं, वहां वे मां बनने से इनकार करना शुरू कर देंगी। क्योंकि पुरुष नहीं बना जा सकता जब तक कि मां बनने की प्रक्रिया जारी है। क्योंकि वह जो मां बनने की स्थिति है, वही सारे व्यक्तित्व को भय से भर देती है।
वह जो नाभि केंद्र है वह भय का केंद्र है। जब आप भयभीत होंगे तब आपका पाचन एकदम खराब हो जाएगा। चिंतित होंगे, पाचन खराब हो जाएगा। इसीलिए चिंता और भय के कारण... दुनिया में आज बहुत भय है और बहुत चिंता है। अल्सर की बीमारी का और कोई कारण नहीं होता। जितना भयभीत और चिंतित आदमी होगा, पेट की सारी की सारी व्यवस्था धीरे-धीरे विकृत और खराब होती चली जाएगी।

यह ध्यान रखना जरूरी है कि अगर काम केंद्र सक्रिय हो तो आदमी जिस धर्म
को जन्म देगा या जिस तरह के धर्म को मानेगा, वह धर्म किसी न किसी तरह सेक्सुअल आर्गी का धर्म होगा। सबसे प्राचीन धर्म के जो प्रतीक हैं वे जननेंद्रिय के प्रतीक हैं, फैलिक हैं। जैसे शंकर का शिवलिंग है, या यूनान में, या रोम में, या मिश्र में जो प्राचीनतम, मेसोपोटामिया में, बेबीलोन में, सीरिया में या हड़प्पा-मोहनजोदड़ो में जो सबसे प्राचीनतम जो मूर्तियां मिली हैं, वे सब फैलिक हैं। वे सब जननेंद्रिय के ही प्रतीक हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आज से कोई बीस हजार वर्ष पहले जो भी दुनिया में सभ्यता थी, वह चूंकि अभी जानवरों से बहुत आगे विकसित नहीं हुई थी, इसलिए भगवान का प्रतीक भी जननेंद्रिय ही हो सकती थी। वही केंद्र सबसे ज्यादा सक्रिय था। उस केंद्र के बाद जैसे-जैसे मनुष्य थोड़ा बलशाली हुआ, और थोड़ा पार हुआ वासना के, और भी उसने कुछ सोचना शुरू किया, भगवान की जो प्रतिमा बननी शुरू हुई वह भयभीत करने वाले भगवान की थी। ओल्ड टेस्टामेंट में, या पुराने भगवान के जो रूप हैं रुद्र के, वे सारे के सारे रूप घबड़ाने वाले, डराने वाले रूप हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य का जो दूसरा केंद्र है भय का, उस भय के केंद्र ने भयभीत करने वाले भगवान को जन्म दिया।
वह जो मंदिरों में हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने वाला आदमी है, भगवान के चरणों में सिर रखने वाला आदमी है, जो कंपता है और कहता है, हे भगवान, बचाओ! अगर वह थोड़ा भी ध्यान रखेगा तो उसे पता चलेगा कि उस प्रार्थना करने के क्षण में उसकी नाभि का केंद्र सबसे ज्यादा सक्रिय होगा। दुनिया जितनी शिक्षित होगी, जितना दुनिया में भय कम होगा, उतना ही पूजा और प्रार्थना करने वाले धर्म जमीन से अपने आप समाप्त होते चले जाएंगे। क्योंकि वे धर्म नाभि के केंद्र से विकसित होते हैं। अगर नाभि का केंद्र मजबूत हुआ तो वे विलीन हो जाएंगे।
मंदिरों में पुरुषों की बजाय स्त्रियां ज्यादा दिखाई पड़ती हैं। उसका कोई और कारण नहीं है, उनका नाभि का केंद्र पुरुषों से ज्यादा क्षीण है। जहां एक पुरुष होगा, वहां कम से कम चार स्त्रियां मंदिर में होंगी। सारे मंदिर स्त्रियां चलाती हैं। सारे साधु-संतों को स्त्रियां चलाती हैं। भय! भय वाला भगवान उन्हें अपील करता है, उन्हें सार्थक मालूम पड़ता है।
इस पर ध्यान जाना जरूरी है कि जो आदमी भी जीवन में बहुत भयभीत हो उसे ध्यान के साथ नाभि के केंद्र पर थोड़े प्रयोग करने जरूरी होते हैं, उस केंद्र को मजबूत करने के सुझाव देने जरूरी होते हैं। और यह बड़े मजे की बात है कि ये केंद्र चूंकि प्राणों के केंद्र हैं, विद्युत के केंद्र हैं, ये मात्र सुझाव से परिवर्तित हो जाते हैं। इनके लिए कुछ और करना नहीं पड़ता। उसके बाद तीसरा केंद्र हृदय का केंद्र है। वह राग का केंद्र है, मोह
का केंद्र है, लगाव का केंद्र है। जो लोग तीसरे केंद्र से प्रभावित होते हैं, वे किसी न किसी तरह के भक्ति वाले धर्म में दीक्षित हो जाएंगे। जहां राग, मोह, उस तरह के आसक्ति की पकड़ने की संभावना हो। यह तीसरे केंद्र पर भी ध्यान रखना जरूरी है। इसे भी समझ लेना जरूरी है कि वह क्या-क्या कर सकता है। वह भी बहुत सक्रिय है।
पूरब के मुल्कों में बहुत सक्रिय है, पश्चिम के मुल्कों में कम होना शुरू हुआ है। इसलिए पश्चिम के मुल्कों में परिवार टूट रहा है। परिवार के टूटने को कभी नहीं रोका जा सकता पश्चिम में, जब तक कि उनके हृदय के केंद्र को मजबूत करने की कोई वैज्ञानिक प्रक्रिया में दीक्षित न किया जाए। परिवार वहां टूटता ही चला जाएगा। क्योंकि राग का केंद्र टूट गया है, या टूट रहा है, या शिथिल हो गया है, या निष्क्रिय है। पूरब के मुल्कों में भी घटना शुरू हो गई है।
और यह भी ध्यान रहे कि यह केंद्र भी पुरुष की बजाय स्त्री का ज्यादा सक्रिय है। इसलिए परिवार को बनाने वाला पुरुष नहीं है, परिवार को बनाने वाली स्त्री है। इस भूल में कोई न रहे कि परिवार पुरुष ने निर्मित किया है। पुरुष परिवार निर्मित कर ही नहीं सकता। परिवार पुरुष के बावजूद निर्मित हो गया है, पुरुष तो परिवार से प्रतिपल भागने की चेष्टा में रत है, वह तो प्रतिपल भाग जाना चाहता है। उसका कोई राग का केंद्र उतना तीव्र नहीं है। स्त्री ने सारी की सारी सभ्यता खड़ी की है। परिवार और घर उसने खड़ा किया

है। पुरुष जन्म से खानाबदोश है। वह भटकने वाला है। वह भटकता रहे, उतना सुखी होगा। जितना भटके उतना सुखी होगा। स्त्री एक जगह खूंटी गाड़ कर बैठ जाना चाहती है। भटकना उसे बहुत कठिन मालूम पड़ता है। भटकना उसके मन की बात नहीं है। कहीं वह लगाव बांध ले; कोई छोटी जमीन हो, कोई छोटा मकान हो, जहां वह बैठ जाए। और इसीलिए परिवार, कैसा ही परिवार हो, पुरुष उसमें कभी भी केंद्र नहीं है, वह उसकी परिधि पर घूमता रहता है, उसका केंद्र स्त्री बन जाती है।
वह जो केंद्र है राग का, उस केंद्र पर भी विचार करना, समझना जरूरी है
कि मेरे व्यक्तित्व में वह बहुत महत्वपूर्ण है या नहीं।
अभी मैं सिर्फ समझा रहा हूं कि ये केंद्र क्या काम करते हैं। फिर हम आगे उसकी बात को सोच सकते हैं कि उनसे और क्या काम लिया जा सकता है।
उस केंद्र के बाद कंठ का केंद्र है। यह केंद्र व्यक्तित्व को वाणी देता है, विचार भी देता है। और जिन लोगों का कंठ का केंद्र बहुत सक्रिय है, उनका जीवन अक्सर सिर्फ विचार करने में, बातचीत करने में खो जाता है। वे कुछ और नहीं कर पाते। मौन की साधना इस कंठ के केंद्र को निष्क्रिय करने की साधना है।
उसके बाद, कल जो मैंने ध्यान करने के लिए कहा था, दोनों आंखों के बीच,
वह छठवां केंद्र है, वह आज्ञा चक्र है। वह बहुत महत्वपूर्ण चक्र है। उस चक्र के द्वारा ही व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को रूपांतरित करता है, या रूपांतरित कर सकता है।
लेकिन हमारे आज्ञा चक्र भी बहुत क्षीण हैं। हम अपने को कोई आज्ञा ही नहीं दे सकते हैं। अगर एक आदमी रात को तय करता है कि कल सुबह चार बजे उठूंगा। सुबह चार बजे पाता है कि वह खुद ही कह रहा है कि आज रहने दें, बहुत सर्दी है, फिर कल देखेंगे। सुबह उठ कर पछताता है और कहता है कि मैंने तय किया था कि चार बजे उठना है, फिर यह क्या हो गया? आज कसम खाता हूं कि आज जरूर उठूंगा, अब भूलूंगा नहीं। चार बजे फिर रात, और फिर वह अपने को कहता है कि नहीं, आज जाने दो, फिर कल देखेंगे। सुबह फिर पछताता है। बात क्या है? एक आदमी एक वचन देता है और पूरा नहीं करता। एक आदमी तय करता हैः यह करूंगा, और नहीं कर पाता है। इस सबके पीछे कारण क्या है? इस सबके पीछे एक ही कारण है, वह जो आज्ञा चक्र है, संकल्प का, जो विल का केंद्र है, वह विल का केंद्र हमारा एकदम शिथिल है या न के बराबर है।
वह जो मैंने कल कहा कि ध्यान करते वक्त दोनों आंखों के मध्य में ध्यान होना चाहिए, वहां ध्यान होने से आप जो भी करेंगे वह मजबूती से और गहराई से भीतर प्रविष्ट होगा। ध्यान वहां रहेगा तो जितनी तीव्रता से आप जो भी करना चाहते हैं, वह कर सकेंगे। यह आपने ख्याल किया होगा कि यह जो चक्र है, जब भी आपको निर्णय करना पड़े, कोई डिसीजन लेना पड़े, तो आपको सबसे ज्यादा भार आपकी दोनों आंखों के बीच में पड़ेगा। जब भी आपको कोई निर्णय करना पड़े, कोई निर्णय लेना पड़े कि मैं क्या करूं! तो मस्तिष्क पर उस जगह भार पड़ेगा जहां मैं कह रहा हूंः दोनों आंखों के बीच में। क्योंकि वहीं डिसीजन लिए जाते हैं, वहीं आज्ञाएं ली जाती हैं, वहीं संकल्प किए जाते हैं। और जो व्यक्ति वहां संकल्प लेने में समर्थ हो जाता है, उसके संकल्प पूरे होने शुरू हो जाते हैं। वह जो वहां निर्णय करता है, वे निर्णय पूरे होने शुरू हो जाते हैं। वह जो वहां चाहता है अपने व्यक्तित्व में, वे फर्क होने शुरू हो जाते हैं।
यह बड़े आश्चर्य की बात है कि हमारे व्यक्तित्व को बदलने के लिए बहुत काम करने का उतना सवाल नहीं है, जितना संकल्प करने का सवाल है। संकल्प सूत्र है व्यक्तित्व को बदलने का, काम नहीं। लेकिन संकल्प होना चाहिए पूर्ण। और पूर्ण संकल्प शरीर के और किसी कोने पर नहीं लिया जाता, पूर्ण संकल्प आज्ञा चक्र में लिया जाता है। इसलिए समस्त ध्यान की प्रक्रियाएं आज्ञा चक्र के पास ही घूमती हैं, केंद्रित होती हैं। क्योंकि ध्यान वहीं से गहरा प्रविष्ट हो सकता है और अंतस में जा सकता है।
अगर आप अफ्रीका के जंगली आदमियों से पूछें, या आस्ट्रेलिया के बुशमेन
से पूछें, या अमेजान के जंगलों में रहने वाले आदिवासी से पूछें, तो आप हैरान हो जाएंगे एक बात जान कर। जब पहली बार इन आदिवासियों को यह खबर लगी

कि दुनिया के दूसरे लोग सिर से सोचते हैं, तो वे बहुत हंसने लगे। उन्होंने कहा, सिर से कोई सोच ही नहीं सकता, हम तो पेट से सोचते हैं।
आदिवासी पेट से ही सोचता है। वह जो मैंने नाभि का चक्र कहा, उसी से सोचता है। वे अभी पशुओं से बहुत ज्यादा विकसित हालत में नहीं हैं। हजारों साल तक करोड़ों लोग यही समझते रहे हैं कि सोचने की प्रक्रिया पेट में होती है, बेली में होती है, सोचने की प्रक्रिया बुद्धि में नहीं होती। और हममें से भी बहुत ही कम लोग सिर से सोचते हैं। जितने भी विश्वास करने वाले लोग हैं वे पेट से सोचते हैं, वे कभी भी सिर से नहीं सोचते। क्योंकि विश्वास करने के लिए सोचना ही नहीं पड़ता है। और इसलिए जो आदमी विश्वास ही किए चला जाता है उसके ऊपर के चक्र कभी विकसित नहीं होते, उसके नीचे के चक्र ही रह जाते हैं, वही सक्रिय रह जाते हैं।
इसलिए मैं निरंतर विरोध करता हूं कि किसी पर श्रद्धा मत करना, किसी पर विश्वास मत करना। क्योंकि जब तक कोई स्वयं सोचना शुरू न करे, उसके सोचने के अपने चक्र सक्रिय नहीं होंगे। और अपने चक्र सक्रिय न हों तो व्यक्ति करीब-करीब हवा में भटकता हुआ एक पत्ते की भांति रह जाता है। उसके पास न अपनी कोई विल है, न अपना कोई संकल्प है, न अपनी कोई दृढ़ स्थिति है। उसके पास अपना कुछ भी नहीं है। वह किसी के पीछे चल रहा है।
दुनिया के नेता आदमी को जितना नुकसान पहुंचाते हैं उतना और कोई नहीं पहुंचाता। क्योंकि दुनिया के सब नेता आर्डर्स देते हैं और आपसे कहते हैं, आपको सिर्फ स्वीकार करना है। दुनिया के गुरु आज्ञाएं देते हैं और लोगों से कहते हैं, आपको स्वीकार करना है। आपका अपने आज्ञा का चक्र कभी विकसित नहीं हो पाता।
दुनिया में जो इतनी मनुष्य-जाति दीन-हीन दिखाई पड़ती है, इस दीन-हीनता में सबसे बड़ा कारण यह है कि हम मनुष्य-जाति को आज्ञाएं देते हैं, उसकी अपनी आज्ञा की क्षमता को विकसित नहीं होने देते। छोटे से बच्चे को हम आज्ञाएं देना शुरू करते हैं--यह करो और यह मत करो! हम कभी इसकी फिक्र नहीं करते कि उसकी अपनी चिंतना, अपना डिसीजन, अपना निर्णय विकसित हो सके। उस बच्चे का आज्ञा चक्र कभी भी विकसित नहीं हो पाता, वह अधूरा ही रह जाता है। और अगर आज्ञा चक्र विकसित न हो तो आदमी का व्यक्तित्व ही विकसित नहीं हो पाता है। बच्चों को हम समझाते हैं--ऐसे बनो, ऐसे बनो। लेकिन हम यह भूल ही जाते हैं, वे बच्चे वैसे कभी नहीं बनेंगे। वे बन सकते हैं, लेकिन उनके बन सकने के लिए उनके चक्रों पर ध्यान देना पड़ेगा, जिनसे व्यक्तित्व निर्मित होता है। जो मां-बाप जानते हैं, जो शिक्षक जानते हैं, वे बच्चे के मस्तिष्क के आज्ञा चक्र पर पूरा श्रम करेंगे।
यह शिक्षा बहुत अधूरी और बहुत बेमानी है। क्योंकि इस शिक्षा में मनुष्य के बुनियादी सूत्रों के संबंध में कोई चिंतन नहीं है, कोई विचार नहीं है। अगर हम बच्चों की यूनिवर्सिटी तक आते-आते उनके आज्ञा चक्र को, उनके संकल्प को विकसित कर सकें, हम सारी दुनिया को बदल देंगे। एक नई दुनिया और एक नया आदमी पैदा हो जाएगा। एक आदमी, जिसमें बल है। एक आदमी, जो सोचता है--वैसा करता है, वैसा कर सकता है। एक आदमी, जिसमें साहस है। एक आदमी, जिसमें कि हिम्मत है, जिसमें करेज है। लेकिन वह हममें हो नहीं सकता, क्योंकि जिस चक्र से वह सारी चीजें आती हैं वह चक्र ही हमारा सोया रह जाता है।
गुरजिएफ था यूनान में एक अदभुत आदमी, कुछ वर्षों पहले उसकी मृत्यु हुई। वह एक छोटा सा प्रयोग अपने साधकों को कराता था। उस प्रयोग का नाम थाः स्टाप एक्सरसाइज। एक छोटा सा प्रयोग वह अपने साधकों से कहता थाः रुक जाओ। हम यहां बैठे हैं। गुरजिएफ अगर अपना प्रयोग कराता तो वह यह कहता था कि
जब मैं कहूं--स्टाप! रुक जाओ! तो जो जहां है, जैसा है, वैसा ही रुक जाए। अगर बोलने के लिए मुंह खोला है, तो फिर बंद मत करना, मुंह खुला ही रह जाए। अगर चलने के लिए पैर उठाया तो फिर हिलाना मत, पैर वहीं रह जाए, चाहे गिरो, चाहे मरो।
क्यों? यह क्या पागलपन की एक्सरसाइज है! इससे क्या मतलब है? लेकिन जिन लोगों ने उसके साथ यह प्रयोग किया वे दूसरे आदमी हो गए। और उन्होंने कहा, हम हैरान हो गए, इतना छोटा सा प्रयोग कितनी क्रांति करवा सकता है!

क्योंकि बहुत बल चाहिए इस बात में। आप अपने को धोखा देने की कोशिश करेंगे--कि कोई देख तो रहा नहीं, पैर इतना ऊंचा बहुत तकलीफ दे रहा है, थोड़ा नीचे करके रख लो। और अगर नीचे करके रख लिया तो किसी और का नुकसान नहीं किया, वह जो चक्र आपके भीतर जिसको विकसित करने के लिए वह एक्सरसाइज थी, वह बेमानी चला गया। लेकिन अगर आपने हिम्मत की और आप खड़े रह गए, वैसे ही जैसे आप थे--आंख खुली थी तो आंख खुली रह गई, अब पलक झपेगी नहीं; हाथ ऊपर उठा था तो ऊपर रह गया; मुंह खुला था तो मुंह खुला रह गया; एक पैर ऊपर उठा था, एक पैर ऊपर उठा रह गया; कमर झुकी थी तो झुकी रह गई; बहुत तकलीफ होगी, लेकिन अब हिलना भी नहीं है। और इस प्रक्रिया में जो खड़ा रह जाएगा, वह अपने को आज्ञा दे रहा है, वह अपने संकल्प को बल दे रहा है।
एक बार वह तिफलिस में ठहरा हुआ था गुरजिएफ, रूस के एक छोटे गांव में, अपने तीस मित्रों को लेकर। उनको साधना के लिए ले गया था। और उसने कहा था कि तीस दिन निरंतर स्टाप एक्सरसाइज के सिवाय कुछ भी नहीं करना है। जब भी मैं कहूं--स्टाप! तब तुम रुक जाना, जो जहां हो। कोई स्नान करता हो तो वहीं ठहर जाएगा, कोई भोजन करता हो तो वहीं ठहर जाएगा। जो जो कर रहा हो, बस वैसे ही ठहर जाना, जैसे मूर्ति हो गए।
पास ही, उस तंबुओं के पास जहां वे ठहरे थे, एक नहर बहती थी। नहर सूखी थी, कभी-कभी उसमें पानी छोड़ा जाता था। सुबह का वक्त था, सारे तीस लोग आस-पास घूमने निकले हुए थे। तीन आदमी उस नहर को पार कर रहे थे। सूखी नहर थी, पानी नहीं था। अचानक गुरजिएफ ने अंदर से चिल्लाया--स्टाप! तो सारे लोग रुक गए, वे तीन लोग भी रुक गए।
किसी ने पानी छोड़ दिया नहर का, पानी जोर से भागा हुआ आया। गुरजिएफ तंबू के भीतर बंद है। उन तीन आदमियों की कमर तक पानी भर गया, गले तक पानी भर गया। जब गले के ऊपर पानी बढ़ने लगा, तो एक आदमी छलांग लगा कर बाहर निकल गया। उसने कहा, उसे पता नहीं है, वे तो तंबू के भीतर बैठे हुए हैं, और हमारी यहां जान जाने के करीब आ गई। वह बाहर निकल गया।
उसे पता नहीं कि उसने एक मौका चूक गया। एक मौका, जब कि पूरा शरीर कह रहा था कि हट जाओ बाहर, तब सिर्फ संकल्प कह सकता था कि नहीं हटते हैं! जान दांव पर लगाते हैं, लेकिन बदलेंगे नहीं। तो वह जो चक्र सोया हुआ है, सक्रिय हो जाता। एक शॉक, एक धक्का, और वह चल पड़ता। लेकिन वह चूक गया; वह बाहर कूद गया। अक्सर लोग कूद जाएंगे। आप भी होते तो कूद गए होते। उसने कोई गलती नहीं की थी।
दो व्यक्ति रह गए। फिर इसके बाद मुंह तक पानी आ गया। और जब नाक तक पानी आया तो दूसरे ने भी सोचा कि अब खतरा है, वह भी छलांग लगा कर बाहर हो गया। लेकिन तीसरा आदमी खड़ा रहा। खतरा उसको भी दिखाई पड़ा, अंधा नहीं था। जान जाने की नौबत दिखाई पड़ी। मौत सामने आ गई। पानी सिर के ऊपर से निकल गया।
लेकिन उसने कहा कि अब जो भी हो जाए, जो तय किया है तो तय किया है।
गुरजिएफ भागा पागल की तरह तंबू के भीतर से। वह नहर तो जान कर छुड़वाई
गई थी। कूदा पानी में, उस आदमी को बाहर निकाला। वह आदमी दूसरा आदमी हो गया। गुरजिएफ ने कहा कि एक मौका मिला था, दो साथी तेरे चूक गए। इस दबाव में, इतने तेज दबाव में कि मौत सामने आ गई, लेकिन संकल्प नहीं बदला। तो फिर और कब चलेगा वह चक्र, वह चल पड़ा। वह आदमी दूसरा हो गया।
अब यह आदमी जो चाहेगा हो जाएगा। यह अपने विचार को कह दे कि रुक जाओ! तो फिर विचार चल नहीं सकते भीतर। यह आदमी कह दे कि श्वास रुक जाओ! तो फिर श्वास एक बार आगे नहीं चल सकती। यह आदमी कह दे कि मैं इसी वक्त मरता हूं! तो आप पाएंगे कि वह आदमी मर गया। यह आदमी अब जो चाहेगा अपने लिए, हो जाएगा। दक्षिण में एक बहुत बड़े संगीतज्ञ का जन्मदिन मनाया जाता था। कोई तीन
सौ वर्ष पहले की बात है। बहुत बड़े-बड़े मित्र थे उसके, बहुत बड़े-बड़े शिष्य थे, बड़े राजा-महाराजा थे। उन सबने मिल कर उसका आयोजन किया था। उसकी साठवीं वर्षगांठ मनाई जाती थी। उसके हजारों शिष्य अपनी-अपनी भेंटें लेकर आए थे। एक गरीब फकीर भी उसका शिष्य था, जो सड़कों पर तंबूरा बजा कर भीख मांगता था। उसके पास तो कुछ भी नहीं था। आधी रात बीत गई, सारी भेंटें देकर लोग जा चुके। तब वह भिखारी द्वार पर आया और उसने द्वारपालों से कहा, मुझे भीतर जाने दें, अपने गुरु को मैं भी कुछ भेंट देना चाहता हूं। लेकिन उसके हाथ

खाली थे, कपड़े फटे थे। उस द्वारपाल ने कहा, तुम्हारे पास कुछ दिखाई नहीं पड़ता। उसने कहा, मैं तो हूं। द्वारपाल ने कहा, कोई पागल है, जाने दो; चले जाओ, ठीक है।
वह भीतर गया। सारे लोग विदा होने के करीब हैं, सारा भवन भेंट की चीजों
से सजा है, करोड़ों रुपये की भेंट आई है। तब उस भिखारी ने जाकर गुरु के चरणों में सिर रखा और उसने कहा कि मैं भी एक भेंट लाया हूं, क्या आप स्वीकार करेंगे? गुरु ने भी देखा उसके हाथ खाली हैं और कुछ भी नहीं। उसने कहा, लेकिन भेंट कोई दिखाई नहीं पड़ती। उसने कहा, मैं जो हूं। वह हाथ जोड़ कर खड़ा हुआ और उसने कहा कि परमात्मा, मेरे पास तो देने को कुछ नहीं, मेरी उम्र मेरे गुरु को मिल जाए! उसने यह कहा और उसकी श्वास खतम हो गई, वह वहीं मरा हुआ गिर पड़ा।
यह आदमी में क्या रहा होगा? इसने कहा कि मेरी उम्र... कितनी बार आपने नहीं कहा है लोगों से कि मेरी उम्र आपको मिल जाए। वह नहीं मिलेगी। आप भी जानते हैं, दूसरा भी जानता है। लेकिन आज्ञा चक्र उपलब्ध हो जाए तो कभी भूल कर ऐसी बात मत कहना किसी से। लोग कहते हैं कि संतपुरुष किसी के संबंध में कोई बुरी बात नहीं कहते। उसका कोई कारण यह नहीं है कि संतपुरुष बुरी बात नहीं कह सकते। बुरी बात कह सकते हैं, लेकिन कहना खतरनाक साबित हो सकता है। उतने संकल्प से निकली बात सार्थक हो सकती है। उतने संकल्प से दिया गया विचार बहुत सजीव हो जाता है। उसमें एक ऊर्जा और एक शक्ति मिल जाती है।
हम कहते हैं लोगों से कि मन शांत नहीं होता। बहुत बैठते हैं, बहुत यह करते हैं, मन तो अशांत रहता है, चंचल रहता है। रहेगा। क्योंकि आपको पता ही नहीं कि इसको कहा जा सकता है--रुक जाओ! और इसे रुकना पड़े। लेकिन "रुक जाओ!" में कोई बल तो चाहिए।
जीसस के बाबत मैंने सुना है। जीसस और उनके दो मित्र एक झील पर एक नाव में सवार हैं। जोर का तूफान आ गया। और जीसस सो रहे हैं एक कोने में। उनके मित्र उन्हें आकर हिलाते हैं कि नाव डूबने के करीब है, खतरा है, उठिए, और आप सो रहे हैं! जीसस कहते हैं कि मैं तो अभी थोड़ा सो लूं, रात भर का थका हूं, खतरा है तो तुम जूझो। लेकिन नाव डूबने के करीब होने लगी, अब डूबी, अब डूबी। वे मित्र फिर आए, उन्हें बड़ा क्रोध भी आया कि हम मर रहे हैं, डूब रहे हैं, और यह आदमी सो रहा है!
जाकर जीसस को उठाया। जीसस ने कहा, जाओ और झील को कह दो कि शांत हो जाओ! उन्होंने कहा, पागल हो गए हो? झील किसी की मानती है! जीसस ने कहा, अगर तुम्हारे भीतर की झील तुम्हारी मानती हो, तो बाहर की झील भी मान सकती है। लेकिन अपनी भीतर की झील पर ही कोई भरोसा नहीं, कोई विश्वास नहीं, तो बाहर की झील से क्या कहेंगे?
कहानी बड़ी मधुर है। जीसस झील के पास गए और कहा कि चुप हो जा! शांत हो जा! और कहानी कहती हैः झील शांत हो गई, वह तूफान खो गया।
बाहर की झील हुई हो या न हुई हो, यह सवाल नहीं है। लेकिन भीतर की झील के बाबत मैं भी आपको यह आश्वासन दिलाता हूं कि अगर एक बार कहने का बल आ जाए और भीतर कोई मुड़ कर कह दे कि बस! तो भीतर सन्नाटा छा जाता है। जैसे कोई तूफान नहीं है, कभी था ही नहीं। लेकिन हम रोते-धोते, चिल्लाते हैं बहुत; सामायिक करते हैं, प्रार्थना करते हैं, नमोकार पढ़ते हैं, न मालूम क्या-क्या करते हैं, कुछ होता नहीं। होगा भी नहीं। क्योंकि हो सकता है, एक चक्र के सक्रिय होने से--विल, संकल्प के सक्रिय होने से। वह तो नहीं है। वह नहीं है, फिर हम कहते हैं, वह सब थोथा पड़ जाता है, वह कहीं जाता ही नहीं। जो भी हम चाहते हैं, वह सिवाय इस चक्र के और कहीं से भीतर प्रवेश नहीं कर सकता है।
इसलिए ध्यान में उस चक्र पर जोर से नजर रखनी है। और यह बड़े रहस्य की बात है कि जितनी गहरी उस पर नजर हो, उतनी ही शीघ्रता से वह सक्रिय हो जाता है। चक्रों को सक्रिय करने का उपाय--उन पर अटेंशन, उन पर ध्यान देना है। जिस चक्र पर ध्यान जाएगा वही चक्र सक्रिय हो जाएगा।
इसका आपको शायद पता भी नहीं होगा कि अगर आप अपनी नाड़ी पर हाथ रख कर गिनती करें, तो जितनी गिनती निकलेगी, फिर दुबारा नाड़ी पर पूरा ध्यान देकर गिनती करें और आप पाएंगे कि नाड़ी की गति बढ़ गई। सिर्फ ध्यान देने से गति बढ़

जाएगी। ध्यान नाड़ी पर दिया और गति बढ़ी। आप श्वास पर बैठ कर पांच मिनट ध्यान दें और आप पाएंगे कि श्वास गहरी हो गई।
चक्रों के मामले में तो और भी अदभुत बात है--जिस चक्र पर ध्यान देंगे वही सक्रिय हो जाएगा। ध्यान चक्र का भोजन है, फ्यूल। पेट्रोल डाल दिया गाड़ी में और गाड़ी चल पड़ी। अकेले नाम से नहीं चलेगी गाड़ी।
हालांकि मैंने ऐसी अफवाह सुनी है। एक बार ऐसा हुआ कि फोर्ड की एक दुकान में एक आदमी कार खरीदने गया। उसने जो गाड़ी पसंद की, उसको दिखाने के लिए मैनेजर वह कार निकाल कर बाहर गया। पांच-सात मील जाकर वह गाड़ी एकदम झटका खाकर बंद हो गई। उस देखने वाले ग्राहक ने कहा कि बड़ी हैरानी की बात है, नई गाड़ी और एकदम बंद हो गई, सात ही मील चल कर! यह नहीं चलेगा।
उसने, मैनेजर ने अपने ड्राइवर को कहा कि जरा गौर से देख, पेट्रोल डाला
भी था कि बिना डाले ही ले आया है!
उस ड्राइवर ने कहा, पेट्रोल तो डालना भूल ही गए। नई गाड़ी है, पेट्रोल
तो बिल्कुल है ही नहीं, कभी डाला ही नहीं गया।
वह ग्राहक हैरान हुआ, उसने कहा, फिर सात मील कैसे आई?
उस मैनेजर ने कहा, इतना तो फोर्ड के नाम से चल जाती है।
लेकिन गाड़ी-वाड़ी चल जाती होगी, नाम-वाम लेने से चक्र नहीं चलने वाला। वहां कुछ करना पड़ेगा। उसको फ्यूल देने की जरूरत है। और फ्यूल एक ही है। चेतना के जगत में, कांशसनेस के जगत में ध्यान एकमात्र भोजन है, एकमात्र शक्ति है। इसलिए मैंने कहा कि वह "मैं कौन हूं?" का तीव्र स्मरण करते समय, ध्यान होना चाहिए आज्ञा चक्र पर। और आप अनुभव करेंगे। और पंद्रह मिनट आज हम प्रयोग करेंगे। उसके पहले आप अपने सिर पर हाथ रख कर थोड़ा देख लेना और पंद्रह मिनट के बाद हाथ रख कर देखना। आप पाएंगे कि उतनी जगह, थोड़ी सी जगह गरम हो गई है, बाकी हिस्सा गरम नहीं है।
वह जब भीतर कुछ चलता है तो बाहर तक गर्मी आ जाती है। सच तो यह है कि जिनको चक्रों का अनुभव है वे आपके शरीर पर हाथ रख कर जांच कर ले सकते हैं कि कौन सा चक्र सक्रिय है।
रामकृष्ण की तो बड़ी आदत थी। विवेकानंद पहली दफा गए तो रामकृष्ण बगल
के कमरे में ले गए, द्वार बंद कर दिया और कहा, कमीज खोल! विवेकानंद थोड़ा घबड़ाए कि यह क्या मामला है? कमीज किसलिए खोलें? वह तो अच्छा हुआ कि लड़के थे, लड़की होते तो बहुत झंझट हो जाती। रामकृष्ण ने कहा, पहले कमीज खोल! विवेकानंद ने कमीज खोली, रामकृष्ण ने छाती पर हाथ रखा और कहा, ठीक है, हो जाएगा। विवेकानंद बाद में उनसे बहुत पूछने लगे कि क्या हो जाएगा? क्या देखा आपने? रामकृष्ण ने कहा, पहले देख तो लूं कि कौन सा चक्र तेरा सक्रिय है, नहीं तो मैं किसी दूसरी चीज पर मेहनत करता रहूं और सब गड़बड़ हो जाए।
इस बात की पूरी संभावना है। संभावना क्या, सरल ही बात है। क्योंकि उन चक्रों के, जैसे ही वे सक्रिय होते हैं, शरीर पर अलग बिंदु, अलग अर्थ, अलग ऊष्मा, अलग गर्मी लेना शुरू कर देते हैं।
आपने बुद्ध की, महावीर की मूर्तियों पर सिर के ऊपर बड़े-बड़े बाल के गुच्छे देखे होंगे। वे बाल के गुच्छे नहीं हैं, वह अंतिम चक्र का प्रतीक है सिर्फ कि वह चक्र सक्रिय हो गया। वह चक्र सक्रिय हो गया, उसका प्रतीक हैं वे सिर्फ, बाल वे नहीं हैं। बुद्ध और महावीर की दाढ़ी-मूंछें आपने नहीं देखी होंगी कि दाढ़ी-मूंछ दिखाई पड़ती हों, वे नहीं हैं। वे सिर पर भी बाल नहीं हैं, वह सिर्फ प्रतीक है। और अगर गिनती करेंगे तो आपको पता चलेगा कि वह गिनती एक हजार है, वह जितने खांचे बने हुए हैं सिर के ऊपर। वह एक हजार, जो अंतिम चक्र है उसके एक हजार आरों और पंखुड़ियों के प्रतीक हैं, और कुछ भी नहीं।
वह अंतिम चक्र है सिर के ऊपर के हिस्से में। और जिस आदमी के सिर पर वह चक्र सक्रिय हो जाए, उसके सिर पर हाथ रख कर आप कह सकते हैं कि वह चक्र सक्रिय हो गया। क्योंकि उतना हिस्सा थोड़ा सा ऊपर उठ जाएगा, सारी खोपड़ी से अलग हो जाएगा, थोड़ा सा हिस्सा ऊपर उठ जाएगा। वह अंतिम चक्र ब्रह्म चक्र है। आज्ञा चक्र के बाद वह है और आज्ञा चक्र से ही उसमें प्रवेश मिलता है। वह चक्र सक्रिय हो जाए, तो व्यक्ति इस शरीर से दूसरे शरीर को बिल्कुल पृथक

करने में समर्थ हो जाता है। तब उसे ज्ञात होता है कि मैं यह शरीर नहीं हूं, मैं कुछ और हूं।
ये सात चक्र हैं। इनकी मैंने बात क्यों की? इनकी मैंने इसलिए बात की ताकि आप को ख्याल में आ सके कि आपका केंद्रीय चक्र कौन सा है, एक--आपको समझ-बूझ पूर्वक ध्यान कर लेना चाहिए। और जो आपका केंद्रीय चक्र हो, उससे ऊपर के चक्रों में बढ़ने की कोशिश शुरू करनी चाहिए। और आज्ञा चक्र पर सर्वाधिक जोर देने की जरूरत है, क्योंकि उसके बिना आध्यात्मिक साधना में कोई गति नहीं हो सकती है।
यह ध्यान रहे कि नाभि के नीचे के चक्र सिर्फ नाभि के नीचे ही नहीं हैं, नीचे के चक्र भी हैं, नीचे चक्र भी हैं। नाभि के ऊपर के चक्र सिर्फ ऊपर ही नहीं हैं शरीर में, व्यक्तित्व के ऊपर के विकास के भी चक्र हैं। जो चक्र जितने ऊपर है वह उतने ही ऊपरी विकास का सबूत है। अंतिम चक्र सर्वाधिक विकास का सबूत है। जैसे ही आप इस "मैं कौन हूं?" के ध्यान में तीव्रता लाएंगे और तीन या चार महीने इस प्रयोग को चलाएंगे, आपको अपने चक्रों का स्पष्ट बोध और दर्शन होना शुरू हो जाएगा। आपको यह दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा कि मेरा कौन सा चक्र बिल्कुल निष्क्रिय पड़ा है, कौन सा सक्रिय है। और आपको यह भी दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा कि जो चक्र सक्रिय है, उसी तरह के राग, द्वेष, क्रोध, माया, मोह, वे सब मुझमें सक्रिय हैं।
इसलिए क्रोध को बदलना हो, या मोह को बदलना हो, तो क्रोध और मोह को कोई नहीं बदल सकता; उसके चक्र को निष्क्रिय करने से बदलाहट शुरू हो जाती है। प्रेम जगाना हो, तो कोई प्रेम नहीं जगा सकता; प्रेम के चक्र को सक्रिय कर देने से प्रेम की धारा शुरू हो जाती है। संकल्प पैदा करना हो, तो संकल्प कोई पैदा नहीं कर सकता सीधा। चाहे वह कितना ही तय करे कि मैं अंधेरे में नहीं डरूंगा! मैं दुश्मन से नहीं डरूंगा! लेकिन इससे कुछ नहीं होता। वह दुश्मन से डरेगा ही, अंधेरे में डरेगा ही। वह जो यह कह रहा है कि मैं नहीं डरूंगा, यह भी डर का ही सबूत है, डर की ही खबर है। कोई बहादुर आदमी कभी नहीं कहता कि मैं नहीं डरता हूं। जो भी आदमी कहे मैं नहीं डरता हूं, समझना कि वह आदमी बहादुर नहीं है। नहीं तो उसे यह ख्याल भी पैदा नहीं होता कि मैं नहीं डरता हूं।
अकबर के दरबार में दो राजपूत जवान लड़के एक दिन सुबह-सुबह आए। दोनों जुड़वां भाई हैं। आकर अकबर के दरबार में खड़े होकर उन्होंने कहा कि हम सेना में भर्ती होने की तलाश में हैं। हम दो बहादुर जवान हैं। क्या आपको जरूरत है?
अकबर ने कहा कि तुम बहादुर जवान अपने को कहते हो, कोई सर्टिफिकेट, कोई प्रमाणपत्र लाए हो? हम कैसे मान लें कि तुम बहादुर हो?
वे दोनों हंसने लगे और उन्होंने कहा, हमें ऐसी आशा न थी कि आप जैसा आदमी और यह पूछेगा। बहादुरी का कहीं कोई सर्टिफिकेट हुआ है? कोई प्रमाणपत्र हुआ है? और बहादुर आदमी किसके पास जाएगा लिखवाने? अगर कोई आदमी प्रमाणपत्र लिखवा कर आए तो सबूत हो गया कि यह आदमी बहादुर नहीं है। बहादुर आदमी किसी से प्रमाणपत्र लिखवाएगा कि लिख दो मेरे लिए कि मैं बहादुर हूं? चरित्रवान आदमी किसी के पास जाएगा कि लिख दो कि मैं चरित्रवान हूं? अगर चरित्र खुद अपना प्रमाण नहीं है तो कौन सा पत्र, प्रमाणपत्र प्रमाण हो सकता है?
उन्होंने कहा, हम बहादुर हैं, इतना हम कह सकते हैं। मौका पड़े तो दिखा सकते हैं। लेकिन प्रमाणपत्र नहीं है।
अकबर ने कहा, तो देखें, फिर हम कैसे देखें? कैसे पता चले?
तो उन्होंने कहा, देखना ही चाहते हैं?
अकबर ने कहा, हां, देखना चाहते हैं।
उन दोनों की तलवारें बाहर निकल गईं। अकबर तो एक क्षण घबड़ा गया कि उनका क्या इरादा है! और वे तलवारें तो जूझ गईं एक-दूसरे से। जुड़वां भाई थे, दोनों प्यारे जवान थे अभी, अभी-अभी फूल खिलना शुरू हुआ था। वे एक-दूसरे की छाती में घुस गईं। वे दोनों जवान एक क्षण बाद जमीन पर पड़े थे, खून के फव्वारे बह रहे थे।
अकबर ने कहा, पागलो, यह क्या किया?

तो उन्होंने कहा कि सिवाय मरने के और बहादुर क्या सबूत दे सकता है? बहादुरी का और क्या सबूत हो सकता है--कि हम मर सकते हैं हंसते हुए, एक क्षण में! मौत हमें खेल है।
राजपूत सरदारों को बुलाया अकबर ने और कहा, यह क्या गड़बड़ हो गई?
उन्होंने कहा, आप गलत आदमी हो, आपको पता नहीं कि राजपूत से बहादुरी की बात नहीं पूछनी चाहिए। अब कभी भूल कर मत पूछना। क्योंकि मतलब ही एक होता है कि मौत को हम खेल समझते हैं।
ये जो दो जवान लड़के हैं, इनके आज्ञा चक्र का आपको कुछ अंदाज हो सकता है
कि कैसा रहा होगा। अगर मौत को ये इस तरह खेल सकते हैं, तो परमात्मा को भी इसी तरह पा सकते हैं।
ध्यान रहे, परमात्मा के रास्ते पर भी क्षत्रिय होने की जरूरत पड़ती है,
वह रास्ता भी बनिए का रास्ता नहीं है। वह नहीं है। वह रास्ता भी एक साहस से भरे हुए संकल्पवान आदमी का रास्ता है। इसीलिए दुनिया जितनी कम क्षत्रिय होती चली गई है उतना ही परमात्मा से हमारा संबंध समाप्त होता चला गया है। दुनिया आज वणिक के हाथ में है, वैश्य के हाथ में है। आज हम कह सकते हैं कि बीसवीं सदी बनिए की सदी है। आज दुनिया में ताकतवर वह है जो चालाक दुकानदार है।
अगर हम ऐसा इतिहास को उठा कर देखें तो शायद इतिहास के प्राथमिक चरण और तरह के व्यक्तित्व से प्रभावित रहे हैं। अब और तरह का व्यक्तित्व प्रभावी है। कल शायद और तरह का व्यक्तित्व प्रभावी होगा। एक बात तय है लेकिन कि जिस समाज में जितना साहस कम होगा उतना संकल्प कम होगा; जितना संकल्प कम होगा उतना धर्म कम हो जाएगा। क्योंकि धर्म मूलतः संकल्प की ही अभिव्यक्ति है।
इसलिए मेरा जोर है कि इस चक्र पर पूरी की पूरी चेष्टा करनी है, यह द्वार है। और आज जब हम ध्यान के लिए बैठें तो सारी समग्र शक्ति दोनों आंखों के बीच में चली जाए, कि वहां कोई चीज चलने लगे, कोई सूरज घूमने लगे। और जब पूरी तरह ध्यान वहां होगा तो आप कुछ ही दिन में अनुभव कर सकते हैं--आज भी अनुभव कर सकते हैं--कि जैसे एक छोटा सूरज वहां घूमना शुरू हो गया। उसकी गर्मी भी पूरे मस्तिष्क पर छानी शुरू हो जाएगी।
एक छोटा सा सूरज तेजी से घूम रहा है। जैसे कभी हाथ के संध में से सूरज
को देखा हो घूमते हुए, वैसा छोटा सूरज वहां घूमता हुआ मालूम पड़ेगा। और जैसे-जैसे साधना गहरी होगी, वह सूरज बड़ा होता चला जाएगा। जैसे-जैसे वह बड़ा होगा वैसे-वैसे आपके व्यक्तित्व में दिखाई पड़ने लगेगा कि जो आप कल तक नहीं थे वह होना शुरू हो गए। व्यक्तित्व में एक बल आया; रीढ़ पैदा हो गई; पैर मजबूत हो गए हैं; संकल्प बली हो गया है। इसी संकल्प के सहारे, इसी संकल्प के द्वार से मनुष्य परमात्मा के मंदिर में प्रविष्ट होता है। उस मंदिर के संबंध में शेष बातें कल हम करेंगे।
अब हम ध्यान के लिए बैठेंगे। और ध्यान रहे कि सिर्फ बैठ जाना काफी नहीं है। यह भी ध्यान रहे कि धीरे-धीरे दोहराना भी पर्याप्त नहीं है। और यह भी ध्यान रहे कि इतने लोग जहां मौजूद हैं, अगर ये सारे लोग साथ मेहनत करते हैं, तो आप अकेले मेहनत नहीं कर रहे हैं, इन सारे लोगों की मेहनत का भी आपको फायदा मिलता है। वह मैं कल आपको कहूंगा कि कैसे यह फायदा उपलब्ध हो जाता है।
जहां अगर दो हजार लोग बैठ कर ध्यान कर रहे हों, तो दो हजार लोगों का विचार का संकल्प एक हवा पैदा करता है, एक साइकिक एटमॉस्फियर पैदा करता है। एक विचार की तरंगें यहां दौड़नी शुरू हो जाती हैं, जो आपके मस्तिष्क को भी छुएंगी और स्पर्श करेंगी। विचार आपके भीतर ही नहीं चलता है, उसकी खबरें, उसकी लहरें आपके चारों तरफ फैलनी शुरू हो जाती हैं। लेकिन हिंदुस्तान में कभी भी सामूहिक प्रार्थना विकसित नहीं हुई। और हिंदुस्तान के धर्मों में एक बुनियादी कमियों में से एक कमी कही जा सकती है कि हिंदुस्तान के धर्मों ने कोई सामूहिक प्रार्थना विकसित नहीं की।
सामूहिक ध्यान का अदभुत अर्थ है। जो एक व्यक्ति अकेले में नहीं कर पाएगा, वह सारे लोगों के साथ आसानी से संभव हो सकता है। इसलिए इस मौके को

ऐसे ही मत खो देना कि ठीक है, बैठे हैं। अकेले भी आप बैठेंगे अपने घर में, लेकिन यह मौका बहुत अदभुत है--दो हजार लोग भी आपके साथ हैं।
आपको पता नहीं कि अगर आप अकेले दौड़ रहे हों, तो यह दौड़ना एक बात है; और
दो हजार लोग साथ दौड़ रहे हों, उनके हाथ आपको छू रहे हों, उनके पैर आपको छू रहे हों, उनकी आवाजें आपको सुनाई पड़ रही हों, तो यह बात दूसरी है।
मैंने तो यहां तक सुना है कि मिलिट्री के जनरल्स, पुल पर से गुजरते वक्त, सैनिकों को एक साथ पैर गिराने की मनाही कर देते हैं। क्योंकि अगर पैर एक साथ गिर रहे हों तो पुल के गिर जाने का डर है। रिदम तुड़वा देते हैं, कि तोड़ दो रिदम, पैर अलग-अलग गिरने चाहिए! अब अगर एक हजार आदमी गुजर रहे हों, और पैर एक साथ गिर रहे हैं, तो एक हजार आदमियों के पैर के गिरने की जो लय पैदा होती है, जो ध्वनि पैदा होती है, जो तरंगें पैदा होती हैं, वे ब्रिज को तोड़ सकती हैं।
शायद आपको यह पता न हो, इस बात की संभावना है कि एक तंबूरा रखा हो और अगर दस तंबूरे वहां बजाए जाएं एक लय में, तो जो तंबूरा नहीं बज रहा है उसके तार हिलने शुरू हो जाते हैं और वही ध्वनि देने लगते हैं जो कि दस तंबूरे दे रहे हैं। इस बात की संभावना है।
अगर यहां दो हजार लोग बैठे हैं और एक संकल्प कर रहे हैं और एक ध्यान कर रहे हैं, तो इनके बीच में एक आदमी जो धीरे-धीरे कर रहा है, उसके हृदय की गति भी तीव्र हो जाती है, उसका संकल्प भी बलपूर्वक हो जाता है। उसके चित्त पर भी चोट लगने लगती है चारों तरफ की हवाओं की, चारों तरफ की तरंगों की। उसकी बात मैं कल करूंगा कि वह कैसे संभव हो जाता है। लेकिन अगर बल से हम करें, पूरी शक्ति से हम करें, तो नहीं होने का कोई कारण नहीं है।
कल मैंने समझाया था, दो मिनट आपको समझा दूं, हो सकता है कुछ नये मित्र हों। सबसे पहले तो रीढ़ को सीधा करके बैठ जाना है। हाथ की पांचों अंगुलियां, दूसरी पांचों अंगुलियों के बीच में डाल देना है और हाथ को अपनी गोद में रख लेना है। मुट्ठियां बंद कर लेनी हैं दसों अंगुलियां उलझा कर। क्योंकि जितने जोर से आप पूछेंगे अपने भीतर, मुट्ठियां उतनी ही जोर से बंधती चली जाएंगी, वे सबूत होंगी कि भीतर आप कितनी तेजी से पूछ रहे हैं। रीढ़ को सीधा कर लेना है। फिर आंख बंद कर लेनी हैं। और आंख बंद कर लेने के बाद ओंठ बंद कर लेने हैं। जबान ऊपर तालू से सट जाएगी, ओंठ बिल्कुल बंद हो जाएंगे। और फिर पूरी शक्ति से भीतर अपने से पूछना है--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? और तेजी से पूछना है कि दो "मैं कौन हूं?" के बीच में जगह न रह जाए। और इतनी तेजी से पूछना है कि भीतर कोई शक्ति कायम बाकी न रह जाए। पूरी शक्ति से पूछना है कि मैं कौन हूं? सारा प्राण कंप जाए, सारे प्राण की झील मंथन करने लगे, एक-एक रोआं पूछने लगे, हृदय की धड़कन पूछने लगे, श्वास-श्वास पूछने लगे। सारा शरीर पूछने लगे कि मैं कौन हूं? एक बुखार, एक ज्वर छा जाए पूरे व्यक्तित्व पर।

तृषा गई एक बूंद से
तीसरा प्रवचन

संकल्प की कुंजी

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक बगीचे में मैं गया था। एक ही जमीन थी उस बगीचे की। एक ही आसमान था
उस बगीचे के ऊपर। एक ही सूरज की किरणें बरसती थीं। एक सी हवाएं बहती थीं। एक ही माली था। एक सा पानी गिरता था। लेकिन उस बगीचे में फूल सब अलग-अलग खिले हुए थे। मैं बहुत सोच में पड़ गया। हो सकता है कभी किसी बगीचे में जाकर आपको भी यह सोच पैदा हुआ हो।
जमीन एक है, आकाश एक है, सूरज की किरणें एक हैं, हवाएं एक हैं, पानी एक है, माली एक है। लेकिन गुलाब पर गुलाबी फूल हैं, चमेली पर सफेद फूल हैं। सुगंध अलग है। एक ही जमीन और एक ही आकाश से और एक ही सूरज की किरणों से ये अलग-अलग फूल, अलग-अलग रंग, अलग-अलग सुगंध, अलग-अलग ढंग कैसे खींच लेते हैं? मैं उस माली को पूछने लगा। उसने कहा, सब एक है, लेकिन खींचने वाले बीज अलग-अलग हैं।
छोटा सा बीज लेकिन क्या खींच लेता होगा?
जरा सा बीज, इतने बड़े आकाश और इतनी बड़ी जमीन और इतने बड़े सूरज और इतनी हवाओं को, इन सबको एक तरफ फेंक कर अपनी ही इच्छा का रंग खींच लेता है! इतनी बड़ी दुनिया को एक तरफ हटा कर एक छोटा सा बीज अपनी ही इच्छा की सुगंध खींच लेता है! एक छोटे से बीज का संकल्प इतना बड़ा है, जितना आकाश नहीं, जितनी पृथ्वी नहीं! और एक बीज वही हो जाता है जो होना चाहता है! एक छोटे से बीज के भीतर ऐसा क्या हो सकता है?
हर बीज की अपनी इच्छा है, अपना विल, अपना संकल्प है। वह छोटा सा बीज वही खींचता है जो खींचना चाहता है, और सब पड़ा रहे, वह उसे छूता भी नहीं। गुलाब गुलाब बन जाता है, चमेली चमेली बन जाती है। पास में ही चमेली बन गई है चमेली, पास में ही गुलाब गुलाब बन गया है। एक ही मिट्टी से दोनों ने ताकत खींची है। गुलाब की सुगंध अलग है, चमेली की सुगंध अलग है, रंग-ढंग सब कुछ अलग है।
जिंदगी में अनंत संभावनाएं हैं। लेकिन हम वही बन जाते हैं जो हम उन संभावनाओं में से अपने भीतर खींच लेते हैं। अनंत विचारों का विस्तार है, अनंत विचारों की तरंगें हैं चारों तरफ। लेकिन हम उन्हीं विचारों को अपने पास खींच लेते हैं, जिन विचारों को खींचने की क्षमता, मैगनेट, जिन विचारों को खींचने की रिसेप्टिविटी हमारे भीतर होती है।
इसी दुनिया में एक आदमी बुद्ध हो जाता है। इसी दुनिया में एक आदमी जीसस हो जाता है। इसी दुनिया में एक आदमी कृष्ण हो जाता है। और इसी दुनिया में हम कुछ भी नहीं होते और ना-कुछ होकर मिट जाते हैं और खतम हो जाते हैं। और जिस दुनिया से खींची जाती हैं सारी चीजें, वह बिल्कुल एक है--वह आकाश एक, वह जमीन एक, वह चारों तरफ की हवाएं एक, वे सूरज-चांद-तारे एक--वह सब एक, और हर आदमी अलग-अलग कैसे हो जाता है? और हमारी शक्ल-सूरत भी एक सी मालूम पड़ती है, हमारे शरीर भी एक से मालूम पड़ते हैं, हमारी हड्डी-मांस-मज्जा भी एक सी मालूम पड़ती है। फर्क कहां पड़ जाता है? आदमी के व्यक्तित्व अलग-अलग कहां हो जाते हैं? कोई आदमी बुद्ध कैसे हो जाता है? कोई आदमी अंधकार में कैसे खड़ा रह जाता है? कोई आदमी प्रकाश में कैसे उठ जाता है?
वह जो मैंने कल कहा उस बात को समझ लेना जरूरी है। मैंने कल कहा कि मनुष्य के व्यक्तित्व में सात केंद्र हैं, सात चक्र हैं। और जो केंद्र सक्रिय होता है वह अपने अनुकूल चारों तरफ से सब कुछ खींच लेता है। केंद्र एक रिसेप्टिविटी बन जाता है, एक ग्राहकता बन जाता है। अगर क्रोध का केंद्र सक्रिय है, तो वह आदमी अपने चारों तरफ से क्रोध की सारी लहरों को समाविष्ट कर लेगा। अगर प्रेम का केंद्र सक्रिय है, तो चारों तरफ से प्रेम की धाराएं उस आदमी की तरफ दा.ैडने लगेंगी। अगर काम का केंद्र सक्रिय है, तो सारे चारों तरफ से कामवासना उसकी तरफ दौड़ने लगेगी। वह एक खड्ड की तरह बन जाएगा और चारों तरफ की धाराएं, जो उसने मांगा है उसकी तरफ आनी शुरू हो जाएंगी।

परमात्मा प्रत्येक को वही दे देता है जो हम चाहते हैं। और कभी भूल कर परमात्मा को यह मत कहना कि यह तूने हमें कैसे दे दिया जो हमने नहीं चाहा था! आज तक किसी आदमी को वह नहीं मिला है जो उसने न चाहा हो। लेकिन हमें पता ही नहीं होता कि हम क्या चाहते हैं। हम बहुत अंधेरे में चाहते रहते हैं और वही होता चला जाता है जो हम चाहते हैं। फिर हम दोष देते हैं।
अगर चमेली का बीज यह दोष दे परमात्मा को कि तूने मुझे सफेद फूल क्यों
दे दिया? सुर्ख फूल के लिए पागल थी मैं! तो वह चमेली गलत कहती है। क्योंकि उसके बीज ने कभी सुर्ख फूल चाहा ही नहीं था। हम जो हैं वह हमारी चाह का परिणाम है। हमने जो चाहा है वही हमारे चारों तरफ से खिंच कर हमारे पास आ गया है। हम जो हो गए हैं वह हमारे बीज ने मांगा है, पुकारा है इसलिए हो गए हैं।
फिर एक आदमी क्रोध में जीता है, अशांति में जीता है, लोभ में जीता है,
भय में, वासना में, और फिर वह पूछता है--कहां है ईश्वर? कहां है परमात्मा? कहीं दिखाई नहीं पड़ता!
ख्रुश्चेव के पहले अंतरिक्ष यात्री जब चांद के पास के फोटो लेकर आए थे, तो ख्रुश्चेव ने अपने एक भाषण में कहा कि मैं खुश हूं दुनिया को यह खबर देते हुए कि मेरे अंतरिक्ष यात्री चांद के पास होकर आ गए हैं, वहां उन्होंने किसी तरह का ईश्वर नहीं पाया।
ख्रुश्चेव को उत्तर देना मुश्किल है। क्योंकि जो लोग समझते हैं कि चांद पर या किसी तारे पर या किसी ग्रह पर ईश्वर मिल जाएगा, वे समझ लें अच्छी तरह सेः आज नहीं कल, ख्रुश्चेव नहीं कोई और यह घोषणा कर देगा कि सब चांद-तारे देख लिए गए, वहां कहीं ईश्वर नहीं है। और बड़े मजे की बात है, ऐसे लोग रहे हैं कि इसी जमीन पर उनको ईश्वर दिखाई पड़ने लगता है। और ऐसा आदमी भी है कि चांद-तारों पर भी जाकर ईश्वर दिखाई नहीं पड़ता।
चमेली को चाहे चांद पर जाकर बो दो और चाहे जमीन पर, वह गुलाब नहीं हो जाएगी। उसे वही दिखाई पड़ेगा जो वह हो सकती है, वह वही हो जाएगी जो हो सकती है। दुनिया के किसी कोने में हम चले जाएं, हम वही होंगे जो हम थे। क्योंकि वहां भी हम वही खींच लेंगे, वही हमें दिखाई पड़ेगा, वही अनुभव होगा, जो हम खींच सकते हैं। आंख रोशनी खींचती है। कोई आंख के पास आकर कितना ही सितार बजाए, आंख सितार बजाने को नहीं सुन पाएगी। और कान के पास कोई कितने ही दीये जलाए, कान को कुछ भी पता न चलेगा कि बाहर रोशनी है और दीये जल गए हैं। और कान कहता रहेगाः कहां है रोशनी? कहीं सुनाई नहीं पड़ती। अब रोशनी सुनी जाती है कहीं! और आंख कहेगीः कहां बजती है वीणा? कुछ दिखाई नहीं पड़ता; कहां है संगीत? संगीत देखा नहीं जाता!
हम जिस यंत्र से, जिस उपकरण से जीवन को पहचानने और देखने जाते हैं, वही हमें उपलब्ध होना शुरू हो जाता है।
यह दुनिया वही बन जाती है जो हम हैं। और कल जैसा मैंने कहा कि हमारे सात केंद्र हैं। पहला और अंतिम केंद्र, पहला और सातवां केंद्र शक्ति के संग्रह हैं। वे कुछ करते नहीं, वे केवल शक्ति के आलय हैं, वे शक्ति के संग्रहालय हैं। वहां शक्ति संगृहीत है, पहले और सातवें केंद्र पर। दूसरा केंद्र शक्ति को बाहर फेंकने का केंद्र है। सेक्स का केंद्र शक्ति को बाहर फेंकने का केंद्र है। वह एक्जिट है, वहां से शक्तियां बाहर फिंक जाती हैं। इसलिए उस केंद्र पर ही जो जीवन भर जीता है, वह निरंतर अशक्त, निरंतर अशक्त होता चला जाता है। धीरे-धीरे उसकी सारी ऊर्जा बह जाती है और वह ऊर्जाहीन और शक्तिहीन हो जाता है।
छठवां केंद्र, जिसको मैंने आज्ञा कहा--मस्तिष्क में, कपाल में दोनों आंखों के बीच में--वह काम के केंद्र से ठीक उलटा केंद्र है, वह एनट्रेंस है, वह प्रवेश द्वार है। वहां से शक्तियां भीतर प्रवेश करती हैं। काम के केंद्र से शक्तियां बाहर फिंकती हैं, आज्ञा के केंद्र से शक्तियां भीतर प्रविष्ट होती हैं।
इसलिए जो आदमी वासना के जितना निकट जीएगा, उस आदमी के पास संकल्प की शक्ति उतनी ही कम होगी, क्योंकि वह आज्ञा के केंद्र से सर्वाधिक दूर होगा। जो आदमी आज्ञा के केंद्र के पास ज्यादा जीएगा, जिसका ध्यान वहां होगा, उस आदमी को पता भी नहीं चलेगा कि वासना उसके चित्त से धीरे-धीरे क्षीण हो गई

है और वासना धीरे-धीरे विलीन हो गई है। क्योंकि आज्ञा का केंद्र शक्तियों का निमंत्रक है, बुलाने वाला है, अपशोषित करने वाला है, उनको पी जाने वाला है। और जितनी शक्ति आज्ञा के केंद्र पर पी ली जाती है, उतना ही व्यक्तित्व मजबूत, शक्तिशाली, ऊर्जस्वी और प्रबल और संकल्पवान होता चला जाता है।
ये दो केंद्र--सेक्स का केंद्र शक्ति के निष्कासन का, आज्ञा का केंद्र शक्ति के आमंत्रण का केंद्र है। इन दोनों के बीच के तीन केंद्र नाभि से लेकर कंठ तक--नाभि, हृदय और कंठ--वे तीनों केंद्र अंतरक्रिया के केंद्र हैं, जो शरीर की भीतरी क्रियाओं को गतिमान रखते हैं।
इन सातों केंद्रों की ठीक-ठीक समझ साधक के लिए बहुत अनिवार्य है। लोग कहते हैंः ईश्वर नहीं दिखाई पड़ता! आत्मा नहीं दिखाई पड़ती! वह जिस केंद्र से परमात्मा का संबंध जुड़ सकता है, वह सातवां केंद्र है। उस केंद्र के सक्रिय होते ही जगत विलीन होने लगता है और परमात्मा दिखाई पड़ने लगता है। ऐसा नहीं कि जगत नहीं रह जाता, बल्कि ऐसा कि जगत तो रह जाता है, लेकिन जगत की भांति नहीं, जगत परमात्मा की भांति ही रह जाता है।
राबिया थी एक फकीर औरत सूफी। उसने अपने धर्मग्रंथ में पढ़ा कि शैतान
को घृणा करो! उसने उस किताब में वह लकीर काट दी। एक मित्र फकीर हसन उसके घर मेहमान था। उसने सुबह-सुबह धर्मग्रंथ खोला और देखा कि उसमें तो धर्मग्रंथ में सुधार किया है किसी ने। तो उसने राबिया को पूछा कि तू पागल हो गई है, तूने सुधार किया है यह? धर्मग्रंथ में कहीं सुधार किया जा सकता है? राबिया ने कहा कि मुझे बड़ी मजबूरी हो गई, इसलिए सुधार करना पड़ा। जब से मुझे परमात्मा दिखाई पड़ना शुरू हुआ, मुझे शैतान दिखाई ही नहीं पड़ता है। और इस किताब में लिखा हैः शैतान को घृणा करो! शैतान मुझे दिखाई ही नहीं पड़ता है, अब तो जो भी दिखाई पड़ता है परमात्मा ही दिखाई पड़ता है। शैतान भी सामने खड़ा हो जाए तो परमात्मा ही दिखाई पड़ता है। एक तो यह कठिनाई हो गई। और दूसरी कठिनाई यह हो गई कि जब से परमात्मा ही दिखाई पड़ता है, तब से प्रेम के अतिरिक्त मेरे भीतर कुछ रह नहीं गया; घृणा नहीं रह गई। अब मैं घृणा कैसे करूं? एक तो शैतान दिखाई नहीं पड़ता, दूसरी मेरे भीतर घृणा नहीं रह गई, इसलिए इस लकीर को मैंने काट दिया कि यह लकीर मेरे लिए अव्यावहारिक हो गई है।
जिस दिन सातवां केंद्र सक्रिय होता है, उस दिन वह सब जो कभी नहीं दिखाई पड़ा था, वह सब जो कभी अनुभव नहीं हुआ था, वह अनुभव होना शुरू हो जाता है।
लेकिन क्यों हो जाता है?
एक छोटा बच्चा पैदा होता है, उसे अभी कामवासना की कोई भी खबर नहीं है। अभी वह केंद्र सक्रिय नहीं है। वह जब केंद्र सक्रिय होगा तब अचानक दुनिया बदलती हुई नजर आएगी। दुनिया एकदम दूसरी शक्ल ले लेगी, जो उसमें कभी भी नहीं थी। वह केंद्र भीतर सक्रिय हुआ और बाहर की दुनिया बदलनी शुरू हो गई। दुनिया कल भी ऐसी ही थी, दुनिया आज भी वैसी है। बदलाहट कहां हो गई? दुनिया में कोई बदलाहट नहीं हो गई, उस व्यक्ति के भीतर एक केंद्र जो सोया था वह सक्रिय हो गया।
ठीक ऐसे ही जिस दिन सातवां केंद्र, ब्रह्म-केंद्र जिस दिन सक्रिय हो जाए, उस दिन भी दुनिया यही है, वही थी, लेकिन कुछ नया ही दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। हम वही अपने भीतर ग्रहण कर लेते हैं, जो हम ग्रहण कर सकते हैं। मौजूद तो सब कुछ है। जो बुद्ध ने ग्रहण किया होगा इस दुनिया में, वह आज भी मौजूद है। और आज भी बुद्ध होने में कोई कठिनाई नहीं है। आज भी महावीर होने में कोई कठिनाई नहीं है। आज भी राम और कृष्ण हो जाने में कोई कठिनाई नहीं है। वह सब मौजूद है जो उन्होंने ग्रहण किया होगा। लेकिन हमारे पास वह केंद्र सक्रिय होना चाहिए, जो उसको ग्रहण कर सके।
लेकिन हम उलटी बातें पूछते हैं। हम कहते हैंः कहां है परमात्मा? हम यह नहीं पूछते कि कहां है वह केंद्र, जिसके सक्रिय होने से किसी को परमात्मा का अनुभव होता है और जिसके निष्क्रिय होने से परमात्मा से हम चूक जाते हैं।
हमारे चारों ओर अनंत विस्तार है--अनंत अनुभवों का, अनंत ज्ञानों का, अनंत विचारों का। वे विचार चौबीस घंटे हमारे चारों तरफ घूम रहे हैं। हम

जिस विचार को भीतर जगह देते हैं और जिस केंद्र को सक्रिय कर लेते हैं, उसके अनुकूल विचार हमारी तरफ दौड़ने लगते हैं, हमें पकड़ लेते हैं, हमें घेर लेते हैं।
यह कभी समझने जैसा है। अगर सुबह आप क्रोधित हो गए हों, तो आप दिन भर हैरान होंगे यह बात जान कर कि उस दिन, दिन भर में न मालूम कितने क्रोध के मौके आ जाते हैं। क्या हो जाता है उस दिन? कहते हैंः आज सुबह से ही कुछ खराब हो गया, कुछ भाग्य खराब हो गया। भाग्य खराब नहीं हो गया है; सुबह से जो सक्रिय हो गई है वृत्ति वह अपने ही अनुकूल घटनाओं को चारों तरफ से खींचती चली जाती है। वह फिर दिन भर खींचती रहती है।
इसलिए जो जानते हैं वे कहेंगे कि रात सोते समय अत्यंत ध्यान की अवस्था में सो जाना, ताकि रात भी... पूरी रात भी विचार आपकी तरफ आकर्षित होते हैं, चाहे आप सोए रहें। रात भर आप सपने देखते हैं। और सपने उन विचारों से निर्मित हो रहे हैं जो आप चारों तरफ से खींचते हैं।
आपके पड़ोस में सोया हुआ आदमी सपना देख सकता है साधु होने का और आप उसके ही पड़ोस में सोए हुए सपना देख सकते हैं चोर होने का। आप यह मत सोचना कि हम दोनों ही सपने देख रहे हैं, सपने का क्या मूल्य है? लेकिन एक आदमी आपके पड़ोस में साधु होने का सपना देख रहा है, आप चोर होने का सपना देख रहे हैं। आप वही सपना देख रहे हैं जो मन सक्रिय है और जो चारों तरफ से खींच पा रहा है।
रात जो ध्यान में सोएगा, वह रात भर ध्यान के अनुकूल, शांति के अनुकूल विचार अपने चारों तरफ से आकर्षित करेगा। सुबह उठ कर ही ध्यान करना जरूरी है, ताकि फिर दिन भर आपकी यात्रा उन्हीं विचारों को अपने पास खींच सके जिनसे आपने यात्रा शुरू की है। लेकिन अक्सर लोग सुबह बड़े गलत ढंग से शुरू करते हैं और रात सोते भी बहुत गलत ढंग से हैं। ये दो समय बहुत ध्यान कर लेने जैसे हैं। रात के सोते समय का क्षण अत्यंत ध्यान, शांति, मौन और आनंद में और प्रार्थना में डूबते हुए व्यतीत होना चाहिए। तो रात के छह घंटे या आठ घंटे--कुछ नई ही दुनिया के, कुछ नये ही आलोक को, कुछ नये ही विचारों को अपने भीतर खींचेंगे। और सुबह उठने की पहली घड़ी फिर पुनः ध्यान में व्यतीत होनी चाहिए, ताकि चौबीस घंटे, जागने का दिन, पूरे दिन की यात्रा फिर पुनः उसको खींचे जो शुभ है, जो सुंदर है, जो सत्य है। इन दो घड़ियों को जो सम्हाल ले, वह चौबीस घंटे को सम्हाल सकता है।
इसलिए जिस ध्यान की प्रक्रिया के लिए मैं आपसे कह रहा हूं, उसे रात सोते समय करें और सुबह उठते समय करें। जागने का प्रारंभ ध्यान से हो, नींद का प्रारंभ ध्यान से हो। ये दोनों संधिकाल अगर ठीक से सम्हाले जा सकें, तो व्यक्तित्व में शांति और क्रांति आनी शुरू हो जाएगी।
और ध्यान रहे, जैसा मैंने कहा, हमारे चारों तरफ विचार का सागर लहरा रहा है। जब तक रेडियो का आविष्कार नहीं हुआ था, हमें पता भी नहीं था कि मास्को में जो बोला जाता है वह माटुंगा से भी गुजरता होगा। हमें पता भी नहीं था। मास्को वालों को भी पता नहीं होगा कि माटुंगा में जो बोला जाता है वह मास्को से गुजरता है। लेकिन अब हम जानते हैं। अभी हम यहां बैठे हैं, अभी हमें कुछ नहीं सुनाई पड़ रहा कि मास्को या पेकिंग या न्यूयार्क क्या बोलते हैं? लेकिन एक रेडियो को हम सामने रख लेते हैं और पकड़ शुरू हो जाती है। रेडियो कुछ आवाज को ले नहीं आता यहां; आवाज गुजरती है यहां से, रेडियो सिर्फ पकड़ता है।
हमारे चारों तरफ बहुत कुछ मौजूद है। हम जो पकड़ पाते हैं वही पकड़ जाता
है, जो नहीं पकड़ पाते वह छूट जाता है। और हम वही पकड़ते हैं, जिस तल पर, जिस वेवलेंथ पर, जिस ट्यूनिंग पर हमारा चक्र काम करता है। फिर हमें वही पकड़ में आना शुरू हो जाता है, वही हमें दिखाई पड़ने लगता है, वही हमें सुनाई पड़ने लगता है, वही हमें चारों तरफ से घेरना शुरू कर देता है।
यह जो चारों तरफ विचार का अनंत जाल है।... ध्यान रहे कि कोई भी शब्द कभी मरता नहीं। इस जगत में कोई भी चीज कभी नहीं मरती। अभी मैं जो बोल रहा हूं, यह कभी नहीं मरेगा अब, इसके मरने का कोई भी उपाय नहीं है। यह जो बोला गया, वह सनातन और शाश्वत हो गया। अनंत काल तक उसकी प्रतिध्वनि इस सारे ब्रह्मांड में घूमती रहेगी, घूमती रहेगी, घूमती रहेगी। वह कभी समाप्त

नहीं होगी। जो प्रतिध्वनि पैदा हो गई है, वह गूंजती ही रहेगी अनंत काल तक, अनंत-अनंत लोकों में उसकी गूंज पैदा होती रहेगी।
इस बात की बहुत संभावना वैज्ञानिक मानते हैं कि किसी दिन वे ऐसे यंत्र भी ईजाद कर सकेंगे, जिसमें कृष्ण ने अर्जुन को कुरुक्षेत्र में जो कहा हो, वह पकड़ा जा सके। इस बात की बहुत संभावना है कि जीसस ने जो कहा हो, वह पकड़ा जा सके। महावीर ने जो कहा हो बिहार में, वह पकड़ा जा सके। क्योंकि वह ध्वनि आज भी कहीं न कहीं गूंजती होगी।
लेकिन वैज्ञानिक वह यंत्र किसी दिन तैयार कर पाएं या न कर पाएं, वह दूर की बात है। लेकिन जो सातवें केंद्र को सक्रिय करने में सक्षम हो जाते हैं, वे बिना किसी यंत्र के आज भी जगत में जो भी श्रेष्ठ विचार कभी जन्मे हैं, उनको पकड़ने में समर्थ हो जाते हैं। जो भी श्रेष्ठ जगत की संपदा है तरंगों की, वे उसे पकड़ने में समर्थ हो जाते हैं। उन तरंगों में जीना एक अनुभव ही दूसरा है।
नीत्शे ने कहा है कि एक क्षण ऐसा हुआ कि मुझे लगा कि मैं हजारों मील समय के ऊपर खड़े होकर जी रहा हूं।
हजारों मील समय के ऊपर? समय के ऊपर कोई हजारों मील कैसे खड़ा हो सकता है? जिन लोगों को भी उस तल पर थोड़ा सा अनुभव होगा, उनको लगेगा कि सारी दुनिया किसी खाई में, किसी खंदक में, किसी घाटी में भटकी रह गई है और हम किसी एवरेस्ट पर खड़े होकर जी रहे हैं।
वह जो ऊंचाई पर खड़े होने का अनुभव है, वह जो ऊंचाई पर जीने का अनुभव है,
वह जो अंतिम हमारा ऊंचे से ऊंचा चक्र है उसके सक्रिय होने से शुरू होता है। वह चक्र सक्रिय हो सकता है। वह चक्र कैसे सक्रिय हो सकता है? उस चक्र के सक्रिय हुए बिना अंतस-जीवन में, सत्य जीवन में, प्रभु के मंदिर में कोई प्रवेश नहीं है। वह चक्र संकल्प से ही सक्रिय होगा। और संकल्प से पहले आज्ञा चक्र सक्रिय होगा। फिर संकल्प की गहराई, और गहराई, और गहराई, और अंतिम गहराई में वह अंतिम चक्र को भी गतिमान कर देता है।
यह जो ध्यान की प्रक्रिया मैंने कही है, इस ध्यान की प्रक्रिया को हम जितनी गहराई तक ले जा सकें--अंतिम गहराई तक, चरम गहराई तक--उतने ही दूर तक हम अंतिम चक्र को सक्रिय करने में समर्थ हो सकते हैं। और यह ख्याल रहे कि वह चक्र अनायास सक्रिय नहीं होता है, हम करेंगे तो ही हो सकता है।
हां, अनायास भी शायद कभी होगा। करोड़ों वर्ष बाद, जीवन की जो सहज विकास
की प्रक्रिया है, उसमें कभी वह अनायास भी शायद सक्रिय होगा। लेकिन तब तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। साधना का एक ही अर्थ है कि प्रकृति जिस विकास को करोड़ों वर्षों में कर पाती है, साधक उसे तीव्रता से, बहुत शीघ्र, अल्प समय में पूरा कर लेता है। बुद्ध को, महावीर को जो स्थिति मिली है, इस बात की पूरी संभावना है कि अरबों-खरबों वर्ष बाद प्रत्येक आदमी जन्म के साथ ही शायद उस स्थिति में पैदा हो सके। लेकिन प्रकृति की प्रक्रिया बहुत लंबी, बहुत धीमी, बहुत आहिस्ता है। जो व्यक्ति उसको तीव्र गति देना चाहता है उसे कुछ करना पड़ेगा। उसे स्वयं सक्रिय होना पड़ेगा, उसे स्वयं कुछ करना पड़ेगा। लेकिन हम स्वयं कुछ भी नहीं कर रहे हैं। हमारी हालत ऐसी है, जैसे नदी में बह रहे हों, जहां भी नदी ले जाएगी चले जाएंगे। लेकिन हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं। और हमारा यह न करना, हमारा यह बहे-बहे जाना, हमारा यह सुस्त चुपचाप प्रकृति की धारा में जीते चले जाना, यही अगर हम ठीक से समझें तो जीवन की व्यर्थता का मूल सूत्र है। इस व्यर्थता को तोड़ना हो तो कुछ करना पड़ेगा।
क्या करना पड़ेगा? मंदिरों में जाकर पूजा करनी पड़ेगी? गुरुओं के चरण पकड़ने पड़ेंगे? तिलक-टीका लगाना पड़ेगा? यज्ञ-हवन करने पड़ेंगे?
यह फिर हमने असली चीज को करने से बचने का ख्याल खोज लिया। जो करना है,
वह यह करना नहीं है। इस करने से कुछ भी नहीं होगा। इस करने से सिर्फ एक धोखा पैदा होगा कि हम कुछ कर रहे हैं। उससे तो पहली हालत ही अच्छी थी कि बहे जा रहे थे। कम से कम यह धोखा तो नहीं था कि हम कुछ कर रहे हैं। कम से कम यह तो था मन में कि हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं। तो शायद कभी मन को यह आकांक्षा पकड़ लेती कि कुछ करें।

लेकिन यह जो कुछ भी करने लगते हैं लोग--माला फेरने लगें, जाकर मंदिर में पूजा करने लगें--इन लोगों को एक भ्रम पैदा होता है कि हम कुछ कर रहे हैं। और इस भ्रम के कारण, वह जो आकांक्षा कभी पैदा हो सकती थी कि हम कुछ करें, वह आकांक्षा भी कभी पैदा नहीं हो पाती।
इसलिए दुनिया को जितना नुकसान धर्म के नाम पर प्रचलित क्रियाकांड ने पहुंचाया है, उतना नुकसान और किसी ने भी नहीं पहुंचाया। और धर्म के नाम पर प्रचलित क्रियाकांड के जो दलाल हैं, उन्होंने मनुष्य-जाति का जितना अहित किया है, उतना और किसी ने भी नहीं किया है। जिनके आदमी पैर पकड़ते हैं और जिनकी पूजा करते हैं, उन लोगों ने ही आदमी की गर्दन पर हाथ कस कर रखे हुए हैं। वे ही आदमी के प्राणलेवा हैं।
लेकिन यह दिखाई नहीं पड़ता। उन्होंने जो करना चाहिए, संकल्प को सजग करने की कोई साधना, उस तरफ से तो हटा दिया है, लेकिन कुछ थोथे धंधे हाथ में पकड़ा दिए हैं, जिन्हें करने से न कोई संकल्प विकसित होता, न कोई आत्मबल जागता; जिनकी चेष्टा से न कोई केंद्र सक्रिय होते, जिनके प्रयास से न भीतर के प्राणों में कोई नई गति आती। लेकिन उस तरह की हजारों हजार क्रियाएं सारी दुनिया में चल रही हैं।
धर्म के नाम पर सब्स्टीट्यूट रिलीजन, धर्म के नाम पर धर्म को पूरा कर देने वाला सूडो रिलीजन, एक झूठा धर्म सारी दुनिया में विकसित हो गया है। इस झूठे धर्म ने मनुष्य को धार्मिक होने में एकदम बाधा डाल दी है। क्योंकि आदमी को लगता है--मैंने कर लिया, मैं मंदिर हो आया।
एक और मंदिर है जो भीतर है, जहां जाना था।
लेकिन होशियार और कनिंग और चालाक आदमी ने एक मंदिर बाहर बनाया हुआ है। जहां वह होकर घर लौट आता है और कहता हैः मैं मंदिर हो आया। और उसे पता ही नहीं कि मंदिर कहां है। और उसे पता ही नहीं कि मंदिर में जो एक बार हो आता है वह कभी लौटता नहीं मंदिर से, वह मंदिर में ही रहने लगता है। वह पॉइंट ऑफ नो रिटर्न है; वहां से कभी कोई वापस नहीं लौटता।
लेकिन यह जो बाहर मंदिर बना है, उसमें हम सुबह जाते हैं और लौट आते हैं। सच तो यह है कि उसमें हम जाएंगे कैसे? हम वही होते हैं जो हम घर से निकले थे। वही हम उस मंदिर में प्रविष्ट हो जाते हैं, वही हम वापस लौट आते हैं। मंदिर में हमारा जाना कहां हुआ?
मंदिर में जाने का अर्थ हैः हम कुछ ऐसी जगह पहुंच जाएं जहां हम वही न
रह जाएं जो हम थे, तो हम मंदिर में गए, अन्यथा मंदिर में नहीं गए। मंदिर में जाने का क्या मतलब? कि एक आदमी जाए अपने मकान से निकल कर और एक क नाम के मकान में प्रवेश करे या ख नाम के मकान में और वापस लौट आए, वह मंदिर में हो आया? आदमी भी अपने को धोखा देने में, अपने आपको धोखा देने में अदभुत कुशल मालूम पड़ता है।
मंदिर में जाने का अर्थ हैः इनर कनवर्शन। मंदिर में जाने का अर्थ हैः
एक ऐसी चित्त-दशा में जाना जहां कि हम कुछ और हो जाएं, जो कि जाने के पहले हम नहीं थे। और ध्यान रहे, उस दशा से लौटने के बाद हम वही कभी नहीं हो सकते, जो हम पहले थे। यह असंभव है। मंदिर से कोई भी वापस नहीं लौटा है। और लौटता है तो मंदिर साथ आ जाता है। फिर वह मंदिर में ही जीने लगता है।
लेकिन मंदिर का हमें पता नहीं है। हमने मंदिर बाहर बनाया हुआ है। मंदिर का इंतजाम हमने बाहर कर लिया हुआ है। उस मंदिर की हम पूजा कर आते हैं, प्रार्थना कर आते हैं, लौट आते हैं।
नहीं, मंदिर वहां नहीं है; यह जो मैं सातवां चक्र कह रहा हूं, यह मंदिर है। इस सातवें चक्र में पहुंच जाना मंदिर में प्रवेश है।
लेकिन बाहर का मंदिर भी, जो लोग जानते होंगे, जिन्होंने भीतर के मंदिर
की चर्चा की होगी, उनको सुन कर हमने बना लिया है। मंदिर में आप जाते हैं भीतर। मंदिर की बाहर की दीवालें हैं। भीतर मंदिर में गर्भगृह होता है, जहां मूर्ति स्थापित होती है भगवान की। उस गर्भगृह के चारों तरफ प्रदक्षिणा का चक्कर होता है। उस प्रदक्षिणा में आप सात चक्कर लगा कर वापस लौट आते हैं। लेकिन कभी आपने सोचा नहीं कि ये सात चक्कर क्यों लगाने? कभी आपने सोचा नहीं कि किसके हम चक्कर लगा रहे हैं? चक्कर लगाने की जगह के

बीच में भगवान की स्थापना क्यों है? इसको हम गर्भगृह क्यों कहते हैं? यह गोल क्यों है? इस मंदिर की गुंबज गोल क्यों है? यह सब क्या है?
यह जिन लोगों ने भीतर के मंदिर की बात की थी, उनकी बात हमने सुन कर, ठीक वैसा ही मंदिर बाहर बना लिया। वह जो गुंबज आपको दिखाई पड़ता है मंदिर के ऊपर, वह मनुष्य के सिर का प्रतीक है। जिसके भीतर, जिसके भीतर कहीं परमात्मा का निवास है। लेकिन वह परमात्मा का निवास किसी गोल चक्कर के बीच में है। ऐसी कुछ बात की होगी जिन्होंने-जिन्होंने जाना। और उस चक्कर में घूम जाने पर ही, प्रदक्षिणा पूरी हो जाने पर ही, जो भीतर है उसका अनुभव होता है, वह कहा होगा। हमने बाहर एक स्थापना कर ली है। हम उसका चक्कर लगा कर अपने घर वापस आ जाते हैं। और साधु-संत और जिनको हम महात्मा कहते हैं-- आधे ही महात्मा होंगे--वे सब हमें प्रेरणा देते हैं कि जाओ मंदिर! मंदिर जरूर जाना चाहिए!
वे भी बेचारे दोहरा रहे हैं हजारों वर्ष से कि मंदिर जरूर जाना चाहिए। मैं भी कहता हूं कि मंदिर जरूर जाना चाहिए। लेकिन जिस मंदिर की तरफ वे इशारा कर रहे हैं, वह मंदिर ही नहीं है; मंदिर कहीं और है--कहीं और, स्वयं के भीतर।
मैंने एक घटना सुनी है। मैंने सुना है, एक घर में छोटे-छोटे बच्चे थे।
जब उनकी उम्र बहुत थोड़ी थी, एक नाव की दुर्घटना में बाप की और मां की मृत्यु हो गई। बच्चे छोटे थे, फिर भी उन्होंने सोचा कि हमारे मां-बाप तो मर गए, वे जो करते थे वह हमें भी करते रहना चाहिए। आखिर पता नहीं क्या रहस्य रहा हो उनके करने में। तो बच्चे छोटे थे, उन्होंने देखा था कि पिता खाने के पहले, खाने के बाद, एक आले पर से जाकर कुछ लकड़ी उठा कर, पता नहीं क्या करते थे।
वे खाने के बाद अपने दांत साफ करते थे। एक छोटी सी लकड़ी की सींक वहां
रख छोड़ी थी। लड़कों को यह तो पता था नहीं, छोटे बच्चे थे, कि वे करते क्या थे! और लड़कों के दांत भी ऐसे नहीं थे कि उनको सींक से साफ करने की जरूरत हो। उस पता का कारण भी न था। लेकिन इतना मालूम था कि एक सींक वे एक आले में रखते हैं और बड़े नियमित रूप से दोनों वक्त आले के पास जाते हैं।
तो उन्होंने सोचा कि जरूर भोजन करने से और इस आले के पास जाने का कोई संबंध है। और जरूर इस लकड़ी की सींक में कोई राज है। तो उन्होंने एक लकड़ी की सींक वहां रख ली। अब उन्हें तो यह पता भी नहीं था। तो वे रोज जाकर, हाथ जोड़ कर, खाने के पहले-पीछे उस लकड़ी की सींक को नमस्कार कर आते थे। वह नियमित क्रम हो गया।
वे बड़े हो गए। फिर उन्होंने नया मकान बनाया। तो उन्होंने कहा, यह कहां
की छोटी सी लकड़ी की सींक रखे हो; एक अच्छी चंदन की लकड़ी बनवा लो! क्योंकि रोज इसके हाथ जोड़ने पड़ते हैं। उन्होंने एक चंदन की लकड़ी बना कर--नये मकान में एक सुंदर छोटी मढ़िया बनाई, एक मंदिर ही बना लिया आले की जगह, एक चंदन की बढ़िया खुदावदार लकड़ी उस पर लगा दी। रोज सुबह-शाम वे उसको खाने के आगे-पीछे हाथ जोड़ आते थे।
फिर ऐसी पीढ़ियां गुजर गईं। उनके और लड़के पैदा हुए, उन्होंने और बड़े मकान बनाए। लड़के तो बड़े मकान बनाएंगे। वह छोटा सा जो आला था, वह धीरे-धीरे बड़ा मंदिर हो गया। वह छोटी सी जो सींक थी, धीरे-धीरे एक पूरा स्तंभ हो गई। फिर कोई पूछा कभी उन लोगों से कि तुम यह करते क्या हो?
उन्होंने कहा, यह हमारे यहां सदा से होता चला आया है। यह कोई धार्मिक क्रिया है। और इसको जो नहीं करता वह बहुत अधार्मिक है। कुछ लड़के हमारे घर के बिगड़ गए हैं, वे मानते ही नहीं, वे इसको हाथ ही नहीं जोड़ते। जो लड़के हाथ नहीं जोड़ते थे वे बिगड़ गए, जो हाथ जोड़ते थे वे बहुत धार्मिक थे।
करीब-करीब ऐसा ही हुआ है, हो रहा है। जीवन के जो अंतस सत्य हैं, वे प्रतीकों में ही कहे जा सकते हैं। हमारे हाथ में प्रतीक पकड़ जाते हैं, उनको लेकर हम बैठ जाते हैं। और उन प्रतीकों की पूजा चल पड़ती है। और भूल जाते हैं हम कि प्रतीक इंगित करते थे किसी ओर; प्रतीक ही सत्य नहीं हैं, किसी और, किसी और तरफ इंगित हैं।
वह जो सातवें चक्र की मैंने बात कही, वही, वही मंदिर है, जहां प्रवेश करना है। उसका द्वार, उस मंदिर का द्वार आज्ञा चक्र है, जहां से प्रवेश

होगा। इस आज्ञा चक्र पर कैसे श्रम किया जाए? क्या किया जाए? किस भांति इस चक्र को हम जीवंत, सक्रिय और परिपूर्ण खिला हुआ कर दें, इसकी पूरी फ्लावरिंग हो जाए?
तीन छोटे सूत्र समझ लेने चाहिए। एकः जीवन में जितना संकल्प होगा, उतना ज्यादा यह द्वार खुलेगा। संकल्प का अर्थ क्या है? संकल्प का अर्थ है कि कुछ भी करना हो तो समग्र शक्ति उसमें समायोजित हो जानी चाहिए, भीतर खंड-खंड नहीं होने चाहिए। ऐसा नहीं होना चाहिए कि आधा मन कहता है करो, आधा कहता है मत करो। अगर मन टुकड़ों में बंटा है, डिसइंटिग्रेटेड है, खंड-खंड है, तो आपस में टुकड़े लड़ जाएंगे और संकल्प नष्ट हो जाएगा। और हम सबके मन टुकड़ों में बंटे हुए हैं। यहां तक कि ऐसी छोटी-छोटी चीजों में टुकड़ों में बंटे हुए हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं। न तो हमारे भीतर सीधा हां है, न हमारे भीतर सीधा न है। हमारे भीतर दोनों एक साथ हैं। न हम बाएं जाना चाहते हैं, न हम दाएं। हम दोनों तरफ एक साथ जाना चाहते हैं। तब धीरे-धीरे पूरा संकल्प क्षीण हो जाता है।
हमारा मन ऐसा है जैसे बैलगाड़ी में हमने चारों तरफ बैल जोत दिए हों। वे चारों तरफ बैलगाड़ी को खींचते हैं। बैलगाड़ी कहीं जाती नहीं, सिर्फ उसके अस्थिपंजर ढीले होते हैं। और इतना घमासान मचता है कि बैल भी धीरे-धीरे थक जाते हैं और घबड़ा जाते हैं कि यह क्या हो रहा है!

अगर आप अपनी जिंदगी पर ख्याल करेंगे, तो आप पाएंगे कि आपकी गाड़ी में
भी चारों तरफ बैल जुते हुए हैं। कोई संकल्प नहीं है भीतर। पच्चीस संकल्प एक साथ हैं। कभी आपने ख्याल भी न किया होगा कि एकदम विरोधी संकल्प एक साथ हैं। जिसको आप प्रेम करते हैं, उसी को आप घृणा करते हैं।
एकदम से चौंकाने वाली बात लगेगी। लेकिन आपने कभी ख्याल नहीं किया होगा कि जो अभी मित्र है, वह एक क्षण में शत्रु हो सकता है। अभी इससे इतना प्रेम था, एक क्षण में इतनी घृणा कैसे आ गई? उस प्रेम के ठीक नीचे घृणा बैठी थी, वह घृणा प्रतीक्षा करती थी--कब प्रेम हट जाए और मैं मौजूद हो जाऊं।
इसलिए दुश्मन से उतना खतरा नहीं होता जितना मित्रों से खतरा होता है। क्योंकि दुश्मन अगर अब आगे कुछ भी बन सकता है तो मित्र बन सकता है, उसके भीतर मित्र छिपा रहता है। और मित्र अगर अब कुछ भी बन सकता है तो एक ही पासिबिलिटी है कि दुश्मन बन सकता है, उसके भीतर दुश्मन छिपा रहता है।
इसलिए दुश्मन से तो एक आशा होती है, मित्र से कोई आशा नहीं होती।
जिसको आप श्रद्धा करते हैं, उसके ही लिए आपके मन में पूरी अश्रद्धा भीतर मौजूद होती है। अश्रद्धा मौके की तलाश में होती है कि कुछ पता चल जाए तो प्रकट हो जाऊं। श्रद्धा एक तरफ फिंक जाए, अश्रद्धा ऊपर आ जाए।
इसलिए श्रद्धा करने वाले से बहुत सावधान रहना चाहिए। वह तैयारी कर रहा होगा भीतर कि कब अश्रद्धा करूं।
हमारे मन की पूरी स्थिति एक आंतरिक कलह से भरी हुई है। हम ऊपर कुछ हैं, भीतर कुछ हैं, जो हैं उसी वक्त कुछ और हैं। जब आप किसी का हाथ में हाथ लेकर कहते हैं कि मैं तुम्हें बहुत प्रेम करता हूं। थोड़ा भीतर झांक कर देखना कि मन उसी वक्त क्या कह रहा है? मन उसी वक्त कह रहा होगा--क्या झूठी बातें बोल रहे हो! क्यों ऐसी बातें बोल रहे हो? मन उसी वक्त कह रहा होगा।
एक फकीर था नसरुद्दीन। उसके गांव का जो राजा था उसकी पत्नी से उसका प्रेम था। वह एक रात उस पत्नी से विदा ले रहा है। विदा लेते वक्त उसने उस स्त्री को कहा कि तुझसे ज्यादा सुंदर कोई स्त्री ही नहीं है! और तुझे मैंने जितना प्रेम किया है--आह, ऐसा प्रेम न मैंने कभी किसी को किया, न मैं कभी कर सकता हूं। तू अदभुत है!
जैसा कि पुरुष स्त्रियों से कहते हैं और स्त्रियां खुश होती हैं। वह स्त्री खुश हो गई, बहुत खुश हो गई। उसने कहा, सच!
उसको इतना खुश देख कर वह जो नसरुद्दीन था--वह बड़ा सच्चा आदमी था--उसने कहा, ठहर! क्योंकि मेरे भीतर जो चल रहा है, वह भी मैं तुझे बता दूं। जब मैंने यह कहा कि तुझसे ज्यादा सुंदर स्त्री कोई भी नहीं है--तब मैंने कहा, अरे कहां की साधारण स्त्री को क्या कह रहे हो! बहुत स्त्रियां हैं। मेरा

मन भीतर यह कह रहा था। और जब मैंने तुझसे कहा कि तुझे मैं बहुत प्रेम करता हूं, तुझसे ज्यादा प्रेम मैंने कभी किसी को नहीं किया। तब मेरा मन भीतर हंस रहा था, वह कह रहा था, यह तो मैंने और स्त्रियों से पहले भी कहा है।
बिल्कुल यही कहा है।
आदमी का मन पूरे वक्त इनर कंट्राडिक्शंस से भरा हुआ है, भीतरी द्वंद्व से भरा हुआ है। भीतरी द्वंद्व है तो संकल्प कभी पैदा नहीं होगा।
क्योंकि संकल्प का अर्थ हैः एक मन। संकल्प का अर्थ हैः एक मन, इंटीग्रेशन।
संकल्प का अर्थ हैः एक आवाज। संकल्प का अर्थ हैः एक स्वर।
और हम चौबीस घंटे विरोधी स्वरों से भरे हैं। इसकी समझ चाहिए कि धीरे- धीरे हमारे विरोधी स्वर समाप्त हों। जब हम कहते हैं कि मैं बहुत दृढ़ विश्वास करता हूं, तभी पक्का हमारे भीतर संदेह मौजूद होता है। अजीब बात है! हम जो कहते हैं, ठीक उससे उलटा हमारे भीतर मौजूद होता है। यह ठीक उलटा भीतर मौजूद है, यह निगेट कर देता है, जो हम कहते हैं उसे काट डालता है। तब हमारा पूरा व्यक्तित्व इन विरोधों में उलझ कर समाप्त हो जाता है।
क्या यह हो सकता है कि हमारे चित्त के विरोध क्रमशः कम होते चले जाएं?
यह हो सकता है। एक तो इसका बोध रखना पड़ेगा कि हम चित्त में विरोधों को
न पालें। तो मैं निरंतर जो कह रहा हूं, वह यह कह रहा हूंः मैं कह रहा हूं, श्रद्धा मत करो, ताकि अश्रद्धा न करनी पड़े। विश्वास मत करो, ताकि संदेह न करना पड़े। मित्र मत बनो, ताकि शत्रु न बनना पड़े। शिष्य मत बनो, नहीं तो गुरु बनने की दौड़ शुरू हो जाएगी; वह बच नहीं सकती, वह जारी है, वह जारी रहेगी।
वह जो विरोध हैं, दोनों से बचने की कोशिश करो, ताकि अविरोध चित्त की दशा खड़ी हो जाए। विरोध में तोड़ो ही मत। मत कहो अपने को कि मैं आस्तिक हूं। क्योंकि जैसे ही तुमने कहा कि आस्तिक हूं, तुम्हारा आधा मन फौरन नास्तिक हो जाएगा। बड़े से बड़ा आस्तिक खोज लो, उसके भीतर नास्तिक मौजूद होगा; नास्तिक मर नहीं सकता, सिर्फ दबा रहेगा भीतर। बड़े से बड़े नास्तिक को खोज लाओ, उसके भीतर आस्तिक है, वह आस्तिक मर नहीं जाएगा।
न आस्तिक रहो, न नास्तिक। विरोध को जाने दो, विरोध में बांटो ही मत अपने को। जितना ही व्यक्ति इस बात को गहराई से समझ ले और विरोधों से बचता चला जाए, एक अदभुत शांति की, समता की स्थिति खड़ी होनी शुरू होती है। एक अविरोध की, अखंड; टूटी टुकड़ों में नहीं, बंटी हुई नहीं; गैर-बंटी हुई, इकट्ठे मन की एक स्थिति पैदा होना शुरू होती है। उस स्थिति का नाम ही संकल्प है। और उस स्थिति का जितना बढ़ावा होगा उतना ही हमारा भीतर प्रवेश शुरू हो जाएगा।
लेकिन नहीं, हम तो हमेशा बांट कर देखते हैं। हम तो कहते हैं, या तो हम मित्र होंगे, या हम शत्रु होंगे, बीच में हम नहीं हो सकते। और हमें पता ही नहीं कि बीच में होना ही असली होना है। हम तो कहते हैं कि या तो हम श्रद्धा करेंगे, या अश्रद्धा करेंगे; या तो हम आदर करेंगे, या हम अनादर करेंगे। हम दो में से कुछ एक करेंगे। लेकिन दो में से जो एक कर रहा है, वह दूसरे को भी करना जारी रखेगा। पहलू बदलते रहेंगे। जैसे घड़ी का पेंडुलम कभी इस कोने से उस कोने चला जाता है।
लेकिन ध्यान रहे, वह उस कोने पर इसीलिए गया है, ताकि वापस अपने कोने पर लौट आए। वह चलता रहेगा। जब वह दूसरी तरफ जा रहा है, तब ध्यान रहे कि वह इस तरफ आना भी शुरू हो गया है। उसकी दूसरी तरफ जाने की जो गति है, जो मोमेंटम है, वही मोमेंटम उसे इस तरफ वापस ले आएगा। इसलिए जो ठीक से जीवन को जानते हैं--जब उनसे कोई कहता है, मैं आपका मित्र हूं, तब भी हंसते हैं; जब उनसे कोई कहता है, मैं आपका शत्रु हूं, तब भी हंसते हैं। जो जीवन को जानते हैं--जब कोई उनके चरणों में सिर रखे, तब भी हंसते हैं; और जब कोई उनके सिर पर जूता फेंक दे, तब भी हंसते हैं। क्योंकि यह पेंडुलम है जो आदमी का चलता है, इस पेंडुलम का कोई बहुत अर्थ नहीं है। लेकिन हंसी इस बात पर आती है कि उस घूमते पेंडुलम में आदमी को पता नहीं चलता कि वह क्या कर रहा है, सिर्फ घूम रहा है।
चित्त की एकाग्र, चित्त की एक, चित्त की समग्र, चित्त की इकट्ठी दशा का नाम संकल्प है। और उस संकल्प की दशा में जो भी होता है, वह मंदिर में

प्रवेश करा देता है। संकल्प को अगर ठीक से समझें तो वह "की" है, वह चाबी है, जिससे वह चक्र खुल जाएगा जिसको मैं ब्रह्म चक्र कह रहा हूं। लेकिन संकल्प की कुंजी हमारे पास नहीं है। बिल्कुल नहीं है हमारे पास संकल्प की कुंजी। मैंने सुना है, एक बहुत प्राचीन कुलीन परिवार में, एक छोटा बेटा शिक्षा के लिए बाहर जाने को है। उसकी उम्र सिर्फ सात वर्ष है। उसका बाप उससे कहता है कि हमारे घर से आज तक जो भी आदमी पढ़ने गया है, वह कभी बिना पूरी शिक्षा किए हुए वापस नहीं लौटा। और हमारे घर का यह रिवाज और यह संस्कार रहा है कि छोटे से बच्चे को भी जब हम घर से विदा करते हैं शिक्षा के लिए गुरुकुल जाने को, तो बच्चा पीछे लौट-लौट कर नहीं देखता। क्योंकि पीछे लौट-लौट कर देखने के हम बहुत दुश्मन हैं। हम जब घर से किसी को विदा करते हैं बच्चे को शिक्षा के लिए... जब मेरे बाप ने मुझे विदा किया था, तो उसने कहा थाः आंख में आंसू न आएं! क्योंकि आंख में अगर आंसू आए तो फिर यह घर तेरा नहीं है, फिर लौटना नहीं हो सकेगा। हम रोते आदमियों को घर में प्रवेश नहीं देते। यही मैं तुझसे कहता हूं कि कल सुबह चार बजे तुझे भेजा जाएगा गुरुकुल। एक नौकर तुझे घोड़े पर बिठा कर छोड़ने जाएगा। एक मील दूर पर मोड़ आता है, वहां तक तुझे घर दिखाई पड़ेगा, लेकिन लौट कर पीछे मत देखना। हम छत पर खड़े हुए देखेंगे कि तूने पीछे लौट कर तो नहीं देखा। क्योंकि पीछे लौट कर देखने वाले व्यक्ति का कोई भरोसा नहीं। पीछे लौट कर देखना ही मत!
सात वर्ष का छोटा बच्चा! वह बहुत घबड़ाया। उसकी मां ने उसे रात कहा कि घबड़ाओ मत, यही सदा होता रहा है। और एक बार हमने ऐसा सुना है कि किसी ने पीछे लौट कर देख लिया था, फिर यह घर उसका नहीं रहा। पीछे लौट कर मत देखना!
वह सात वर्ष का बच्चा रात भर सो नहीं सका कि मां-बाप को पीछे लौट कर नहीं देखेगा! अपने घर को लौट कर नहीं देखेगा! आंख में आंसू नहीं लाने हैं, पीछे लौट कर नहीं देखना है। सात वर्ष के बच्चे से ऐसी आशा? हम कहेंगेः बड़े कठोर थे वे लोग, बड़े दुष्ट थे। हम होते तो लाड़-प्यार करते, चाकलेट खिलाते। रोते खुद भी, उसको भी रुलाते और बड़ा प्रेम जाहिर करते।
प्रेम नहीं है यह, यह उस बच्चे के व्यक्तित्व से संकल्प को नष्ट करना है।
आज तो सारी दुनिया में यही ख्याल है। सारी दुनिया में यही ख्याल है कि बच्चे के आगे-पीछे नाचो-कूदो। बच्चे से ज्यादा बचकाना तुम अपनी हालत दिखाओ। ऐसे बच्चे के भीतर कभी भी वह ठोस कोई चीज खड़ी नहीं हो पाती, जो खड़ी होनी चाहिए। रीढ़ नहीं बन पाती उसकी आत्मा में।
वह बच्चा चार बजे बिदा हुआ। चार बजे उसकी मां और उसके पिता भी उसको द्वार पर छोड़ने नहीं आए हैं। बड़े कठोर लोग रहे होंगे, बड़े दुष्ट। उस बच्चे को घोड़े पर बिठाल दिया गया है। चार बजे की अंधेरी रात, सन्नाटा, सुबह की ठंडी हवाएं। नौकर जो उसके साथ है, वह कहता हैः बेटे, पीछे लौट कर मत देखना! पीछे लौटने की मनाही है देखने की। अब तुम छोटे नहीं हो; हम तुमसे बड़ी आशाएं करते हैं। और जो पीछे लौट कर देखता है, उससे क्या आशा की जा सकती है! तुम्हारे पिता ऊपर खड़े होकर देख रहे हैं। वे कितने आनंदित होंगे कि उनके बेटे ने मोड़ तक भी पीछे लौट कर नहीं देखा।
उस लड़के की सोचते हैं हालत क्या होती होगी! कितना मन पीछे लौट-लौट कर नहीं देखने को होता होगा! सात वर्ष का छोटा सा नन्हा बच्चा! लेकिन वह बिना मुड़े, बिना देखे, मोड़ से गुजर जाता है।
उस बच्चे ने बाद में लिखा कि कितनी अदभुत आनंद की अवस्था मुझे मालूम हुई--जब एक मील गुजर गया और मैंने पीछे लौट कर नहीं देखा!
वह स्कूल पहुंचा है, सुबह-सुबह अपने गुरुकुल पहुंचा है। उस गुरुकुल
का जो भिक्षु है, जो उसे दीक्षा देगा, वह उसको दरवाजे पर मिलता है और कहता है कि प्रवेश के नियम हैं, हर कोई प्रविष्ट नहीं हो जाता। दरवाजे पर आंख बंद करके बैठ जाओ और जब तक मैं दुबारा न आऊं और खुद न पूछूं, तब तक आंख भी मत खोलना और उठना भी मत। और अगर तुमने बीच में आंख खोल दी, और तुम भीतर आ गए, या तुमने आस-पास देख लिया, तो तुम्हें वापस घोड़े पर लौटा दिया जाएगा, तुम्हारा नौकर बाहर प्रतीक्षा कर रहा है। और ध्यान रहे, तुम जिस घर से आते हो, उस घर का कोई बच्चा कभी वापस लौट कर नहीं गया है! और यह प्रवेश-परीक्षा है।

सात वर्ष के छोटे से बच्चे को द्वार पर बिठा दिया है। कोई पूछता नहीं उससे कि तुम्हारी मां दुखी होती होगी, आओ बेटे तुम्हारा इंतजाम करें। उसको कोई पूछता नहीं। उसका सामान रखा है, उसका घोड़ा बाहर बंधा है, उसका नौकर प्रतीक्षा कर रहा है। उस बच्चे को दरवाजे पर आंख बंद करके बिठाल दिया गया है, सात साल के बच्चे को। वे शिक्षक भी बड़े कठोर और क्रूर रहे होंगे। लेकिन जो जानते हैं--कि उन मां-बाप और उन शिक्षकों से दयावान और कोई भी नहीं था।
वह बच्चा बैठा है। स्कूल में बच्चे आ रहे हैं, कोई उसको धक्का मारता है, कोई कंकड़ मारता है। बच्चे बच्चे हैं। कोई छेड़खानी करता है। लेकिन उसे आंख बंद रखनी है, चाहे कुछ भी हो जाए। क्योंकि आंख अगर बंद नहीं रही तो वापस लौटना पड़ेगा। किस मुंह से पिता के सामने खड़ा हो जाएगा कि मैं वापस आ गया! उस घर में कभी कोई वापस नहीं लौटा है।
वह छोटा सा बच्चा। सुबह की धूप बढ़ने लगी है, मक्खियां उसके चारों तरफ घूम रही हैं, बच्चे पत्थर मार रहे हैं, जो निकलता है वही धक्का मारता चला जाता है। वह आंख बंद किए है। भूख जोर की लग रही है, प्यास लग रही है। लेकिन न आंख खोलनी है, न उठना है। दोपहर हो गई, सूरज ऊपर आ गया, सिर पर छा गया। पता नहीं क्या हो रहा है? कोई आता नहीं, कोई बोलता नहीं। वह आंख बंद किए बैठा है, बैठा है। उसने आंख नहीं खोली; झपक कर भी आंख नहीं देखी।
सूरज ढलने के करीब आ गया, सांझ आ गई, वह भूख से तड़पा जा रहा है। वह गुरु
और दस-पंद्रह और भिक्षु आते हैं, उसे उठा लेते हैं और कहते हैं, तू प्रवेश-परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया। तेरे पास संकल्प है। अब आगे कुछ हो सकता है। तू भीतर आ।
वह युवक हो गया बाद में तब उसने लिखा कि आज मैं याद करता हूं उनकी जो इतने कठोर मालूम पड़े थे; आज जानता हूं उनकी करुणा अदभुत थी।
हमारी करुणा बहुत अदभुत है। और हमारी करुणा सब लोच-पोच कर देती है, सब इंपोटेंट कर देती है। और हम दूसरे के प्रति भी ऐसे ढीले हैं और अपने प्रति भी ऐसे ही ढीले हैं। ऐसे संकल्प पैदा नहीं हो जाता। संकल्प पैदा होने का अर्थ हैः कुछ करना पड़ेगा, कुछ दांव लेने पड़ेंगे, कुछ निर्णय करना पड़ेगा, कहीं रुकना पड़ेगा, कहीं ठहरना पड़ेगा; उस दबाव में ही वह संकल्प जागता है। अब इधर मैं ध्यान करने के लिए कहता हूं। पंद्रह मिनट इतने मुश्किल हो जाते हैं कि मुझे दस मिनट में मुझे ही खतम कर देना पड़ता है। पंद्रह मिनट नहीं बैठते आप, इस ख्याल में मत रहना। वह दस मिनट में ही आपकी हालत देख कर खत्म कर देना पड़ता है। पंद्रह मिनट में कितनी दफा आंख खोल कर देख लेते हैं, पता है आपको? संकल्प ऐसे जन्मेगा? पंद्रह मिनट आदमी आंख बंद करके नहीं बैठ सकता, इससे ज्यादा कमजोरी की और क्लीव और नपुंसक कोई अवस्था हो सकती है? पंद्रह मिनट आंख बंद करके बैठना मुश्किल है।
पड़ोस में किसी की देखने की इच्छा होती है कि वहां क्या हो रहा है? पीछे क्या हो रहा है? कोई की श्वास जोर से चल रही है, उसको क्या हो रहा है? सबको क्या हो रहा है, यह फिकर है आपको। और इसकी जरा भी फिकर नहीं है कि पंद्रह मिनट आप आंख बंद करके नहीं बैठ पा रहे हैं, यह क्या हो रहा है? कोई चिंता नहीं है इसकी। हमें कोई फिकर ही नहीं है कि हमारे पास कोई संकल्प जैसी स्थिति नहीं रह गई है।
पाम्पेई में विस्फोट हुआ ज्वालामुखी का और पाम्पेई का पूरा नगर जल गया। एक सिपाही जो चौरस्ते पर खड़ा था रात पहरा देने को, सुबह छह बजे उसकी ड्यूटी बदलेगी, दूसरा सिपाही सुबह छह बजे आकर उसकी जगह खड़ा होगा। सारा पाम्पेई भाग रहा है, रात के दो बजे ज्वालामुखी फूट गया, सारा पाम्पेई कंप रहा है। आग उगल रही है, सारा नगर जल रहा है, सारे गांव के लोग भाग रहे हैं। भागते लोग उस सिपाही को कहते हैं, यहां किसलिए खड़े हो? वह कहता है कि सुबह छह बजे ड्यूटी बदलने का वक्त है। उसके पहले कैसे हट सकता हूं?
अरे! लोग कहते हैं, पागल हो गए हो? अब ड्यूटी वगैरह का कोई सवाल नहीं है, मर जाओगे! सुबह छह कभी नहीं बजेंगे, आग लग रही है पूरे गांव में।
उसने कहा, वह तो ठीक है। यही तो मौका है! तब पता चलेगा कि मैं सिपाही हूं या नहीं? छह बजे के पहले कैसे हट सकता हूं? छह बजे तक जिंदा रहा तो

ड्यूटी सम्हाल दूंगा, छह बजे तक जिंदा नहीं रहा तो भगवान जाने। फिर मेरा कोई कसूर नहीं है।
कहते हैं वह सिपाही उसी जगह खड़ा हुआ जल गया! पाम्पेई का पूरा नगर भाग गया। उन भागे लोगों की स्मृति में कोई मूर्ति नहीं है। उस सिपाही की मूर्ति बनानी पड़ी उस जगह। उस नगर में एक ही आदमी था जिसको आदमी कहें, जिसके भीतर कुछ बल था, जिसके भीतर कोई मन था जो खड़ा रह सकता है।
लेकिन हम! कहां पाम्पेई, कोई पड़ोस में सिगरेट जला ले, और आंखें खुल जाएंगी। कोई पड़ोस में जरा सा खांस दे, और आंखें खुल जाएंगी। कैसा यह व्यक्तित्व है? इस व्यक्तित्व को लेकर किस मंदिर में प्रवेश की इच्छा है? नहीं, किसी मंदिर में कहीं प्रवेश नहीं हो सकेगा। हो सकता है, कोई रुकावट नहीं है सिवाय हमारे। थोड़ा संकल्प, थोड़ा बल, थोड़ी हिम्मत, थोड़ी इस बात की कोशिश कि मैं जो कर रहा हूं, कुछ करूं तो।
रोज मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, एक दिन ध्यान किया, अभी तो कुछ नहीं हुआ। बड़े मजे की बातें कहते हैं। बड़े अदभुत, बड़े गजब के लोग हैं। एक दिन ध्यान किया, बड़ी कृपा की भगवान पर। लिख गई होगी उसकी किताब में कि बड़ा ऋण हो गया आपका। अभी कुछ नहीं हुआ, अभी दर्शन नहीं हुआ, अभी भगवान नहीं मिले। क्योंकि आप पंद्रह मिनट आंख बंद किए बैठे रहे, पंद्रह दफा आंख खोल कर देखा, और कुछ भी नहीं हुआ।
हमारे व्यक्तित्व में जिसको कहें पुकार, जिसको कहें आवाज, वह है ही नहीं। और नहीं है, तो धर्म के रास्ते पर कोई गति नहीं हो सकती।
इसलिए कहना चाहता हूंः संकल्प है पहला बुनियादी सूत्र। और दूसरी बात हैः संकल्प क्या है, यह समझ लेना जरूरी नहीं है; संकल्प क्या है, इसके छोटे प्रयोग करने जरूरी हैं। प्रयोग करेंगे तो ही वह विकसित होगा, अन्यथा वह कभी विकसित नहीं होगा। और कल की प्रतीक्षा करेंगे, तो वह कभी विकसित नहीं होगा। उसे आज से और अभी से शुरू कर देना पड़ेगा, तो उसमें विकास होंगे।
तो दूसरा सूत्र हैः संकल्प हो या न हो, संकल्प की दिशा में प्रयोग शुरू कर दें। वह बढ़ेगा, धीरे-धीरे बढ़ेगा।
कोई आदमी नदी के किनारे खड़े होकर कहे कि मैं तैरना सीखना चाहता हूं। सिखाने वाला कहे कि आओ, नदी में उतर जाओ। वह कहे कि जब तक तैरना सीख न जाऊं, मैं उतरूंगा नहीं। क्योंकि खतरा कौन मोल लेगा? तैरना सीख जाऊं, फिर मैं उतरने को राजी हूं। जब तक तैरना न सीखूं, मैं उतर नहीं सकता।
अब सिखाना बहुत मुश्किल हो गया। क्योंकि सिखाने के लिए भी उतारना जरूरी है। और बिना तैरना जाने ही पहली दफा उतरना पड़ेगा! क्योंकि उसी उतरने से उस तैरने का विकास होने वाला है। तैरना कोई ऐसी चीज थोड़े ही है कि आकाश से मिल जाएगी। वह तो हम तैरेंगे तो मिलेगी। वह तो तैरने का ही परिणाम है। वह तो हम हाथ-पैर फड़फड़ाएंगे तो मिलेगी।
लोग पूछते हैंः ध्यान मिल जाए! समाधि मिल जाए!
वह कैसे मिल जाएगी? वह कहीं रखी है कि आप जाएंगे और मिल जाएगी! वह कहीं रखी नहीं है, वह आपकी ही सतत चेष्टा का सृजन है। वह आपका ही क्रिएशन है। और आप कोशिश करेंगे तो मिल जाएगी। आज हाथ-पैर फड़फड़ाइए थोड़े, कल और गति होगी, परसों और गति होगी, वह वक्त करीब आता चला जाएगा जब आपको लगेगा कि हाथ-पैर का तड़फड़ाना बदल गया, उसने तैरने की शक्ल ले ली। तैरना क्या है? वही हाथ-पैर का तड़फड़ाना है, थोड़ा कुशलता से, थोड़ी व्यवस्था से। वह पहले दिन भी आदमी को पानी में पटक दो, वह भी हाथ-पैर फेंकता है, सिर्फ अव्यवस्थित होता है हाथ-पैर फेंकना। वही रोज-रोज फेंकने से व्यवस्थित हो जाता है।
आज बैठेंगे, अव्यवस्थित होगा संकल्प। कल बैठेंगे--आगे बढ़ेगा। परसों बैठेंगे--आगे बढ़ेगा। फिर इतनी जल्दी क्या है? फिर इतनी फिकर क्या है कि वह आज हो जाए? जीवन की क्षुद्र चीजों के लिए हम वर्षों प्रतीक्षा करते हैं। पहली बातः संकल्प।
दूसरी बातः संकल्प समझने से नहीं, कुछ करने से, डूइंग से उपलब्ध होगा।
और तीसरी बातः संकल्प के विकास में प्रतीक्षा सबसे बड़ी बात है। आपने चाहा और नहीं हो जाएगा। गहरी प्रतीक्षा और धैर्य!
और जितना धैर्य होगा, उतने जल्दी हो जाएगा। और जितना अधैर्य होगा, उतना मुश्किल हो जाएगी। क्योंकि अधैर्य खबर देता है कि संकल्प निर्मित

नहीं हो पा रहा है। अधैर्य बताता है कि संकल्प निर्मित नहीं हो पाएगा; क्योंकि अधैर्य की भूमि पर कोई भी चीज निर्मित नहीं होती है।
मैंने सुना है, एक नदी के किनारे कोरिया में दो भिक्षु नदी पार किए थे। नाव से उतरे हैं। सांझ डूबने को सूरज है। दूर गांव है। बीच में जंगली रास्ता है, पहाड़ है। जल्दी उस गांव पहुंच जाना है। उन्होंने मांझी को पूछा, उन दोनों भिक्षुओं ने--एक बूढ़ा भिक्षु, एक जवान भिक्षु; बहुत से ग्रंथ लिए हुए हैं--हमें जल्दी उस गांव पहुंच जाना है, सूरज डूबने के पहले। क्योंकि सुना है हमने, सूरज डूबते ही उस गांव का द्वार बंद हो जाता है। फिर रात जंगल में खतरा होगा। क्या हम पहुंच जाएंगे?
उस नाव को बांधते हुए, धीमे से, आहिस्ता से उस मांझी ने कहा, जरूर पहुंच जाएंगे, लेकिन धीरे जाना। जल्दी गए तो मैं नहीं जानता कि पहुंच सकेंगे कि नहीं पहुंच सकेंगे।
उन लोगों ने कहा, किस पागल से हम पूछ रहे हैं! वह सज्जन सलाह दे रहे हैं
कि धीरे-धीरे जाना तो पहुंच जाएंगे और जल्दी गए तो मैं नहीं जानता कि पहुंच सकेंगे, नहीं पहुंच सकेंगे।
वे दोनों भागे। सूरज डूबने के करीब है। भागते वक्त भी उस मांझी ने कहा, दोस्तो, तेजी से मत जाना! मैंने तेजी से चलने वाले को कभी पहुंचते नहीं देखा। इतनी बात सुन कर वे और भी तेजी से भागे। आदमी का मजा यह है, आदमी का दिमाग ऐसा है। उनको लगा कि यह तो बड़ा गड़बड़ आदमी है, यह कहता है कि धीरे- धीरे। वे भागे। थोड़ी दूर पर ही, सूरज ढलने के करीब है, अंधेरा घिरने लगा, बूढ़ा आदमी है एक भिक्षु, वह गिर पड़ा एक चट्टान पर, दोनों घुटने टूट गए, ग्रंथ के पन्ने बिखर गए, हवाओं ने ग्रंथ के पन्ने उड़ा दिए। वह जवान लड़का ग्रंथ को इकट्ठा करता फिर रहा है।
तब वह मांझी धीरे-धीरे गीत गाता हुआ, अपनी डांडी लिए किनारे से गुजरता है। कहता है, अरे, वही हुआ जो मैंने कहा था। इतना अधैर्य क्या था? मैंने कहा था कि तेजी से मत जाना, पहाड़ी रास्ता है, इतना अधैर्य मत दिखाना, तो पहुंच भी सकते हो। अक्सर यह होता है, अक्सर यह होता है कि लोग रोज आते हैं, पूछते हैं कि जल्दी पहुंच जाएं! उनको मैं कहता हूं, नहीं मानते, गिर जाते हैं।
उस बूढ़े भिक्षु ने कहा, उस वक्त हमें ख्याल नहीं आया।
बहुत प्रतीक्षा की, बहुत धैर्य की जरूरत है भीतर जाने में। अनंत प्रतीक्षा की जरूरत है, क्योंकि अनंत की खोज है यह। यह कोई दो कौड़ी की चीज नहीं है कि हम बाजार में गए और खरीद लिए। दौड़े और मिल गई। मिलती है जरूर, मिल सकती है, आज और अभी मिल सकती है। लेकिन जो आज और अभी ही चाहे, वह चल ही नहीं पाएगा। अत्यंत धैर्य से!
लेकिन धैर्य का मतलब? धैर्य का मतलब यह नहीं कि तीव्रता में कमी हो। धैर्य का मतलब यह नहीं है कि शक्ति में कमी हो। शक्ति पूरी लगे, तीव्रता पूरी हो; लेकिन प्रतीक्षा अनंत हो। राह देखने की तैयारी हो--आज नहीं कल, कल नहीं परसों, परसों नहीं नरसों--हम प्रतीक्षा करेंगे।
छोटे-छोटे बच्चे जाकर बीज बो देते हैं कभी आम का। फिर घड़ी भर में जाकर उखाड़ कर देखते हैं कि अभी तक उसमें अंकुर निकल आया कि नहीं? अब बड़ी बेचैनी है। घंटे भर भी कैसे गुजारें? फिर घंटे भर बाद जाकर उखाड़ कर देखते हैं, अभी तक कुछ नहीं? बड़ी निराशा होती है मन को। कभी नहीं निकलेगा। निकलेगा भी नहीं। क्योंकि निकलने के लिए उसे जमीन में पड़ा रहना जरूरी है। वह पड़ा रहे चुपचाप घुप्प अंधकार में, ताकि अपने को तोड़ सके, फूट सके।
वैसी छोटे बच्चों जैसी हमारी हालत है। दो-तीन मिनट कहाः मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? फिर सोचाः अरे, अभी तक कुछ हुआ नहीं। खोद लिया जमीन से वापस। फिर देखा कि दूसरे लोग अभी तक कर रहे हैं, चले नहीं गए; फिर दो-तीन मिनट किया। फिर सोचाः अरे, अभी तक हो नहीं रहा, बड़ी देर लग रही है। तो फिर नहीं होगा, नहीं हो सकता है।
ये तीन बातें ध्यान रख लेंः संकल्प चाहिए, संकल्प के लिए क्रिया चाहिए, क्रिया के लिए प्रतीक्षा चाहिए। और अगर ये तीन बातें पूरी हैं, तो कोई वजह नहीं है कि मंजिल को दूर समझा जाए। मंजिल हमेशा निकट है। पहुंचने

वाले में कुशलता हो, तो आज और अभी पहुंच सकता है। और पहुंचने वाले में कुशलता न हो, तो जन्मों-जन्मों तक आदमी भटकता है और नहीं पहुंचता है।
ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। अब हम प्रयोग के लिए बैठेंगे।

दो-तीन बातें ध्यान रख लें। जो मित्र खड़े रहते हैं, उन्हें समझ लेना
है कि बैठने वाले लोगों से उनकी जिम्मेवारी ज्यादा है। कल से दो-एक मित्र अधिक आए हैं। दो-एक ज्यादा नहीं होती है संख्या। दो-एक मित्र सट कर बैठे हैं, वे दोनों बातें कर रहे हैं। यह थोड़ा अशोभन है। यह थोड़ा उचित नहीं है। जिसको नहीं करना है, वह न करे; लेकिन दूसरे को बाधा पड़े, इस तरह की भूल नहीं करनी चाहिए। शायद कुछ नये मित्र होंगे, तो उन्हें मैं दो बातें समझा दूं। इस प्रयोग में बैठने के लिए सबसे पहले तो रीढ़ को सीधा करके बैठना है। दूसरी बात, हाथ की पांचों अंगुलियां दूसरी पांचों अंगुलियों के बीच में डाल देनी हैं। हाथों को बंद करके गोद में छोड़ देना है। जैसे-जैसे भीतर तीव्रता बढ़ेगी, अंगुलियां बंद होती चली जाएंगी, कंपती चली जाएंगी। रीढ़ सीधी रखनी है, फिर बाद में आंख बंद कर लेनी हैं, होंठ बंद कर लेने हैं, और अपने मन में बहुत तीव्रता से, गहरे संकल्प से, बहुत तीव्र एक ही आवाज से, एक ही स्वर से पूछना है--मैं कौन हूं?
इस पूछने का क्या फायदा है? जैसे-जैसे हम पूछते हैं--मैं कौन हूं? और जितनी तीव्रता बढ़ती है, यह प्रश्न कि मैं कौन हूं, भीतर से भीतर प्रविष्ट होता चला जाता है। हमें यह भी पता नहीं कि हम कौन हैं। लेकिन हम हैं तो हमारे प्राणों के प्राणों के केंद्र को जरूर यह पता होगा कि हम कौन हैं। जिस दिन हमारा यह प्रश्न अंतस तक पहुंच जाएगा, उसी दिन उत्तर उपलब्ध हो जाएगा कि मैं कौन हूं। लेकिन आप ही उत्तर मत दे देना बीच में--इधर पूछा कि मैं कौन हूं, फिर कहा कि मैं ब्रह्म हूं। वह लड़का बल्कि ज्यादा ठीक बात कह रहा था। एक लड़का कल बैठ कर यहां कह रहा था कि मैं भूत हूं। वह ज्यादा ठीक बात कह रहा था। आदमी का ब्रह्म होना संदिग्ध है, भूत होना बिल्कुल निश्चित है। आपको उत्तर नहीं दे देना है, चाहे भूत हों, चाहे ब्रह्म हों। लेकिन आपको उत्तर नहीं दे देना है। आपको सिर्फ पूछना है कि मैं कौन हूं। और इस इंक्वायरी को, इस प्रश्न को गहरे से गहरे प्रविष्ट करा देना है। जितनी तीव्रता होगी, उतना ही गहरा यह जाएगा। जितना गहरा यह जाएगा, जितनी तीव्रता होगी, जितना संकल्प होगा, उतना ही मन एक अदभुत शांति को उपलब्ध होगा। मन जैसे ही इकट्ठा होता है, शांत हो जाता है। इस एक प्रश्न पर पूरे मन को केंद्रित कर लेना है। सरल सी है बात, लेकिन करें तो ही सरल है; न करें तो कुछ भी सरल नहीं है।

तृषा गई एक बूंद से
चौथा प्रवचन

सत्य की छाया है शांति

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक मित्र ने पूछा है कि क्या मैं साम्यवादी हूं? कम्युनिस्ट हूं?

बहुत मजेदार बात पूछी है। अगर परमात्मा कम्युनिस्ट है तो मैं भी कम्युनिस्ट हूं। और परमात्मा जरूर कम्युनिस्ट होना चाहिए, क्योंकि उसकी नजर में कोई भी असमान नहीं है, सभी समान हैं। और जिसकी नजर में सभी समान हैं, वह चाहता भी होगा कि सभी समान अगर न हों दूसरों की नजरों में, तो धीरे- धीरे समान हो जाएं।
महावीर कम्युनिस्ट रहे होंगे, और बुद्ध भी, और जीसस भी। हालांकि किसी
ने उनसे कभी पूछा नहीं। और गांधी तो निश्चित ही कम्युनिस्ट रहे होंगे। गांधी से तो किसी ने पूछा भी, तो गांधी ने कहा कि मैं किसी भी कम्युनिस्ट से ज्यादा कम्युनिस्ट हूं।
अगर सर्व मंगल की कामना, अगर सबके उदय की कामना, अगर सबका हित हो यह आकांक्षा कम्युनिज्म है, तो कोई भी धार्मिक आदमी बिना कम्युनिस्ट हुए कैसे रह सकता है?
लेकिन दूसरे अर्थों में मैं कम्युनिस्ट बिल्कुल भी नहीं हूं।
सच बात तो यह है कि मैं किसी वाद में, किसी संप्रदाय में, किसी शास्त्र में विश्वास नहीं करता हूं। कम्युनिज्म भी एक वाद है, एक शास्त्र है, एक विश्वास है, एक मत है, एक संप्रदाय है। वह दुनिया में पैदा हुआ नये से नया धर्म है। उसके भी पुरोहित हैं, उसके भी मंदिर हैं, उसका भी मक्का, काबा, काशी सब है। वह जो क्रेमलिन है, वह कम्युनिस्ट के लिए वही है, जो मुसलमान के लिए मक्का और हिंदू के लिए काशी। मार्क्स की किताब कैपिटल उसके लिए वही है, जो किसी के लिए गीता और किसी के लिए बाइबिल और किसी के लिए कुरान।
उस अर्थ में मैं कम्युनिस्ट नहीं हूं। मैं किसी वाद में विश्वास नहीं करता। न मैं कम्युनिस्ट हूं, न सोशलिस्ट, न फासिस्ट, न गांधी-इस्ट। और न मैं चाहता हूं कि कोई आदमी किसी वाद में अपने को कभी बांटे। आदमी वाद में बंधा कि गुलाम हुआ। वाद गुलामी का लक्षण है। जो आदमी वाद में बंधा, उसके चित्त की स्वतंत्रता समाप्त हुई। जिस आदमी ने ऐसा समझा कि मेरा यह मत है, उस आदमी का सत्य से संबंध टूटना उसी क्षण शुरू हो जाता है। या तो आप सत्य के हो सकते हैं या मत के। या तो आप धर्म के हो सकते हैं या संप्रदाय के। और संप्रदाय चाहे धार्मिक हों और चाहे राजनैतिक, सब संप्रदाय मनुष्य के चित्त को गुलाम करने में सहयोगी होते हैं।
तो किसी वाद से मेरा कोई भी संबंध नहीं है। अगर ठीक से कहूं और वाद शब्द ही पूछना हो, तो मैं अराजकवादी हूं, अनार्किस्ट हूं। हालांकि अनार्किज्म शब्द बड़ा गलत है, क्योंकि अराजकवाद का कोई वाद नहीं होता। अराजकवाद का अर्थ होता हैः जिसका कोई वाद नहीं।
लेकिन मेरी बातों से बहुत बार भ्रांति पैदा होती है। मेरी बातों से इसी तरह भ्रांति पैदा होती है, जैसे मुझे बुद्ध के जीवन में एक घटना याद आती है उससे मैं समझाऊं।
बुद्ध एक दिन सुबह एक गांव से निकले। साथ में उनका भिक्षु आनंद था। रास्ते पर एक आदमी मिला और उसने कहा कि मैं आस्तिक हूं, मैं ईश्वर को मानता हूं, आप भी ईश्वर को मानते हैं या नहीं?
बुद्ध ने कहा, ईश्वर? ईश्वर है ही नहीं, मानने का सवाल क्या!
वह आदमी बहुत चौंका, उसने मन में समझाः यह बुद्ध नास्तिक मालूम पड़ता है। आनंद जो उनके साथ था, वह भी चौंका कि बुद्ध ने एकदम से कह दिया कि ईश्वर है ही नहीं, मानने का सवाल नहीं! लेकिन वह चुप रहा।
दोपहर को एक दूसरा आदमी आया उस गांव में और बुद्ध से कहने लगा कि मैं नास्तिक हूं, ईश्वर को नहीं मानता हूं, आपका क्या ख्याल है--ईश्वर है?

बुद्ध ने कहा, ईश्वर ही है, और कुछ भी नहीं है!
उस आदमी ने समझाः यह बुद्ध आस्तिक है। और आनंद बड़ी मुश्किल में पड़ गया। क्योंकि आनंद ने दोनों उत्तर सुन लिए थे। पहला आदमी भी निश्चिंत होकर चला गया कि यह नास्तिक है, दूसरा आदमी समझ लिया आस्तिक है, लेकिन आनंद क्या समझे? फिर भी वह चुप रहा कि रात एकांत में पूछ लूंगा।
सांझ को एक और घटना घट गई! एक तीसरे आदमी ने आकर पूछा कि मुझे कुछ भी पता नहीं है कि ईश्वर है या नहीं, आपका क्या ख्याल है?
बुद्ध चुप रह गए और कोई भी उत्तर न दिया।
रात आनंद ने कहा, मेरी नींद हराम कर दी है, मैं सो नहीं पा रहा हूं। यह मामला क्या है? सुबह यह कहा, दोपहर यह कहा, सांझ चुप रह गए। इन तीनों उत्तरों में बड़ा विरोध है!
बुद्ध ने कहा, मैंने तुझे कोई भी उत्तर नहीं दिया था, तूने सुना क्यों? उत्तर मैंने दूसरों को दिए थे।
पर आनंद कहने लगा, मैं मजबूर हूं, मैं साथ था, मुझे तीनों उत्तर सुनाई
पड़ गए। वे तीनों तो निश्चिंत गए, लेकिन मेरी बड़ी मुसीबत हो गई है। आप हैं क्या?
बुद्ध ने कहा, मैं बस मैं हूं।
पर आपने तीन उत्तर क्यों दिए?
बुद्ध ने कहा, अगर तू समझेगा तो समझ आ सकता है। जो आदमी मेरे पास आकर कहता है--ईश्वर नहीं है, आपका क्या ख्याल है? वह अपनी नास्तिकता में मेरा समर्थन चाहता है, ताकि लौट कर निश्चिंत हो जाए। जो मानता है, उसको और जोर से मान ले। मैं तो हर एक की मान्यता तोड़ना चाहता हूं। तो मैंने उससे कह दिया--ईश्वर? ईश्वर है! मैं उसकी मान्यता तोड़ना चाहता हूं, क्योंकि जिसकी मान्यता है वह आदमी गुलाम है, वह सत्य को कभी नहीं जान सकेगा, वह मान्यता चाहे कुछ भी हो! वह जो दूसरा आदमी आया, वह कहता है--ईश्वर है, आप मानते हैं? वह भी अपनी मान्यता के लिए मुझसे समर्थन लेने आया है। मैंने कहा--ईश्वर? ईश्वर बिल्कुल नहीं है, मानने का सवाल क्या है! मैं उसकी भी मान्यता को हिलाता हूं, ताकि वह मान्यता से मुक्त हो जाए और सत्य की खोज कर सके। और तीसरा जो आदमी आया उसकी कोई भी मान्यता नहीं थी। उसने कहा--मुझे पता नहीं है कि ईश्वर है या नहीं, आप क्या कहते हैं? तो मैंने कहा--यह बहुत अच्छा है कि पता नहीं है। अब तुम चुप रह जाओ, तो पता हो सकता है। इसलिए मैं चुप रह गया।
आज तक भी तय नहीं हो पाया है कि बुद्ध आस्तिक थे कि नास्तिक। पंडित अभी भी विचार करते हैं। और यह कभी तय नहीं हो पाएगा; क्योंकि बुद्ध न आस्तिक हैं, न नास्तिक। बुद्ध का कोई मत नहीं है। बुद्ध चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक मत से मुक्त हो जाए। क्योंकि जो मत से मुक्त हो जाता है, वह सत्य को उपलब्ध हो जाता है।
इसी तरह की झंझट मेरे साथ भी सुबह से लेकर सांझ तक हो जाती है। एक बात
आप सुन लेते हैं और फिर परेशान हो जाते हैं कि जरूर यह आदमी इससे उलटा होगा। अगर पूंजीवाद के खिलाफ में बोला है, तो फिर कम्युनिस्ट होना चाहिए। लेकिन मैं पूंजीवाद के भी खिलाफ हूं और साम्यवाद के भी खिलाफ हूं। मैं वाद मात्र के खिलाफ हूं। मैं एक ऐसा समाज चाहता हूं जो वाद से घिरा हुआ समाज न हो। वाद मात्र के मैं विरोध में हूं, संप्रदाय मात्र के मैं विरोध में हूं। मेरा कोई संप्रदाय नहीं है। इसलिए मैं एक झंझट में भी पड़ गया हूं कि जिनके भी संप्रदाय हैं, वे सब मुझे अपना दुश्मन समझ लेते हैं। और ऐसा आदमी कोई भी नहीं है जिसका संप्रदाय न हो। इसलिए मुझसे दोस्ती बनानी ही मुश्किल होती चली जाती है।
नहीं; मैं न कम्युनिस्ट हूं, न कोई और हूं। आंखें खुली रखता हूं, देखता हूं, जो मुझे ठीक लगता है वह कहता हूं। वह ठीक चाहे किसी का हो। और जो मुझे गलत लगता है, कहता हूं वह गलत है। चाहे वह गलत किसी का भी हो। और यही मैं चाहता हूं कि आप भी किसी वाद में कभी न बंधें।
मेरा वाद भी हो सकता है, मेरे वाद में भी बंध सकते हैं। कुछ मित्रों को
यह भ्रम पैदा हो जाता है कि मेरे अनुयायी हैं। वे बड़ी गलती में हैं। मेरा

अनुयायी कोई भी नहीं है। और न मैं चाहता हूं कि कोई मेरा अनुयायी हो। क्योंकि वह फिर एक वाद है। फिर वह मुझसे बंध जाना है।
मैं चाहता हूं आदमी सबसे छूट जाए। आदमी हमेशा बंधा रहा है आज तक। किसी
न किसी से बंधा हुआ है। खूंटी का नाम क्या है, इससे मुझे प्रयोजन नहीं; मुझे प्रयोजन हैः क्या आप खूंटी से बंधे हैं? चाहे वह खूंटी गांधी की हो, चाहे वह खूंटी मार्क्स की हो, चाहे वह खूंटी मेरी हो। खूंटी से बंधा हुआ आदमी ठीक आदमी नहीं है। और मैं खूंटी से मुक्त आदमी चाहता हूं। तो जिस खूंटी के खिलाफ बोलता हूं, उस खूंटी वाला समझता है कि ठीक, यह आदमी किसी उलटी खूंटी के पक्ष में होगा! यहां से छोड़ कर वहां बांधने की कोशिश में लगा है।
मैं आपको कहीं बांधने की किसी कोशिश में नहीं लगा हुआ हूं। मैं चाहता हूं, छूट जाए मन। जो मन सबसे छूट जाता है, वह परमात्मा को उपलब्ध हो जाता है। एक अनक्लिंगिंग चाहिए, एक मुक्त-चित्तता चाहिए।
तो मैं किसी वाद में नहीं हूं। न मेरा कोई संबंध किसी वाद से कभी है, न
हो सकता है। मैं वाद मात्र के विरोध में हूं। मैं किसी वाद के भी विरोध में नहीं हूं--वाद मात्र के विरोध में हूं। और जहां भी वाद है, वहीं मुझे दासता की दुर्गंध आनी शुरू हो जाती है। चाहे वह गांधीवाद हो, चाहे वह साम्यवाद हो, चाहे उसका नाम कुछ और हो--हिंदूवाद हो, इस्लामवाद हो कि जैनवाद हो-- इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।
मेरी बात आप समझ लें। मन जब भी किसी वाद को पकड़ता है, तभी उसकी अनंत की यात्रा बंद हो जाती है। बस पत्थर पड़ गया उसके ऊपर, अब वह उड़ नहीं सकेगा, अब उसके पंख कट गए। अगर चाहते हैं कि आपकी चेतना में पंख हों, तो कभी बंधना मत; किसी से भी मत बंधना। और इसीलिए मैं दुनिया के महापुरुषों के संबंध में भी कभी कुछ खिलाफ कह देता हूं तो आपको बड़ी बेचैनी होती है। आप समझते हैं मैं महापुरुषों का विरोधी हूं।
मैं अगर महापुरुषों का विरोधी हूं, तो महापुरुषों को प्रेम करने वाला आदमी खोजना बहुत मुश्किल हो जाएगा। महापुरुषों का मैं विरोधी नहीं हूं। मैं तो गोडसे तक का विरोधी नहीं हूं, तो गांधी का विरोधी कैसे हो सकता हूं? लेकिन जब मैं विरोध करता हूं किसी महापुरुष का, तो महापुरुष का विरोध नहीं कर रहा हूं, वह जो आपकी खूंटी है, जिससे आप बंधे हैं, उसको हिलाने की कोशिश कर रहा हूं, आप छूट जाएं इसलिए। और आप खूंटी की इतनी प्रशंसा करते हैं कि वही प्रशंसा आपके बंधने का कारण हो जाती है। इसलिए आपकी प्रशंसा को भी तोड़ने की कोशिश करता हूं। भूल कर यह मत समझ लेना कि मेरी कोई दुश्मनी है। लेकिन हमारी समझ इतनी कम है, इतनी कम है समझ... और समझ कम होती है उस आदमी की जो कहीं बंधा होता है, प्रिज्युडिस्ड होता है। जिसका कोई मत है, उसकी कोई समझ नहीं होती। जिसका कोई सिद्धांत है, उसकी कोई अंडरस्टैंडिंग नहीं होती। क्योंकि वह पहले से बंधा है। और उस बंधी दुनिया की तरफ से ही, उसी चश्मे से देखना शुरू करता है। उसे कठिनाई शुरू हो जाती है। वह समझ ही नहीं पाता कि बात क्या है। उसे ख्याल ही नहीं आ पाता कि मतलब क्या है, प्रयोजन क्या है, इशारा क्या है।
इशारा कुल इतना है कि सबसे छूट जाएं, ताकि अपने में आ सकें। कहीं बाहर बंधे न रहें, ताकि वह फूल खिल जाए जो अपना है और भीतर है।
बाहर जो बंधा है, वह भीतर नहीं पहुंच पाता है। और जो कहीं भी बंधा है,
वह बंधा है। और बंधन परमात्मा तक पहुंचने में बाधा है। उस खुले आकाश में जो प्रभु का है, उस खुले आकाश में जो सत्य का है, उस खुले आकाश में जो ज्ञान का है--केवल वे ही उड़ते हैं, जिनके पास, जिनकी छातियों पर मत के, सिद्धांत के, शास्त्र के पत्थर नहीं हैं।
इसलिए एकबारगी यह ठीक से समझ लें कि किसी वाद से मेरा कोई भी संबंध नहीं है। और अच्छी दुनिया अगर बनानी है, तो एक निर्विवाद दुनिया बनानी पड़ेगी, जहां वाद का कोई आग्रह न हो।
मुझे तो निरंतर ऐसा मालूम पड़ता है कि वाद का आग्रही, जीवन के तथ्यों
को समझने में असमर्थ ही हो जाता है। उसकी पूरी चेष्टा यह होती है कि मेरा जो वाद है, वह वाद जीवन के तथ्यों से सही सिद्ध होना चाहिए। उसे वाद ज्यादा

महत्वपूर्ण है, जीवन के तथ्य ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं हैं। जीवन के तथ्य गौण हैं, वाद प्रमुख है। तथ्यों को सिद्ध करना चाहिए वाद को।
लेकिन स्थिति उलटी है। कोई वाद प्रमुख नहीं है, जीवन के तथ्य प्रमुख हैं। जीवन के तथ्यों को देख कर चलना है, वादों को देख कर नहीं।
हजारों साल से आदमी वादों को देख कर चल रहा है। पुराने किस्म के वाद
अब जरा पुराने और बासे पड़ गए हैं, तो नये किस्म के वाद आ गए हैं। पुरानी जंजीरें थोड़ी जंग खा गई हैं, तो हमने नई चमकदार जंजीरें बना ली हैं। और हम सोचते हैं कि पुरानी जंजीरें तोड़ दो और झट से नई जंजीर बांध लो और अकड़ से निकल जाओ कि मैं जंजीर से मुक्त हो गया हूं।
अगर हिंदू होने से बचे और कम्युनिस्ट हो गए, तो मामला वही है, सिर्फ जंजीर का नाम बदल गया, और कोई फर्क नहीं हुआ। इधर जैन होने से बचे और उधर जाकर गांधीवादी हो गए, तो अपने हाथ से बुद्धू बन गए। एक वाद छूटा, दूसरे वाद में घुस गए। बच नहीं पाए, वाद से नहीं बच पाए; आत्मा मुक्त नहीं रह सकी, स्वतंत्र नहीं रह सकी। व्यक्ति नहीं बचता वाद में, वाद में बचता है संप्रदाय, व्यक्ति का अंत हो जाता है।
और मैं चाहता हूंः एक-एक व्यक्ति एक खिला हुआ मुक्त फूल हो। अपनी हैसियत से खिला हुआ फूल हो। इसलिए मेरा किसी वाद से कोई भी संबंध नहीं है। कोई दूर का संबंध नहीं है।
एक अच्छी दुनिया के निर्माण में, स्वतंत्र और मुक्त चेतना की जरूरत है।

एक और मित्र ने पूछा है कि आप सबको छोड़ कर, सिर्फ गांधी के विरोध में क्यों बोलते हैं?

क्योंकि गांधी से महत्वपूर्ण आदमी मुझे कोई भी नहीं मालूम पड़ता है।
और इसलिए भी कि मैं सोचता था कि गांधी के विरोध में कुछ बात बोलने से देश में चिंतन पैदा होगा। लेकिन मैं निराश हो गया। चिंतन पैदा नहीं हुआ, सिर्फ गाली-गलौज पैदा हुई। और मैं बहुत चकित हो गया! मैंने सोचा था कि गांधी को मानने वाले अहिंसक लोग हैं। वह मेरी भ्रांति सिद्ध हुई। मैंने सोचा था कि गांधी के ऊपर आलोचना शुरू करूंगा, तो गांधीवादी मुझे कहेंगे कि आप आएं, हमसे बात करें, हमें समझाएं, हमसे चर्चा करें। क्या सही है, क्या गलत है, हम विचार करें। एक गांधीवादी ने मुझसे यह नहीं कहा। बल्कि गांधीवादी कभी-कभी मुझे सुनने भी दिखाई पड़ता था, वह एकदम नदारद हो गया। उसका कहीं पता नहीं चलता कि वह कहां चला गया।
यह मुझे आशा नहीं थी कि गांधी ने तीस-चालीस वर्ष श्रम करके भारत में
जो विचार की प्रक्रिया को जगाने की कोशिश की थी, वह इस भांति एकदम समाप्त हो गई होगी। लेकिन हमारी समझ इतनी कम है कि मैं जो गांधी की आलोचना भी किया, जो समझदार हैं वे जानते हैं कि मैंने गांधी के काम को ही आगे बढ़ाया है। लेकिन नासमझों का कोई क्या हिसाब रख सकता है!
गांधी का काम गांधी के मरने के साथ ही ठप्प हो गया। सच तो यह है कि गांधी के मरने के पहले ही ठप्प हो गया। और गांधी की पूरी आकांक्षा हो गई थी कि मैं कब मर जाऊं, कब मर जाऊं। वह बात ही खतम हो गई।
उस बात को फिर से गति देनी जरूरी है कि हम फिर सोचें! तो मैंने सोचा था
कि एक शॉक उपयोगी होगा, मुल्क चिंतन करेगा। लेकिन मैंने पाया कि मुर्दों को शॉक देने से कोई फायदा नहीं, कोई फायदा नहीं। इधर दो-तीन महीने में मुझे जो अनुभव आया, वह बहुत रिवीलिंग है, उससे बड़ा उदघाटन हुआ मेरे सामने--कि इस देश ने चिंतन की क्षमता ही खो दी है। हमने विचार करना ही बंद कर दिया है। और फिर मेरे जैसे आदमी के साथ तो विचार करना बहुत सरल है, क्योंकि मैं कभी कहता नहीं कि जो मैं कहता हूं वही सत्य है। तो मुझसे तो झगड़े का बहुत कम उपाय है, क्योंकि मैं यह कहता हूं कि जो मैं कहता हूं वह मैं कहता हूं, वह सच हो भी सकता है, गलत भी हो सकता है। बातचीत की जा सकती है, निर्णय लिए जा सकते हैं। सोच-विचार, एक डायलाग पैदा हो जाए मुल्क में चिंतन का, वह मैं चाहता हूं।

लेकिन वह पैदा नहीं होता। मैं कुछ अगर आलोचना करता हूं, तो दूसरी तरफ
से गाली-गलौज शुरू हो जाती है। बजाय इसके कि जो मैंने कहा है उस पर विचार चले और तय किया जाए कि क्या सही है, वह तो बात ही एक तरफ छोड़ दी जाती है, कुछ दूसरी ही बातें शुरू हो जाती हैं।
यह इतना दुखद है और भारत के भविष्य के लिए इतना चिंतनीय है, जिसका बहुत हिसाब लगाना कठिन है। लेकिन आज नहीं कल हमें यह सोचना ही पड़ेगा। मेरा गांधी से बहुत प्रेम है, शत्रुता का तो कोई सवाल ही नहीं है। तो मित्र पूछते हैं कि आप उनके शत्रु हैं? शत्रु तो मैं किसी का भी नहीं हूं, शत्रु तो होने में असमर्थ हूं। और शत्रु नहीं हो सकता हूं इसलिए खुली-सीधी बात कर लेता हूं जो मुझे ठीक लगती है। कम से कम अपनों के बाबत तो खुली और सीधी बात की जा सकती है।
लेकिन हम कुछ ऐसे भयभीत हो गए हैं कि अपनों के संबंध में खुली और सीधी बात भी नहीं कर सकते। वह बात नहीं चल सकी। चली बहुत बात, जोर से चली, न मालूम क्या-क्या लिखा और पढ़ा और बोला गया। लेकिन विचार जो पैदा होना चाहिए था, वह पैदा नहीं हो सका। भारत के पास विचार खो गया है। लोग समझे कि शायद मैं गांधी की प्रतिमा को अलग करके अपनी प्रतिमा बिठालना चाहता हूं।
मैं जो प्रतिमा-विरोधी हूं, वह अपनी प्रतिमा किसलिए बिठालना चाहूंगा?
और किसी की प्रतिमा मिटाने की जरूरत होती है बैठ जाने के लिए? इतनी दुनिया में जगह पड़ी है कि अपनी मढ़िया अलग बना लो, कहीं भी अपनी प्रतिमा खड़ी कर लो। किसी की दूसरे की प्रतिमा गिराने की क्या जरूरत है? और इतने पागल पड़े हैं दुनिया में कि किसी एक के पूजने वाले से कोई पूजने वालों की कमी पड़ जाती है? दूसरे पूजने वाले मिल जाएंगे।
इतने भगवान पूजे जाते हैं, कोई कमी है? दुनिया में कोई तीन सौ धर्म हैं, और एक-एक धर्म के न मालूम कितने देवी-देवता और भगवान हैं। हिंदुस्तान में तो तैंतीस करोड़ देवी-देवता हैं। एक-एक आदमी का एक-एक है। यहां कोई दिक्कत है अपनी प्रतिमा पुजवाने के लिए? यहां किसी की प्रतिमा गिराने की जरूरत है? गिराने में और झंझट हो जाती है। क्योंकि देवी-देवता नाराज हो जाएं, तो आपकी प्रतिमा का जमाना बहुत मुश्किल हो जाए। यहां तो उचित यह है कि सब देवी-देवताओं की प्रशंसा करो और छोटी सी जगह अपने लिए भी बना लो, तो बहुत आसानी पड़ती है।
लेकिन मुझे कोई जगह नहीं बनानी, मुझे कोई पंथ नहीं बनाना, कोई संप्रदाय नहीं बनाना, मुझे कोई पूजा नहीं चाहिए। चाहता कुल इतना हूं कि देश में चिंतन जग जाए, देश में विचार जग जाए। लोग सोचने लगें, लोग विचार करने लगें, लोग देखना शुरू कर दें, अंधे न रह जाएं।
लेकिन अंधे रहने की मालूम होता है हमने कसम खा रखी है। और अगर कोई आकर हमारी आंखें खोलने की कोशिश करे, तो हम उस पर नाराज होते हैं--कि हमारी नींद तोड़ते हो! हम आराम से सो रहे हैं, सुंदर सपना देख रहे हैं और तुम हमारी नींद खराब करते हो!
ऐसा ही मुझे अनुभव हो रहा है निरंतर कि किसी को भी सोचने के लिए कहना, दुश्मनी मोल लेनी मालूम पड़ती है। वह आदमी नाराज होता है। क्योंकि बिना सोचे एक सुविधा है, सोचते ही असुविधा शुरू होती है। क्योंकि जैसे ही सोचना शुरू किया कि जिंदगी गलत दिखाई पड़ने लगती है और बदलाहट जरूरी हो जाती है। अगर कोई भीतर के संबंध में सोचेगा तो स्वयं को बदलना पड़ेगा! और अगर कोई बाहर के संबंध में सोचेगा तो समाज को बदलना पड़ेगा! चिंतन क्रांति की प्रक्रिया है। चिंतन शुरू हुआ कि बदलाहट अनिवार्य है।
इसलिए बदलाहट की झंझट से बचना हो तो पहला काम जरूरी है--सोचना कभी मत! इसको मूलमंत्र मान लेना--सोचना कभी मत! इससे बड़ी सुविधा रहती है। इससे नींद गहरी आती है और आदमी को जीने की कठिनाई नहीं उठानी पड़ती; मरा-मरा जी लेता है और मर जाता है।
यह हमारी हजारों साल की प्रक्रिया रही है। यह हमारी आधारशिला रही है
कि सोचो मत! इसलिए कोई भी बात जो सोचने को मजबूर करे, वह हमें क्रोध से भर देती है, आनंद से नहीं, अहोभाव से नहीं, धन्यवाद से नहीं--कि कोई व्यक्ति सोचने के लिए धक्के देता है तो हम धन्यवाद दें कि उसने सोचने को हमें मजबूर किया।

जो आदमी हमें सोने की सुविधा देता है, हम उसको धन्यवाद देते हैं। जो आकर अफीम की गोली दे देता है कि यह ले लो और मजे से सो जाओ! हम कहते हैं कि तुमने बड़ी कृपा की, अफीम की गोली ला दी, अब हम मजे से सो सकते हैं। अफीम की गोलियों को धन्यवाद दिया जा रहा है।

एक मित्र ने मुझसे और एक बात पूछी है, जो मैं सोचता था कि छोड़ दूं, लेकिन शायद इस संदर्भ में छोड़नी उचित नहीं है। उन्होंने पूछा है कि आपका गांधी से कभी कोई संबंध रहा?

जब वे जिंदा थे तब बहुत ज्यादा संबंध नहीं रहा। लेकिन जब से मर गए हैं
तब से बहुत संबंध है। जब वे जिंदा थे तब मैं छोटा था। सिर्फ एक बार छोटा सा संबंध हुआ था, थोड़ा सा मिलना हुआ था, लेकिन उस मिलने का कोई हिसाब रखना उचित नहीं है। लेकिन मर जाने के बाद उनसे मेरा निरंतर संबंध है। सिर्फ विचार में ही संबंध नहीं है कि मैं उनके बाबत सोचता हूं, और भी गहरे अर्थों में संबंध है। सोचता था इस बात को छोड़ दूं, क्योंकि यह समझ के परे हो जाएगी बात। लेकिन पूछी है इसलिए मैं कहना चाहता हूं। मानने की उसे कोई जरूरत नहीं है।
हम आमतौर से सोचते हैं कि जिनके शरीर हैं, उनसे ही हमारे संबंध हो सकते हैं। हम यह भी सोचते हैं कि जो सामने मौजूद हैं, उन्हीं से संबंध हो सकते हैं। ये बातें बुनियादी रूप से गलत और अवैज्ञानिक हैं। संबंध बहुत लंबी बात है। दो दूर पर मौजूद लोगों के बीच हजारों मील का फासला हो, और संबंध हो सकता है, वैसे ही जैसे दो आदमी आस-पास बैठे हों तब हो सकता है।
और अब तो विज्ञान ने इसको प्रमाणित किया। पहले तो यह सिर्फ उन लोगों
की बात थी, इजोटेरिक, जो भीतर की दुनिया में काम करते थे। वे जानते थे कि हजारों मील का फासला कोई फासला नहीं है। अगर भीतर से संबंधित होने की कला का पता हो, तो आदमी हजारों मील के फासले से संबंधित हो सकता है। और हजारों वर्ष से लोग संबंधित होते रहे थे। लेकिन अब, अब तो विज्ञान ने भी स्वीकृति दे दी है कि यह संभावना नहीं है, सत्य है! और इस जगह से स्वीकृति मिली है जहां से आप आशा भी नहीं करेंगे। सबसे पहले रूस से स्वीकृति मिली है इस बात की कि हजारों मील का फासला कोई फासला नहीं है, टेलीपैथिक, विचार के अंतर्संबंध हो सकते हैं।
फयादेव नाम के एक वैज्ञानिक ने डेढ़ हजार मील दूर के फासले पर संबंध स्थापित करने के प्रयोग में सफलता पाई। मास्को में बैठ कर दूर तिफलिस में एक बगीचे में बैठे आदमी को संदेश भेजने में वह सफल हुआ।
हजार मील दूर आदमी तिफलिस के बगीचे में एक बेंच पर बैठा हुआ है। उसका निरीक्षण किया जा रहा है। अजनबी आदमी, सड़क पर चलता हुआ, बेंच पर विश्राम करने को बैठा है। समझ लें ग्यारह नंबर की बेंच पर बैठा है। और मास्को से फयादेव और उसके साथी उस बगीचे में फोन से बात कर रहे हैं कि एक आदमी आकर बैठा है, इतना बजा है, तुम वहां से संदेश दो कि वह आदमी इसी वक्त सो जाए। और फयादेव ने वहां से अंतर-संदेश दिया--मन में ही--उस आदमी को सुझाव दिया, उसका ध्यान करके कि सो जाओ, सो जाओ, सो जाओ... । डेढ़ हजार मील दूर और वह आदमी थोड़ी देर में आंख बंद करके लेट गया।
लेकिन यह भी हो सकता है कि वह आदमी थका-मांदा हो और सो गया हो। तो मित्रों ने कहा, वह सो तो गया; इस वक्त इतना बजा है, अब तुम उसे इसी वक्त उठा दो। तब हमें पक्का लगे। नहीं तो हो सकता है ऐसे ही सो गया हो। और फयादेव ने वहां से सुझाव दिए कि उठ जाओ! और उस आदमी ने आंख खोली और उठ गया।
उन मित्रों ने उससे पूछा कि आपको कुछ भिन्नता तो नहीं मालूम हुई?
उसने कहा, भिन्नता मुझे जरूर मालूम हुई। जब मैं सोया तब मुझे कुछ ऐसा लगा कि जैसे कोई कहता है--सो जाओ। लेकिन मैंने सोचा कि मैं ही थका-मांदा हूं, इसलिए खुद का मन कहता होगा। मैं सो गया। लेकिन उठते वक्त भी मुझे ऐसा सुनाई पड़ा कि जैसे कोई कहता है--उठ जाओ।
फिर तो फयादेव ने और भी प्रयोग किए। वे असल में प्रयोग कर रहे हैं इसलिए ताकि अंतरिक्ष यानों से संबंध टेलीपैथी के द्वारा, विचार के द्वारा तय किया जा सके। क्योंकि अंतरिक्ष यानों में यंत्रों के कभी भी बिगड़ जाने

की संभावना है, और तब सारे संबंध टूट जाएंगे। अगर एक बार यंत्र बिगड़ गया तो अंतरिक्ष में जो गया यात्री है, उससे हमारा कोई संबंध नहीं रह गया। वह कहां भटक जाएगा, कहां खो जाएगा अनंत में, उसका पता लगाना भी मुश्किल हो जाएगा। तो जरूरी है कि यंत्र के बिगड़ जाने पर भीतर के यंत्र से काम लिया जाए। अन्यथा अंतरिक्ष की यात्रा बहुत कठिन हो जाएगी। उसके लिए वे काम कर रहे हैं।
लेकिन एक ही समय में दूर पर व्यक्तियों से तो संबंध स्थापित किए ही जाते हैं, जो मर जाते हैं उनसे भी संबंध स्थापित करने के उपाय हैं। लेकिन वह हमें और भी कठिन मालूम पड़ेगा।
यह जान कर आपको हैरानी होगी कि महावीर के मर जाने के पांच सौ वर्ष बाद
तक, महावीर अपने प्रेमियों से, कुछ लोगों से संबंध स्थापित किए रहे। और इसीलिए पांच सौ वर्ष बाद महावीर के ग्रंथ लिखे गए। और तब लिखे गए ग्रंथ, जब इसकी संभावना खतम हो गई कि अब कोई आदमी इस योग्य नहीं है जिससे अंतर्संबंध रखे जा सकें। और वाणी खो जाएगी, इसलिए लिख ली जाए।
हजारों साल तक ग्रंथ लिखे ही नहीं गए। और वे इसीलिए नहीं लिखे गए कि
जब तक इस बात की संभावना थी कि मरे हुए व्यक्ति और मरे हुए ज्ञानी से भी संबंध स्थापित रखा जा सकता है, तब तक किताब लिखने की कोई जरूरत न थी। यह जान कर आप हैरान होंगे कि किताब लिखना सिर्फ विकास ही नहीं है, एक लिहाज से पतन भी है। हजारों साल तक वेद लिखा नहीं गया था। हजारों वर्ष तक कोई महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे नहीं गए थे। ग्रंथ लिखे गए मजबूरी में! महावीर के मरने के पांच सौ साल तक किताब लिखने की जरूरत नहीं पड़ी। क्योंकि महावीर से पूछा जा सकता था। लेकिन जब उस योग्यता के व्यक्ति खो गए, फिर उन ग्रंथों को लिख लेना जरूरी हो गया।
बुद्ध के मरने के डेढ़ सौ वर्ष बाद ग्रंथ लिखे गए। और जीसस के संबंध में तो बात और भी अदभुत है। और यह भी मैं कहना चाहता हूं कि आज महावीर से संबंध स्थापित करने वाला महावीर के साधुओं में एक भी आदमी नहीं है। लेकिन बुद्ध से संबंध स्थापित करने वाले साधु आज भी मौजूद हैं। और जीसस से संबंध स्थापित करने वाले लोगों की संख्या बहुत ज्यादा है। और जिस धर्म के मूलस्रोत से संबंध स्थापित करने की संभावना रहती है, वह धर्म तब तक जीवित मालूम पड़ता है। और जैसे ही संबंध नष्ट हो जाता है, वह जीवित संबंध नष्ट हो जाता है।
यह भी मैं आपसे कहना चाहता हूं कि गांधी जिंदगी भर मेहनत किए, लेकिन उन्होंने कभी इस पर ध्यान नहीं दिया कि उनके पास एक भी आदमी नहीं है, जिससे मर जाने के बाद वे संबंध स्थापित कर सकें।
लेकिन ऐसा नहीं है कि यह महावीर-बुद्ध ने ही किया, आज भी जारी है। ब्लावट्स्की के मर जाने के बाद एनीबीसेंट से ब्लावट्स्की के संबंध जारी रहे। एनीबीसेंट के मर जाने के बाद भी जे. कृष्णमूर्ति से एनीबीसेंट के संबंध आंतरिक जारी हैं। लेकिन कृष्णमूर्ति थियोसॉफी के बाहर पड़ गए। और थियोसॉफी का मूवमेंट मर गया, क्योंकि थियोसॉफी के भीतर किसी आदमी से एनीबीसेंट के, ब्लावट्स्की के संबंध आज जारी नहीं हैं।
मरे हुए व्यक्तियों से भी संबंध जारी रखे जा सकते हैं। बल्कि जिंदा व्यक्तियों से संबंध रखने में बहुत अड़चन होती है, क्योंकि शरीर हमेशा बाधा की तरह खड़ा हो जाता है। पूछ ही लिया है, इसलिए मैं कहता हूं कि जिंदा में गांधी से मेरे कोई संबंध नहीं थे। लेकिन मरने के बाद, इधर मैंने संबंध जारी रखने की पूरी कोशिश की है। और यह भी मैं आपसे कह देना चाहता हूं कि थोड़ा सा प्रयोग करें तो किसी भी व्यक्ति से संबंध जारी रखे जा सकते हैं। और यह भी मैं आपको बताना चाहता हूं कि गांधी का अभी कोई जन्म नहीं हो गया है। और जन्म होना बहुत मुश्किल है। क्योंकि कोई गर्भ इस योग्य नहीं कि उस व्यक्ति को जन्म दे सके। बहुत लंबी प्रतीक्षा करनी पड़ सकती है।
लेकिन ये दूसरी बातें हैं। और इसलिए इनकी बात कभी नहीं करता हूं, क्योंकि इन बातों के संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता, कुछ भी नहीं सोचा जा सकता और इन बातों के संबंध में कोई प्रमाण नहीं दिया जा सकता है। इसलिए इनको छोड़ देता हूं। लेकिन पूछ लिया गया इसलिए मैंने कहा। और यह मैं कह देना चाहता हूं कि मैंने गांधी की आलोचना, गांधी से बिना पूछताछ के नहीं

की है। अन्यथा मैं कभी नहीं करता; उसकी बात भी नहीं उठाता। और जब मुझे यह पक्का मालूम हो गया कि आलोचना की जानी चाहिए और गांधी की सहमति हो सकती है, तभी उस पर बात की।
लेकिन इधर मुझे ऐसा लगता है कि बेकार है मेहनत करनी! गांधी के साथ मेहनत करनी बेकार मालूम पड़ती है! उनके शिष्यों ने उस आदमी को बिल्कुल मरा हुआ समझ लिया है। इसलिए अब मरे हुए आदमी की बात करनी शायद उचित नहीं है। क्योंकि वे बार-बार मुझे लिखते हैं कि जो आदमी मर गया, उसकी आप बात क्यों उठाते हैं?
गांधी जैसे आदमी मर नहीं जाते! लेकिन समझ में नहीं आता लोगों को कि ऐसे लोगों को भी मरा हुआ मान लेते हैं। और उसका कारण है, क्योंकि कोई भी उनके साथ जीवित संपर्क स्थापित नहीं कर सकता है, तो लगता है कि वे मर गए। इधर मेरी पूरी चेष्टा है कि कुछ लोग तैयार हों, तो जो मैं कह रहा हूं, उनको प्रायोगिक प्रमाण उसके दिलवाए जा सकें, उनके संबंध स्थापित करवाए जा सकें। लेकिन तैयारी तो बहुत दूर की बात है, बहुत दूर की बात है, मेरे पास आने में ही हजार बाधाएं खड़ी करने की कोशिश की जाएगी। तो बहुत गहरे तल पर जो इजोटेरिक वर्क हो सकता है, जो बहुत गहरे तल पर नये संवेदना के स्रोत खोले जा सकते हैं, उनसे कोई संबंध ही स्थापित नहीं हो पाता है।
यह पृथ्वी रोज-रोज दरिद्र होती चली जाती है, क्योंकि इस पृथ्वी के पास अपनी ही श्रेष्ठतम आत्माओं से, जो अब भी मौजूद हैं, संबंध के सारे स्रोत शिथिल हो गए हैं। वे संबंध के स्रोत पुनरुज्जीवित किए जाने जरूरी हैं। लेकिन हमें तो सब ऊपर से दिखाई पड़ता है, भीतर से हमें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। क्योंकि भीतर की हमारी कोई दुनिया ही नहीं है। वहां देखने का कोई सवाल नहीं है।
अब जो बात मैंने कही, वह बात वैसी है जैसे हम अंधे के पास जाकर कहें कि मुझे रोशनी दिखाई पड़ती है, सूरज से मेरा संबंध है। वह कहेगा, कैसा सूरज? कैसी रोशनी? आप पागल हो गए! कहां है सूरज? कहां है रोशनी?
वह अंधा यह नहीं मानेगा कि मेरे पास आंख नहीं है। कोई आदमी यह मानने
को राजी नहीं होता कि मेरे पास कोई अभाव है, कोई कमी है। वह कहेगा कि सूरज वगैरह कुछ भी नहीं है, आप गलतफहमी में पड़ गए हैं।
इसलिए कई बार यह होता है कि अंधे के सामने वे बातें ही मत करो जो आंख वालों की हैं, क्योंकि आंख वालों की बात वह समझ नहीं सकेगा और मुश्किल में पड़ जाएगा। मेरी तो इतनी कठिनाई है कि जो मैं आपसे कहना चाहता हूं, नहीं कह पाता हूं। जो कहता हूं वह मुझे लगता है अधूरा है। क्योंकि किससे बात कही जाए? और बात का क्या मतलब लिया जाएगा, यह और भी मजे की बात है। और क्या उसके अर्थ निकाले जाएंगे, यह और भी मजे की बात है। तब मुझे धीरे-धीरे लगता है कि जो लोग चुप रह गए होंगे जान कर, उनके चुप रह जाने में आप ही कारण रहे होंगे। क्योंकि कब तक दीवाल के साथ सिर फोड़ा जा सकता है!
एक बोधिधर्म भिक्षु था भारत में। और दुनिया के कुछ अदभुत लोगों में
से एक! वह कभी भी लोगों के सामने मुंह करके नहीं बोलता था। आप अगर उससे मिलने जाते--पहली तो बात यह है कि आप मिलने जाते ही नहीं; और बोधिधर्म बंबई आता नहीं; और आप जाते नहीं मिलने--अगर जाते तो आप हैरान हो जाते कि वह आपकी तरफ पीठ रखता और दीवाल की तरफ मुंह रखता। कई लोगों ने उससे कहा कि यह आपने कौन सी तजवीज निकाली है कि दीवाल की तरफ मुंह किए बैठे हैं! हम आपसे कुछ पूछने आए हैं।
बोधिधर्म कहता, इसी में सुविधा रहती है।
लोग उससे पूछते, लेकिन इसका मतलब क्या है?
तो बोधिधर्म कहता, इसका मतलब यह है कि तुम्हारी तरफ देख कर जब बोलता हूं तब भी मुझे ऐसा लगता है कि दीवाल के साथ सिर फोड़ रहे हैं। मगर दीवाल की तरफ देखने से कम से कम एक भरोसा रहता है कि दीवाल सुनेगी नहीं, यह तो पक्का है; लेकिन गलत नहीं समझेगी, यह भी पक्का है। यह आदमी की तरफ देख कर बोलने से बड़ी मुश्किल है। दीवाल तो पक्की है वहां भी; लेकिन दीवाल खतरनाक है, वह गलत भी समझती है।
बोधिधर्म ने कहा कि जब कोई आदमी आएगा जो दीवाल नहीं होगा, तो मैं जरूर उसकी तरफ मुंह कर लूंगा।

नौ साल तक वह आदमी दीवाल की तरफ ही मुंह किए रहा! बड़ी हिम्मत का आदमी रहा होगा! क्योंकि आदमी की तरफ से मुंह फेरने में बड़ी कठिनाई है, बड़ी कठिनाई है। आदमी पर दया भी आती है कि उससे कुछ कह दो जो कहने जैसा है। और फिर परेशानी भी होती है, कहने के बाद पता चलता है--वह तो सुना ही नहीं गया, उसने कुछ और सुन लिया है, जो कभी नहीं कहा गया था वह उसने सुन लिया है।
नौ वर्ष तक वह दीवाल की तरफ ही देखता रहा। नौवें वर्ष में... हिंदुस्तान में तो नहीं यह घटना घट सकी। दीवाल की तरफ ही देखता रहा। हिंदुस्तान से चला गया पीछे वह चीन। चीन में एक आदमी आया और उस आदमी ने आकर कहा कि सिर इस तरफ घुमाते हो कि मैं अपना सिर काट दूं? वह एकदम बोधिधर्म लौट कर बैठ गया और उसने कहा, आ गया क्या वह आदमी!
सिर काट देगा जो आदमी, वह सुन सकता है। क्योंकि सच बात यह है कि सत्य
को सुनने में, आपके पुराने सिर के कट जाने की पूरी संभावना और उम्मीद है। वह जो पुराना सिर है, वह जो पुराना अहंकार है, वह जो पुरानी धारणा है--कि मैं जानता हूं, मेरा मत, मेरा शास्त्र, मेरा यह, मेरा वह, मैं--उसके गिर जाने की संभावना है।
बोधिधर्म ने कहा, आ गया वह आदमी जो सिर काट सकता है, उससे अब सीधा मुंह करके बात करनी पड़ेगी।
लेकिन आदमी खोते चले गए हैं। जिंदा आदमी की बात ही सुनने वाला कोई नहीं है, तो मरे हुए आदमियों से क्या संबंध स्थापित किया जा सकता है?
यह दुनिया इतनी ही नहीं है जितनी आपको दिखाई पड़ती है। यह दुनिया इतनी
ही नहीं है जितनी आंख-कान से दिखाई और सुनाई पड़ती है। आंख-कान से भी दुनिया बहुत बड़ी है, बहुत कुछ है दुनिया में। आपके चारों तरफ बहुत से और प्राण और आत्माएं भी हैं, जो निकट आपके मौजूद हैं। लेकिन आपको दिखाई भी नहीं पड़ सकते, आपका संबंध भी नहीं हो सकता। आपको पता भी नहीं चल सकता कि चारों तरफ और भी कोई मौजूद है।
अगर कभी महावीर की जिंदगी की घटना पढ़ी हो, तो महावीर की घटनाओं में एक अदभुत बात आती है। ऐतिहासिक बड़े चौंक जाते हैं कि यह बात सरासर झूठ होगी। क्योंकि इतिहास तो उसी को अंकित करता है जो आंख से देखा जाता है। और आंख से भी उसको ही अंकित करता है जो हजार आदमियों की आंख से हजार तरह देखा जाता है। इतिहास का कोई भरोसा है!
एडमंड बर्क एक किताब लिख रहा था दुनिया के इतिहास पर। आधी किताब पूरी
कर ली थी। कोई डेढ़ हजार पृष्ठ लिख चुका था। इतना बड़ा इतिहास शायद पहले किसी आदमी ने कोशिश नहीं की थी। दिन-रात लगा था लिखने में, तीस साल खराब किए थे। बैठ कर लिख रहा था कि एकदम पीछे से भगदड़ हुई, पड़ोस की गली से कुछ लोग दौड़ते हुए दिखाई पड़े। बर्क बाहर आया और उसने पूछा कि क्या हो गया? उन्होंने कहा, आपके मकान के पीछे हत्या हो गई।
बर्क भागा गया। लाश पड़ी थी, हत्यारा पकड़ लिया गया था, भीड़ लगी थी। एक आदमी से पूछा कि क्या हुआ? उसने एक बात कही। दूसरे आदमी से पूछा, उसने दूसरी बात कही। तीसरे आदमी से पूछा, उसने तीसरी बात कही। वे सब चश्मदीद गवाह थे, सबकी आंखों की देखी बात थी। बर्क कहने लगा, तुम्हारी आंख के सामने ही हुआ है; कोई दो आदमी का मत एक नहीं है! मेरे घर के पीछे हुआ, लाश पड़ी है, खून बह रहा है, हत्यारा पकड़ लिया गया है, भीड़ मौजूद है, लेकिन दो आदमियों का मंतव्य एक नहीं है! हर आदमी कहता है, ऐसे हुआ, यह हुआ।
बर्क अंदर गया, उसने अपनी तीस साल की मेहनत पर आग लगा दी किताब पर। उसने कहा कि मैं दो हजार साल पहले क्या हुआ, उसका हिसाब लगा रहा हूं। मेरे घर के पीछे क्या हुआ, और आंख से देखने वाले लोग नहीं कह सकते कि क्या हुआ! बेकार है इतिहास, कुछ सार नहीं! उसमें उसने आग लगा दी।
समझदार आदमी था। और इतिहासज्ञों को भी अकल आ जाए तो वे भी आग लगा दें, उसमें कुछ मतलब नहीं है।
महावीर की जिंदगी में यह बात बार-बार कही गई हैः इतने हजार लोग सुन रहे थे, इतने हजार देवता सुन रहे थे। अब वे देवता तो किसी को दिखाई नहीं पड़ेंगे; वे कहां सुन रहे थे? ऐतिहासिक कहेगाः हम भी मौजूद थे, आदमी तो कुछ दिखाई पड़ते थे, देवता कोई दिखाई नहीं पड़ता था वहां। कैसे दिखाई पड़ेगा!

लेकिन यह बात सच है कि आदमी से ऊपर की योनियां हैं। और महावीर जैसा आदमी जब बोलता है तो सिर्फ आदमी नहीं सुनते, देवताओं को भी सुनना पड़ता है।
लेकिन वह जिनको दिखाई पड़ता है, उनकी बात है। अंधों के लिए वह बात करने
का कोई अर्थ नहीं है। बहुत सी बातें छोड़ देनी पड़ती हैं कि उनकी बात नहीं की जा सकती। लेकिन मैं चाहता हूं कि कभी वे सब बातें की जा सकें। और उसके लिए चाहता हूं कि लोग तैयार हो जाएं, तो शायद वे बातें की जा सकें।
लेकिन धीरे-धीरे मुझे भी ऐसा लगता है कि जिस मामले में बहुत लोग असफल हुए, वही मेहनत मैं भी कर रहा हूं। वह असफलता बहुत पुरानी है।
लेकिन बार-बार हिम्मत ऐसी होती है कि कोशिश फिर एक करनी चाहिए। जानता हूं कि जीसस को लोग सूली पर लटका देते हैं, गांधी को गोली से मार देते हैं।
वे अपनी पुरानी आदत जारी रखेंगे। कोई मेरे संबंध में अपवाद नहीं हो सकते। लेकिन फिर भी मन होता है कि चलो एक कोशिश और सही, हर्ज भी क्या है? जो चीज मिट ही जानी है, उसको, ऐसे ही मिटती है कि कोई मिटा देता है, इससे फर्क क्या पड़ता है! इसलिए एक कोशिश में लगा हूं।
गांधी से मेरा क्या विरोध हो सकता है? उन जैसे प्यारे आदमियों से किसी
का भी क्या विरोध हो सकता है? लेकिन यह कोशिश और ही तरह की है, वह शायद किसी दिन आपको समझ में आ सके। मैं तो कोशिश, हैमर करता ही रहूंगा आपकी खोपड़ी को कि कहीं से शायद किसी को कुछ बुद्धि थोड़ी मालूम हो और ख्याल आ जाए कि हां, कुछ बात हो सकती है। लक्ष्य मेरा सिर्फ एक है।

वह किसी मित्र ने पूछा है कि आपका लक्ष्य क्या है इस सारी बातचीत का?

लक्ष्य मेरा सिर्फ एक है कि वह जो सोई धारा है चिंतन की, वह प्रबुद्ध
हो जाए और जग जाए। और उसके सिवाय किसी का भी लक्ष्य कभी दूसरा नहीं रहा है। जिन लोगों ने भी चेष्टा की है मनुष्य के साथ, उनका एक ही लक्ष्य है कि वह जो सोया हुआ व्यक्तित्व है, वह जो सोई हुई आत्मा है, जग जाए। हजार कोशिशों से उसे जगाने की कोशिश करते हैं वे। उनकी कोशिश में विरोध दिखाई पड़ सकता है। विरोध बिल्कुल नहीं है।
महावीर और बुद्ध एक ही बिहार में, एक ही समय में घूमते रहे। और अगर आपने सुना होता या जिन लोगों ने उन्हें सुना था... और आप में भी बहुत लोग होंगे जिन्होंने सुना होगा। क्योंकि हम पहली बार यह जमीन पर नहीं हैं; हम बहुत बार जमीन पर हुए हैं, बहुत बार होते रहे हैं, बहुत बार होते रहेंगे। बहुत लोग होंगे जिन्होंने बुद्ध और महावीर को सुना होगा। यहां भी होंगे, लेकिन उनको कुछ पता नहीं हो सकता है।
एक ही बिहार में बुद्ध और महावीर घूमते रहे और एक-दूसरे के खिलाफ बोलते रहे। बड़े चौंके होंगे लोग कि बड़ी अजीब बात है--बुद्ध और महावीर एक-दूसरे के खिलाफ बोलें! इनको क्या जरूरत है एक-दूसरे के खिलाफ बोलने की? और सख्त बातें कहते रहे। यह मत सोचना कि कुछ नरम-नरम बातें कहीं, बड़ी सख्त बातें कहीं। बड़ा मजाक बुद्ध ने उड़ाया महावीर का।
बुद्ध ने कहा है कि एक है निगंथनाथ पुत्त महावीर। लोग कहते हैं वह सर्वज्ञ है; और मुझे पक्का पता है कि वह भिक्षा मांगने में ऐसे द्वार पर खड़ा हो जाता है, जिसके घर में कोई है ही नहीं भीख देने वाला। बाद में पता चलता है आवाज देने से कि घर में कोई रहता ही नहीं है। और उसके शिष्य कहते हैं कि वह सर्वज्ञ है, सब कुछ जानता है, तीन काल जानता है।
और एक-दूसरे के खिलाफ और इस तरह की बातें कहीं कि हैरानी होगी।
महावीर कहते हैं कि आत्मा ही ज्ञान है, आत्मा ही सत्य है, आत्मा ही धर्म है, आत्मा ही परमात्मा है, आत्मा ही सब कुछ है।
और बुद्ध क्या कहते हैं? बुद्ध कहते हैं, आत्मा अज्ञान है। जो आत्मा
को मानता है, भटक जाएगा। जिसने आत्मा को माना वह डूबा। आत्मा से बड़ा मानना अज्ञान का और कुछ भी नहीं है।
बड़ी अजीब बात है! एक कहता है, आत्मा ही ज्ञान। एक कहता है, आत्मा अज्ञान। अब हम बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे कि बड़ी मुश्किल हो गई। लेकिन जो जानते हैं, वे जानते हैं कि मुश्किल नहीं हो गई। बुद्ध की एक डिवाइस है,

बुद्ध का एक ढंग है आपके चिंतन को जगाने का। महावीर का ढंग दूसरा है आपके चिंतन को जगाने का। दोनों का इरादा एक है, रास्ते अलग हैं।
महावीर कहते हैं कि आत्मा ही ज्ञान है, आत्मा ही सब कुछ है। साथ में कहते हैं, लेकिन आत्मा का पता कब चलेगा? कहते हैं, जब अहंकार गिर जाएगा तब पता चलेगा। अहंकार गिर जाएगा तब पता चलेगा कि आत्मा क्या है। और बुद्ध कहते हैं, आत्मा अज्ञान है; क्योंकि आत्मा ही अहंकार है। जब आत्मा मिट जाएगी, तब पता चलेगा कि क्या है। अब इसमें कोई फर्क नहीं है।
इधर हिंदुस्तान के सारे शिक्षक चिल्ला-चिल्ला कर कहते हैं कि अनंत-अनंत जन्म हैं। अनंत-अनंत जन्मों से तुम भटक रहे हो, भटक रहे हो, सड़ रहे हो, बार-बार उसी चक्कर में घूम रहे हो। कब तक घूमते रहोगे? अब जागो! उधर जीसस और मोहम्मद कहते हैं, अनंत जन्म वगैरह नहीं हैं, एक ही जन्म है! एक ही मौका है, अगर जाग गए तो जाग गए; नहीं जागे तो खो गए हमेशा के लिए। इसलिए जाग जाओ! अब यह बड़े मजे की बात है। इधर हमारा शिक्षक कहता है कि अनंत-अनंत जन्मों से भटक रहे हो, रिपीटेडली एक ही चक्कर में घूम रहे हो। कब तक घूमते रहोगे? ऊब नहीं गए? ऊब जाओ अब और जाग जाओ! उधर जीसस और मोहम्मद कहते हैं, कोई अनंत जन्म वगैरह नहीं हैं, एक ही जन्म है। अगर चूक गए तो सदा के लिए चूक गए, फिर कोई उपाय नहीं है। इसलिए जागना है तो जाग जाओ! अब ये दोनों बातें बड़ी उलटी मालूम पड़ती हैं। लेकिन जो जानते हैं उनके लिए उलटी नहीं हैं। वे कहेंगे, आदमी को जगाने की दोनों कोशिश हैं।
दुनिया के सारे शिक्षकों के शब्दों में विरोध है, रहेगा। लेकिन दुनिया के किसी शिक्षक के मन और मंशा में कोई भी विरोध नहीं है। नहीं हो सकता है। लेकिन आदमी की समझ बहुत कम है, शब्द पकड़ता है और परेशान हो जाता है। भीतर तक प्रवेश नहीं है; देख सके तथ्य को कि तथ्य क्या है!

एक मित्र ने पूछा है कि मैं मना करता हूं कि मेरे पैर मत छुएं! लेकिन मैं क्यों मना करता हूं?

मैं इसलिए मना करता हूं कि आप किसी के भी पैर छुएंगे, तो उसके पैर छूने
से वंचित रह जाएंगे जो सबमें है। और भी पैर हैं, जो सब जगह हैं और कहीं भी नहीं हैं। नजर उन पैरों की तरफ उठनी चाहिए। चांद-तारों में भी उन पैरों की पगध्वनियां हैं। फूल-तितलियों में भी उन पैरों की पगध्वनियां हैं। आदमी में भी, पत्थरों में भी उन पैरों की पगध्वनियां हैं। हाथ जुड़ने चाहिए उन पैरों की तरफ जो अनंत में विस्तीर्ण हैं। किसी एक आदमी के पैरों की तरफ हाथ झुकाने की कोई भी जरूरत नहीं।
क्यों? इसलिए नहीं कि झुकना बुरा है। झुकना बहुत अदभुत है। जो झुकना नहीं जानता वह दो कौड़ी का आदमी है, उसकी कोई कीमत नहीं है। लेकिन जब झुकना ही है तो ऐसे चरणों में झुको जिनसे फिर उठना न पड़े। अब मेरे चरण में झुकोगे भी, एक मिनट बाद फिर उठना पड़ेगा, मामला खतम हो गया। झुके भी, बेकार मेहनत हुई, फिर उठ गए। इसमें कोई सार न हुआ, इसमें कोई अर्थ न हुआ।
रामकृष्ण के पास एक आदमी गया। रामकृष्ण से कहने लगा, गंगा-स्नान को जा रहा हूं। सुना है मैंने, परमहंसदेव, कि वहां नहाने से पाप बह जाते हैं। परमहंस ने कहा, बिल्कुल बह जाते हैं। लेकिन गंगा से बाहर मत निकलना! निकले कि फिर चढ़ जाते हैं। वे जो झाड़ देखे हैं न किनारे पर खड़े हुए, जब तक तुम डुबकी लगाते हो, गंगा तो पवित्र है, जब तुम डुबकी लगाओगे, वे झाड़ पर बैठ जाएंगे। वे बड़े-बड़े झाड़ इसीलिए हैं गंगा के किनारे, पता है आपको? वे उस पर बैठे रहेंगे कि बेटा, कब निकलते हो! और आखिर बेटा कब तक डूबा रहेगा? थोड़ी- बहुत देर में निकलेगा कि निकल गए पाप, वे फिर उतर कर सवार हो जाएंगे।
तो रामकृष्ण ने कहा, ऐसी गंगा में डूबो जहां से निकलना न पड़े। ऐसी भी गंगा है परमात्मा की, जहां डूबो तो निकलना न पड़े। निकलने को जगह ही नहीं है फिर वहां, डूबे तो डूबे ही, वही-वही है। फिर निकलना भी चाहो तो कहीं भागने का उपाय नहीं है, क्योंकि वही-वही है।
तो मैं भी कहता हूं कि चरण ऐसे भी हैं कि जहां झुको तो झुक ही जाओ, फिर उठना न पड़े। उन्हीं चरणों में झुकने का अर्थ है। जिन चरणों में झुको और उठो, तो बेकार की कवायद हो जाती है, कोई मतलब नहीं होता।

इसलिए कहता हूं, कोई झुकने की जरूरत नहीं है। झुको जरूर! यह मत सोच लेना... क्योंकि यह बड़ा डेलीकेट, बहुत नाजुक बात है। क्योंकि जब मैं कहता हूं कि मेरे चरणों में मत झुको, तो कुछ हैं जो बड़े खुश होंगे कि बहुत बढ़िया बात कही। इसलिए नहीं कि वे किन्हीं और चरणों में झुकेंगे परमात्मा के, बल्कि इसलिए कि झुकने में उनको बड़ी बेचैनी मालूम पड़ती है, झुक नहीं सकते कहीं भी। वे कहेंगे, बिल्कुल दुरुस्त, एकदम ठीक बात कही। जहां भी भीतर अहंकार मजबूत है, वे कहेंगे कि बिल्कुल ठीक बात कही। झुकना नहीं चाहिए! लेकिन मैंने झुकने को मना नहीं किया है, मैंने मेरे चरणों में झुकने
को मना किया है। इस भूल में मत पड़ जाना कि मैंने झुकने को मना किया है। मैंने तो बेकार झुकने को मना किया है। यह बिल्कुल बेकार झुकना है। एक आदमी के चरणों में झुकने का क्या मतलब है? कोई भी मतलब नहीं है। यह शरीर बिल्कुल मिट्टी है। इस मिट्टी में झुकने का कोई मतलब नहीं है। यह मिट्टी की पूजा है। फिर यहीं से आदतें बिगड़नी शुरू हो जाती हैं। फिर यह आदमी खत्म हो जाए तो एक पत्थर की मूर्ति बना कर उसमें झुकना शुरू हो जाता है। वह झुकने की गलत आदत हो गई।
नहीं; एक चिन्मय जीवन है चारों तरफ, उसके चरण चारों तरफ हैं, उसके चरणों में झुकने के लिए हाथ-पैर बांध कर सिर नहीं झुकाना पड़ता; उसके चरणों में झुकना एक आंतरिक लोच, एक आंतरिक समर्पण, एक भीतरी समर्पण है। झुक गया आदमी!
और यह बड़े मजे की बात है कि जो झुक जाता है उसके चरणों में, उसका फिर झुकना बंद हो जाता है, फिर और झुकने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। जो झुक जाता है उसके चरणों में, उससे ऊंचा कोई नहीं रह जाता, वह सबसे ऊंचा हो जाता है। वे चरण इतने ऊंचे हैं कि उनमें झुकने में आप नीचे नहीं हो जाते, उनमें झुक कर आप ऊंचे हो जाते हैं, वे चरण इतने ऊंचे हैं।
लाओत्से कहता थाः धन्य हैं वे जो झुके हुए हैं, क्योंकि उनको झुकना नहीं पड़ेगा।
इसे मैं फिर दोहरा दूं, यह आदमी बहुत अदभुत बात कहता है। वह कहता है, धन्य हैं वे जो झुके हुए हैं, क्योंकि फिर उनको कोई झुका नहीं सकता। अब झुके आदमी को कैसे झुकाइएगा?
लाओत्से कहता है, धन्य हैं वे जो हारे हुए हैं, क्योंकि उनको कोई हरा नहीं सकता। अब हारे हुए आदमी को कैसे हराइएगा? जीते हुए आदमी को हमेशा हार का डर होता है। इसलिए जीता हुआ आदमी पूरा जीता हुआ कभी नहीं है, क्योंकि हार का डर मौजूद है।
लाओत्से कहता है, धन्य हैं वे जो हारे हुए हैं--वे पहले से ही हारे हुए हैं--क्योंकि उनको अब कोई हरा नहीं सकता। धन्य हैं वे जो पीछे खड़े हैं, क्योंकि अब और पीछे हटाने का कोई उपाय नहीं है।
लेकिन ये किससे पीछे खड़े हैं? किससे हारे हुए हैं? किससे झुके हुए हैं? जो अनंत के प्रति झुके हुए हैं--वे उठ गए, उठा लिए गए। जो अनंत के प्रति हारे हुए हैं--वे जीत गए, जीत गए, अब हार की कोई संभावना न रही।
जरूर मैं कहता हूं कि मेरे चरणों में मत झुकना। क्योंकि ये मेरे और तेरे के जो चरण हैं, यह मेरे और तेरे का जो भाव है, यही भाव झुकने में बाधा है। जहां मेरा-तेरा नहीं रह जाता, वहीं झुकना शुरू हो जाता है, वहीं झुकना आ जाता है।
तो नाराज मत हो जाना। कुछ मित्रों ने मुझसे कहा कि हम बहुत... ऐसी बात आपने कह दी, हम तो छुएंगे पैर!
हमारे मुल्क में आदतें भी तो बड़ी अजीब हैं न। अगर कोई आदमी कहे, मेरे पैर मत छुओ! यह पैर छुलाने की अच्छी तरकीब भी है। यह बहुत बढ़िया तरकीब है। अगर लोगों से कहो, पैर मत छुओ! तो लोग पैर छूने और भी आ जाएंगे। लोगों से कहो, दूर रहो! तो वे और पास आएंगे। अगर लोगों को गाली दो, तो वे समझेंगे कि परमहंस है यह आदमी। यह हमारी गलत आदत हजारों वर्ष की है। और होशियार और चालाक लोग इसका फायदा भी उठा रहे हैं। क्योंकि लगता है कि जो आदमी कहता है, मेरे चरण मत छुओ! बड़ा महापुरुष है। इसके तो चरण जरूर छूने चाहिए।
इसलिए नहीं कहा है मैंने। कहा है मैंने इसलिए कि जरूर झुको कहीं, लेकिन गलत जगह मत झुक जाना। झुको जरूर, झुको जरूर, झुकना ही कला है धर्म की;

टूट जाओ, मिट जाओ, बिखर जाओ, बह जाओ। लेकिन कहां? अनंत के लिए। सर्व के लिए। सबके लिए। वह जो व्यापक है, वह जो विराट है, वह जो फैला है, उसके लिए। सीमित के लिए, क्षुद्र के लिए, क्षण के लिए, जो आज है और कल नहीं होगा, उसके लिए मत झुको।
लेकिन ध्यान रहे, झुकने के मैं विरोध में नहीं हूं। झुकना ही तो राज है, मिट जाना ही तो राज है। जब तक हम अपने को मजबूती से पकड़े हुए हैं और झुक नहीं सकते, टूट नहीं सकते, तब तक हम पहुंच नहीं सकते वहां जहां पहुंचना है। मिट जाना ही पा लेने का सूत्र है। खो जाना ही पा लेने का मार्ग है। झुक जाना ही उठ जाने की कला है।
लेकिन ध्यान रहे, कहां?
बुद्ध ने अपने पिछले जन्म की एक कहानी कही है। कहा है कि पिछले जन्म में, जब मैं बुद्ध नहीं था, जब ज्ञान नहीं था, जब नहीं जाना था और अंधेरे में जीता था, उस समय एक बुद्ध थे, एक बुद्ध पुरुष थे। मैं उन बुद्ध पुरुष के पास गया। मैंने उनके चरण छुए, सिर रख दिया चरणों पर। जब मैं उठा तो मैं चौंक कर रह गया! मैं उठ भी नहीं पाया था कि वे मेरे चरणों में झुके और मेरे चरणों में उन्होंने सिर रख दिया। मैं तो बहुत घबड़ा गया! मैंने उनसे कहा, यह आपने कैसा किया? यह तो मुझे पाप लगेगा। मैं आपके चरणों में झुकूं, यह तो ठीक है, क्योंकि मैं अज्ञानी! आप मेरे चरणों में झुकें--आप, जो कि जानते हैं; आप, जो कि पा गए; आप, जो कि पहुंच गए--यह तो मुझको पाप हो गया! यह क्या पागलपन किया आपने?
वे बुद्ध हंसने लगे, वह बुद्ध पुरुष हंसने लगा और उसने गौतम बुद्ध को
उस पिछले जन्म में कहा, तू समझता है कि तू अज्ञानी है; जब से मुझे ज्ञान हुआ, तब से सभी मुझे ज्ञानी दिखाई पड़ते हैं! तू समझता है कि तू कुछ नहीं है; जब से मैंने जाना, तब से सब जगह मुझे वही-वही हो गया है! तूने मेरे पैर पड़े, अगर मैं तेरे पैर न पडूं, तो बड़ी हंसी होगी मेरी उन लोगों में जो मुझे जानते हैं। वे कहेंगे, परमात्मा से पैर पड़वा लिए और खुद परमात्मा के पैर न पड़े!
और फिर वह बुद्ध ने कहा कि यह आज तू समझता है; लेकिन आज नहीं कल तू भी जाग जाएगा और तू भी पहुंच जाएगा वहीं। देर समय की है, सपने की है, देर ज्यादा नहीं है।
फिर बुद्ध को, दूसरे जन्म में बुद्ध ने कहा, आज मैं जानता हूं कि कैसी बात कही थी उन्होंने। जब से मैं जागा, तब से मुझे कोई सोया हुआ नहीं दिखाई पड़ रहा है। जब से मैंने जाना, तब से हर आदमी मुझे वही दिखाई पड़ रहा है।
आप पूछते हैं कि मैं क्यों मना करता हूं?
अब एक ही रास्ता है--एक ही रास्ता है कि आपको मना न करूं--वह यह कि आप मेरे पैर छुएं और मैं आपके पैर छुऊं। अब यह इतना उपद्रव हो जाएगा, यह इतनी परेशानी होगी और इतना समय लेगा, जिसका कोई अर्थ नहीं है। क्योंकि यह बड़ी अशोभन बात है कि आप हाथ जोड़ कर मुझे नमस्कार करें और मैं हाथ न जोड़ सकूं। अगर हाथ जोड़ कर आप नमस्कार करें और मैं हाथ न जा.ेड़ सकूं, तो बड़ी अशोभन बात है।
हालांकि हमारे मुल्क के साधु किसी को हाथ नहीं जोड़ते, पता है आपको? आप हाथ जोड़िए, वे ऐसे आशीर्वाद देंगे। और एक कैमरा मैन को पास रखेंगे, जो तत्काल फोटो निकाल लेगा। फिर कैलेंडर छपवा कर बैठेंगे कि फलां ऋषि, फलां आचार्य, फलां महात्मा पंडित नेहरू को आशीर्वाद दे रहे हैं। और गलती कुल इतनी हो गई कि वह बेचारे पंडित नेहरू ने भद्रता से हाथ जोड़ा है और उन्होंने हाथ ऊपर उठा दिया, उन्होंने भद्रता से हाथ भी नहीं जोड़े।
हाथ आप जोड़ें और मैं हाथ न जोड़ सकूं, तो कैसी अभद्रता है यह, कैसी असाधुता! ठीक यही बात है, आप मेरे पैर पड़ें और मैं आपके पैर न पडूं, यह भी तो अभद्रता है। यह भी तो अभद्रता है, उत्तर मेरी तरफ से भी चाहिए। तो अब दो ही उपाय हैं, या तो आप राजी हो जाएं, या फिर मुझसे भी मेहनत करवाएं।
कोई अर्थ नहीं है उसमें। व्यक्तियों की पूजा नहीं करनी है। व्यक्तियों की पूजा नहीं करनी है, नहीं होने देनी है। व्यक्तियों की पूजा बहुत हो चुकी। उसके कारण सत्य की पूजा नहीं हो पाती है। व्यक्तियों से बचें। एक व्यक्ति से छूटते हैं, दूसरा पकड़ जाता है। व्यक्तियों से बचें,

व्यक्तियों को जाने दें। व्यक्ति का कोई भी मूल्य नहीं है, मूल्य है सत्य का।
मैं चांद को इशारा करके बताऊं कि वह चांद है ऊपर। आप मेरा हाथ पकड़ लें
कि यह हाथ बड़ा अदभुत है, इसकी पूजा करनी चाहिए। हो गया पागलपन! हम दिखाए थे चांद को, आपने पकड़ लिया हाथ को। चांद एक तरफ रह गया, हाथ की पूजा शुरू हो गई।
महावीर इशारा करते हैं कि वह रहा सत्य! जीसस चिल्लाते हैं, वह रहा दरवाजा! मोहम्मद कहते हैं, वह रहा मार्ग, वह रहा रास्ता! आओ!
हाथ पकड़े है मुसलमान; हाथ पकड़े है जैन; हाथ पकड़े है हिंदू; हाथ पकड़े है ईसाई। हाथ की पूजा किए चला जा रहा है, दीये जला रहा है, धूप जला रहा है, फूलमाला चढ़ा रहा है कि धन्य हैं आप!
रोते होंगे बेचारे, सब रोते हैं! बुद्ध, महावीर, कृष्ण, सब रोते हैं! उधर मिलते हैं ऊपर, तो बैठ कर, बड़ी बैठक जमा कर रोते हैं इकट्ठे! सिर फोड़ते हैं अपना कि जिनको हम समझा आए थे वे क्या कर रहे हैं!
इसको खत्म करें, इसको मिटा दें, अब इसकी कोई जरूरत नहीं। किसी व्यक्ति
को पूजा देने की जरूरत नहीं। इशारों को छोड़ें, चांद को देखने का सवाल है। और जो चांद को देखना चाहता है, उसे इशारा छोड़ ही देना पड़ेगा; क्योंकि या तो मेरे हाथ को देखें, और या फिर आंखों को चांद की तरफ उठाएं। आंख चांद की तरफ उठेंगी, हाथ छूट ही जाएगा।
परमात्मा की तरफ जो जाएगा--महावीर भी छूट जाएंगे, बुद्ध भी छूट जाएंगे, कृष्ण भी छूट जाएंगे, राम भी छूट जाएंगे--सब छूट जाएंगे। ये तो इशारे थे। रास्ते के किनारे लगे हुए इशारे थे कि यह जा रहा है रास्ता। कुछ ऐसे लोग भी होते हैं--बुद्धिमान लोग--वे उसी पत्थर पर, जिस पर लिखा है कि यह रहा बंबई का रास्ता, उस पत्थर को छाती से लगा कर बैठ जाते हैं, कि प्यारे तुम बहुत अच्छे हो, तुमने पहुंचा दिया बंबई।
वह बेचारा सिर्फ रास्ता था, जो इशारा करता था कि वह रही बंबई। आगे बढ़ जाना मुझे छोड़ कर कि पहुंच जाओ वहां जहां इशारा है। वे बैठे हैं पत्थर को छाती से लगाए। और अगर कोई उनको कहे कि भाईजान उठो! तो वे कहेंगे, हमारे धर्म में बाधा डाल रहे हो! हम प्रार्थना कर रहे हैं, हम पूजा कर रहे हैं। नहीं, व्यक्ति को जाने दें, ताकि सत्य आ सके। छोड़ दें सब, ताकि उस तरफ आंख उठ सके, जो सिर्फ उन्हीं आंखों में दिखाई पड़ता है जो सब छोड़ कर उठती हैं। जिस आंख से व्यक्तियों का, शब्दों का, शास्त्रों का धुआं हट जाता है, जिस आंख से रोकने वाले आंसू उड़ जाते हैं, जिस आंख से पर्दे गिर जाते हैं, वही आंख निर्दोष होकर उसे देखने में समर्थ हो जाती है जो सत्य है।
और उस सत्य की उपलब्धि, उस सत्य की उपलब्धि की छाया का नाम शांति है।
जो उस सत्य को पा लेता है वह शांत हो जाता है। सत्य का परिणाम है शांति।
सत्य मिला, शांति छाया की तरह पीछे चली आती है। सत्य की छाया है शांति।
इसलिए शांति को सीधा मत खोजना कभी भी। अगर मैं आपके घर आऊंगा, तो मेरी छाया बिना निमंत्रण दिए आपके घर आ जाएगी, अलग से निमंत्रण देने की जरूरत नहीं है। और अगर मेरी छाया को निमंत्रण दे गए, तो आप जानें, आपका काम जाने।
मैं तो आऊंगा नहीं; छाया आने वाली नहीं है।
जो लोग शांति को निमंत्रण देते हैं, शांति कभी नहीं आती। शांति सत्य
की छाया है। सत्य आता है, शांति पीछे छाया की तरह चली आती है।
इन चार दिनों में उस सत्य की खोज के लिए मैंने कुछ कहा, ताकि शांति की खोज हो सके। मेरी बातों को इतने प्रेम और इतनी शांति से सुना, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

तृषा गई एक बूंद से
पांचवां प्रवचन

सत्य की खोज

मेरे प्रिय आत्मन्!
सत्य की खोज के संबंध में थोड़ी सी बात आपसे कहना चाहूंगा।
सत्य की क्या परिभाषा है? आज तक कोई परिभाषा नहीं हो सकी है। भविष्य में भी नहीं हो सकेगी। सत्य को जाना तो जा सकता है, लेकिन कहा नहीं जा सकता। परिभाषाएं शब्दों में होती हैं और सत्य शब्दों में कभी भी नहीं होता।
लाओत्से ने आज से कोई तीन हजार वर्ष पहले एक छोटी सी किताब लिखी। उस किताब का नाम है ताओ तेह किंग। उस किताब की पहली पंक्ति में उसने लिखा हैः मैं सत्य कहने के लिए उत्सुक हुआ हूं, लेकिन सत्य नहीं कहा जा सकता है। और जो भी कहा जा सकता है, वह सत्य नहीं होगा। फिर भी मैं लिख रहा हूं, लेकिन जो भी मेरी इस किताब को पढ़े, वह पहले यह बात ध्यान में रख ले कि जो भी लिखा, पढ़ा, कहा जा सकता है, वह सत्य नहीं हो सकता।
बहुत अजीब सी बात से यह किताब शुरू होती है। और सत्य की दिशा में लिखी
गई किताब हो, और पहली बात यह कहे कि जो भी लिखा जा सकता है वह सत्य नहीं होगा, जो भी कहा जा सकता है वह सत्य नहीं होगा, फिर लिखा क्यों जाए? फिर कहा क्यों जाए? जो हम भी कहेंगे वह अगर सत्य नहीं होना है, तो हम कहें क्यों? लेकिन जिंदगी के रहस्यों में से एक बात यह है कि अगर मैं अपनी अंगुली उठाऊं और कहूं--वह रहा चांद! तो मेरी अंगुली चांद नहीं हो जाती है, लेकिन चांद की तरफ इशारा बन सकती है। अंगुली चांद नहीं है, लेकिन फिर भी चांद की तरफ इशारा बन सकती है। लेकिन कोई अगर मेरी अंगुली पकड़ ले और कहे कि मिल गया चांद, तो भूल हो जाएगी। अंगुली चांद नहीं है, लेकिन चांद की तरफ इशारा बन सकती है, और उनके लिए ही इशारा बन सकती है जो अंगुली को छोड़ दें और चांद को देखें। अंगुली को पकड़ लें, तो अंगुली इशारा न बनेगी, बाधा बन जाएगी।
शब्द सत्य नहीं है, न हो सकता है। लेकिन शब्द इशारा बन सकता है। लेकिन
उन लोगों के लिए, जो शब्द को पकड़ न लें। जो शब्द को पकड़ लें, उनके लिए शब्द इशारा नहीं बनता, सत्य और स्वयं के बीच दीवाल बन जाता है। और हम सारे लोगों को शब्द दीवाल बन गए हैं; हमने जितने शब्द पकड़ रखे हैं वे सभी दीवाल बन गए हैं। शब्द के पास कुछ भी नहीं है। जो भी मैं कहूंगा, अगर मेरे शब्द ही सुने, तो कुछ भी नहीं पहुंचेगा आप तक। लेकिन अगर शब्द इशारा बन जाएं और उस तरफ आंख उठ जाए जिस तरफ शब्द इंगित करते हैं... । और जिस तरफ शब्द इंगित करते हैं, वह बहुत दूर है। शब्द पृथ्वी के हैं और जिस तरफ इशारा करते हैं वह आकाश में है, फासला बहुत है। शब्द और सत्य के बीच बहुत फासला है।
लेकिन कोई व्यक्ति गीता पढ़ता है और गीता के शब्दों को कंठस्थ कर लेता
है और सोचता हैः मिल गया धर्म, जान लिया धर्म। कोई आदमी कुरान पढ़ता है और आयतें कंठस्थ कर लेता है और सोचता हैः जान लिया सत्य। सब शास्त्र हमारे हाथों में आकर, सत्य और हमारे बीच दीवाल बन गए। सब महापुरुष पकड़ लिए जाने के कारण इशारा नहीं रहे, पत्थर बन गए हैं। और ऐसी हालत हो गई है कि जिनसे हमने यात्रा की होती, उन्हें हमने रुकावट बना लिया है।
बुद्ध कहते थे, कुछ मित्र एक बार नदी पार किए एक नाव में बैठ कर। फिर
जब वे नदी पार कर गए, तो वे सोचने लगे कि जिस नाव में हमने नदी पार की है, उस नाव को हम छोड़ कैसे दें? इस नाव का तो हम पर बड़ा उपकार है। अगर यह नाव न होती तो हम नदी पार न कर पाते। तो उन्होंने नाव को अपने सिरों पर उठा लिया और बाजार में चले। लोग उनसे पूछने लगे, यह क्या कर रहे हो? हमने कभी लोगों को सिर पर नाव उठाए नहीं देखा।
तो उन लोगों ने कहा, इस नाव के द्वारा हम नदी पार हुए। अब हम नाव के प्रति इतने अकृतज्ञ नहीं हो सकते हैं कि उसे नदी में ही छोड़ दें नाव को! हम नाव को अपने सिर पर ले जाएंगे। अब हम इस नाव को सदा अपने सिर पर रखेंगे।
क्योंकि इस नाव ने हमें नदी पार करवा दी।

लोग कहने लगे, तुम पागल हो गए हो! नाव नदी पार करने के लिए है और फिर छोड़ देने के लिए है। और जो पागल नाव को सिर पर लेकर घूमेगा, उससे तो अच्छा था कि वह नदी ही पार न करता, कम से कम नाव की झंझट से तो बचता।
शास्त्र और शब्द भी इशारे हैं--किसी तरफ पार हो जाने के लिए। लेकिन उन इशारों को लोग सिर पर ले लेते हैं, फिर जिंदगी भर उन्हीं के नीचे दबते हैं और मर जाते हैं। और उसका कोई पता नहीं चलता, जिसके लिए इशारे थे।
इसीलिए दुनिया में हिंदू हो गए हैं, मुसलमान हो गए हैं, ईसाई हो गए हैं, जैन हो गए हैं, लेकिन सत्य के खोजी नहीं। हिंदू का क्या मतलब? हिंदू का मतलब है कि कुछ शास्त्रों को एक आदमी ने अपने सिर पर पकड़ रखा है और वह कहता है, यही सत्य है। मुसलमान का क्या मतलब है? मुसलमान का मतलब हैः किन्हीं दूसरे शास्त्रों को, किन्हीं दूसरे इशारों को उसने अपने सिर पर रख लिया है और वह कहता है, यही सत्य है। और सारी दुनिया में सारे लोग शास्त्रों को सिर पर लिए हुए खड़े हैं। अन्यथा आदमी आदमी है, न कोई हिंदू है, न कोई मुसलमान है। हिंदू और मुसलमान बनाने वाला शास्त्र है।
हिंदू और मुसलमान के बीच फासला क्या है? शब्दों का फासला है। उसने एक तरह के शब्द सीखे हैं और मैंने दूसरे तरह के शब्द सीखे हैं, तो मैं हिंदू हूं, वह मुसलमान है, तीसरा आदमी ईसाई है। फर्क क्या है तीन आदमियों के बीच? तीन तरह के शब्दों की परंपराओं के अतिरिक्त और कोई फर्क नहीं है। एक आदमी ने अल्लाह सीखा है तो वह मुसलमान है, एक ने राम सीखा है तो वह हिंदू है। फर्क क्या है दोनों के बीच? दो शब्दों का! और अल्लाह भी एक इशारा है और राम भी एक इशारा है। मजे की बात यह है! और जिसकी तरफ इशारा है, वह न अल्लाह है, न राम है। मोहम्मद भी एक अंगुली बता कर कहता है, वह रहा सत्य। इसकी अंगुली को जिसने पकड़ लिया है, वह मुसलमान है। और कृष्ण भी अंगुली उठा कर कहता है, वह रहा सत्य। इसकी अंगुली को जिसने पकड़ लिया, वह हिंदू है। और जिस तरफ ये अंगुलियां उठती हैं--अंगुलियां हजार हो सकती हैं, चांद एक है। लेकिन फिर अंगुलियों को पकड़ने वाले लोग लड़ते हैं।
दुनिया में सिर्फ आदमी है, न कोई हिंदू, न कोई मुसलमान। शास्त्रों का फासला है। और शास्त्र इशारे हैं। शास्त्र पकड़ने के लिए नहीं, छोड़ देने के लिए हैं। नाव सिर पर ढोने के लिए नहीं, यात्रा में सहयोगी बनने के लिए है। सब शब्द सहयोगी की तरह शुरू होते हैं और दुश्मन की तरह छाती पर बैठ जाते हैं। कोई सोचे कि हमारे बीच शब्दों के अतिरिक्त और कोई फासला है? दुनिया में जितने झगड़े हैं, शब्दों के अतिरिक्त झगड़े का और कोई कारण है? जितनी आइडियोलॉजीज हैं, ये क्या हैं?
आइडियोलॉजीज हजार हो सकती हैं, लाख हो सकती हैं, करोड़ हो सकती हैं। एक-
एक आदमी की एक-एक आइडियोलॉजी हो सकती है। जितने आदमी हैं, उतने विचार हो सकते हैं। लेकिन सत्य तो एक है। सत्य का अर्थ हैः जो है।
लेकिन जो है, दैट व्हिच इ.ज, उसको अगर जानना है, तो मुझे सारे शब्द छोड़ देने पड़ेंगे। तो उसे मैं बिना शब्दों को छोड़े कभी नहीं जान सकता हूं। सत्य को जानने की दिशा में पहला जो बड़ा काम है, वह शब्दों को, शास्त्रों को, संप्रदायों को, सिद्धांतों को छोड़ देना है। जो इन्हें जितने जोर से पकड़ेगा, उतना ही मुश्किल हो जाएगा उसे जानना, जो है।
सत्य की इसलिए कोई परिभाषा नहीं हो सकती, क्योंकि सभी परिभाषाएं शब्दों में होती हैं। हम नहीं होंगे, तो भी सत्य होगा; पृथ्वी पर मनुष्य नहीं था, तो भी सत्य था; शब्द नहीं था लेकिन तब, सत्य था। कल यह हो सकता है कि सारे मनुष्य खो जाएं, न हों, तो भी सत्य होगा। चांद था, जब इशारे करने वाले नहीं थे, तब भी; और इशारे करने वाले नहीं रह जाएंगे, तो भी चांद होगा। इशारों से चांद के होने का कोई भी अनिवार्य संबंध नहीं है। हां, चांद न हो तो इशारे नहीं किए जा सकते। लेकिन इशारे न हों तो चांद हो सकता है। सत्य था, सत्य है, सत्य रहेगा; हम हों, न हों, इससे कोई भेद नहीं पड़ता। जो है, वह हमारे शब्दों से रूपांतरित नहीं हो जाता।
लेकिन हम अपने शब्दों के चश्मों से ही उसे देखना चाहते हैं। तब कठिनाई शुरू हो जाती है। हम सदा अपनी दृष्टि से देखना चाहते हैं। और तब हमारी दृष्टि सत्य को वैसा नहीं दिखने देती जैसा वह है, वैसा बना देती है जैसा हम देखना चाहते हैं। यह हमारे ख्याल में नहीं है कि जब तक हमारी कोई

दृष्टि... और दृष्टि का मतलबः हमारे सीखे हुए शब्द। दृष्टि का और कोई मतलब नहीं है। दृष्टि का मतलब हैः हमारे सीखे हुए शब्द, हमारा सीखा हुआ ज्ञान, लर्निंग; वह जो हमने जान लिया है, जो हमने सुन लिया है, जो हमने पढ़ लिया है, वह हमारी दृष्टि को बनाता है। उस दृष्टि के माध्यम से जब हम देखने चलते हैं, तो सत्य सत्य नहीं रह जाता, बीच में एक परदा है और वह परदा विकृत कर देता है।
मैंने सुना है, एक गरीब आदमी एक गाय खरीद लाया था। लेकिन गाय थी एक सम्राट के घर की। गरीब आदमी की बड़े दिनों से इच्छा थी कि वह गाय खरीदे, और कोई बहुत बढ़िया गाय खरीदे। बहुत मुश्किल से रुपये इकट्ठे करके गाय खरीदी। लेकिन उसे पता नहीं था कि राजा के घर की गाय गरीब आदमी के घर में कैसे रह सकती है? गाय तो ले आया, लेकिन गाय ने उस गरीब के घर का सूखा भूसा, सूखा घास खाने से इनकार कर दिया। वह हरी घास खाने की आदी थी, वह कीमती घास खाने की आदी थी। वह गरीब बहुत परेशान हुआ। बहुत मनाया, समझाया। कहा, माता! सब तरह से उसके हाथ-पैर जोड़े। लेकिन गाय कहीं सुनती है? घबड़ा गया।
गांव में एक बूढ़ा आदमी था जानकार पशुओं के बाबत। उसके पास गया और कहा, मैं क्या करूं? मैं तो गरीब आदमी हूं, सूखा घास है मेरे पास। हरी घास मैं कहां से ला सकता हूं बेमौसम में! राजा के घर की गाय लेकर मुश्किल में पड़ गया। दो दिन से भूखी खड़ी है।
उस बूढ़े आदमी ने कहा, तू बाजार जा और एक हरे रंग का चश्मा खरीद ला, और चश्मा गाय की आंख पर चढ़ा दे। चीजें हरी हों या न हों, हरी दिख सकती हैं। फिर उसने कहा, गाय को क्या पता चलेगा कि घास हरी है या नहीं! सवाल गाय को हरी दिखनी चाहिए, बात खतम हो गई।
वह गरीब आदमी एक चश्मा खरीद लाया और उसने गाय की आंख पर चश्मा लगा दिया। गाय वह सूखे घास को खाने लगी, क्योंकि घास अब हरा दिखाई पड़ रहा था। हम सारे लोग भी चश्मे चढ़ाए हुए हैं और चीजों को वैसा देख रहे हैं जैसी
वे नहीं हैं। जरा सा चश्मा बदल लें, और चीजें दूसरी दिखाई पड़ने लगती हैं। लेकिन एक बात ध्यान रहे, जब तक चश्मा है, तब तक चीजें वैसी नहीं दिखाई पड़ सकतीं जैसी वे हैं। क्योंकि चश्मा कुछ न कुछ करेगा। और सब चश्मे रंगीन हैं। सब चश्मे रंगीन हैं, क्योंकि सब चश्मे किन्हीं व्यक्तियों, किन्हीं परंपराओं के द्वारा निर्मित हुए हैं। परंपराएं रंग देती हैं।
जब एक आदमी कहता है, मैं भारतीय! तो वह यह कहता है कि मैं एक खास तरह के देखने का मेरा ढंग है, जो और दूसरों का नहीं है। चीन के रहने वाले का नहीं है, जापान के रहने वाले का नहीं है। मैं भारतीय हूं, मेरा एक खास तरह का देखने का ढंग है। भारतीय होने का क्या मतलब है? जब एक आदमी कहता है, हिंदू, ईसाई, बौद्ध, तो वह यह कहता है कि मेरा एक खास ढंग है चीजों को देखने का-- बौद्ध। उस परंपरा के चश्मे से मैं देखता हूं चीजों को। जब एक आदमी कहता है, इस्लाम, तो वह कहता है, मैं इस्लाम के चश्मे से देखता हूं चीजों को। लेकिन कोई आदमी चीजों को देखने को राजी नहीं है, चश्मों को स्थापित करने को राजी है। तो फिर सत्य को कभी भी नहीं जान सकता। इस्लाम से जो देखा जाएगा, वह वही होगा जो इस्लाम से देखा जा सकता है, वह वह नहीं होगा जो है।
जब तक हम चश्मों पर जोर देते हैं, दृष्टियों पर जोर देते हैं, सिद्धांतों पर जोर देते हैं, परंपराओं पर जोर देते हैं, तब तक हमारी सत्य की खोज शुरू नहीं हुई है। तब तक हम यह कहते हैं, सत्य को ऐसा होना चाहिए। यह हम पहले तय करते हैं सत्य को बिना जाने। यह हम पहले तय करते हैं कि सत्य को कैसा होना चाहिए और वह तय करके फिर हम सत्य के पास जाते हैं--सत्य वैसा ही हो जाता है, क्योंकि हमारा चश्मा जिस रंग का है वैसा हमें दिखाई पड़ने लगता है।
इसलिए दुनिया में कोई तीन सौ धर्म हैं, और तीन सौ ही धर्म के मानने वालों को सत्य वैसा दिखाई पड़ता है जैसा उनकी किताब में लिखा है। वह दिखाई पड़ेगा ही, इसमें सत्य का कोई कसूर नहीं है। इसमें अपनी आंख पर चढ़ा हुआ चश्मा है। जो आदमी यहां हरे रंग का चश्मा लगा कर खड़ा होगा, उसको सारी चीजें हरी दिखाई पड़ेंगी। और वह कहेगा कि मुझे दिखाई पड़ रही हैं, इसलिए मैं कैसे कहूं कि असत्य हैं? सत्य हैं! मुझे दिखाई पड़ रहा है वही सत्य है।

इसलिए ध्यान रहे, जो आदमी यह कहता है कि जो मुझे दिखाई पड़ता है वही सत्य है, वह सत्य से भी ज्यादा अपनी दृष्टि की कीमत बता रहा है।
और सत्य उसे दिखाई पड़ सकता है, जो अपनी दृष्टि को छोड़ने को राजी है। जो कहता है, जो मुझे दिखाई पड़ता है वह नहीं, जो है, उसकी मुझे फिकर है।
तो सत्य की खोज की पहली शर्त हैः अपनी दृष्टि को छोड़ने की सामर्थ्य। अपने सीखे हुए शब्दों को छोड़ने की हिम्मत। अपने शास्त्र को, अपने पंथ को, अपने संप्रदाय को एक तरफ हटाने की हिम्मत। इसके लिए जो आदमी तैयार हो जाता है, वह आदमी सीधा देख सकता है कि क्या है। हम सीधे कभी भी नहीं देखते, हमारा देखना सब बंधा हुआ देखना है।
एक पत्थर रखा हुआ है। एक बच्चे को बचपन से सिखाया गया है--यह भगवान है। दूसरे बच्चे को बचपन से सिखाया गया है कि यह कुफ्र है। यह भगवान नहीं है, यह पाप है इसको भगवान मानना। ये दोनों बच्चे उस पत्थर के सामने से निकलते हैं। एक हाथ जोड़ कर नमस्कार करता है, दूसरा मौका मिलते ही उस पत्थर को लात मार कर तोड़ डालना चाहता है। ये दोनों ही उस पत्थर को नहीं देख रहे हैं जो है! एक देख रहा है--भगवान, जो उसने सीखा है। और एक देख रहा है--पाप, जो उसने सीखा है। इन दोनों की भूल एक है। ये दोनों अलग-अलग तरह के लोग नहीं हैं। हम कहेंगे, दोनों उलटे हैं। एक मारता है लात, एक करता है पूजा; दोनों उलटे हैं।
दोनों उलटे नहीं हैं, दोनों बिल्कुल एक जैसे हैं। एक ने यह सीखा है, दूसरे ने वह सीखा है। दोनों अपने सीखने को मानते हैं। पत्थर को कोई देखने को राजी नहीं है कि वह क्या है।
पत्थर न तो पाप है और न भगवान है; पत्थर सिर्फ पत्थर है। लेकिन उस पत्थर की सीधी सच्चाई को देखने के लिए अपनी दृष्टि से छुटकारा बहुत जरूरी है। नहीं तो एक पत्थर को तोड़ने में जान गंवा देगा और दूसरा पत्थर को बचाने में जान गंवा देगा, और दोनों में से कोई उसको नहीं देखेंगे जो था। जो था, उसे देखते, तो शायद दोनों हंसते और कहते कि हम दोनों पागल हैं! पत्थर पत्थर है, न तो वह भगवान है और न ही वह पाप है कि तोड़ा जाए; न वह पूजने योग्य है, न तोड़ने योग्य है।
यह कभी आपने सोचा कि पूजा करने वाला और तोड़ने वाला, दोनों पत्थर नहीं देख रहे हैं, दोनों कुछ और देख रहे हैं! मूर्तिभंजक और मूर्तिपूजक, दोनों ही पत्थर नहीं देखते। एक मूर्ति देखता है भगवान की, दूसरा मूर्ति देखता है शैतान की कि तोड़ देने योग्य है, मिटा देने से पुण्य होगा। एक को पूजने से पुण्य होता है। लेकिन बेचारे पत्थर को कोई भी नहीं देखता। मूर्तिपूजक मर जाएगा, मूर्तिभंजक मर जाएगा, और तब भी वह पत्थर इस दुनिया में होगा। लेकिन तब वह क्या होगा? भगवान होगा कि कुफ्र होगा? तब वह सिर्फ पत्थर होगा। वह अभी भी वही है। उस पत्थर को पता भी नहीं है कि कोई मेरी पूजा करता है या कोई मुझे तोड़ने आता है। अगर पत्थर को पता होगा तो बहुत हंसता होगा हिंदू पर, बहुत हंसता होगा मुसलमान पर कि कैसे पागल हो! मैं सिर्फ पत्थर हूं, मैं जो हूं वह हूं।
लेकिन हम, जो है, उसे कभी देखते ही नहीं। हम तो जो देखने के लिए तैयार किए गए हैं, वही देखते हैं।
उन्नीस सौ बावन में, हिमालय की तराई में नीलगाय नाम का जानवर होता है, उसने खेतों में बहुत उत्पात कर रखा था। बहुत नुकसान कर रहा था। उसकी संख्या बहुत बढ़ गई थी। तो संसद में सवाल उठा कि नीलगाय को गोली मारनी जरूरी हो गई है, लेकिन गाय शब्द उसमें जुड़ा है, उसको गोली कैसे मारी जाए? तो संसद में एक समझदार आदमी ने कहा कि इस बात को मत उठाइए, पहले उसका नाम नीलघोड़ा कर दीजिए, फिर गोली मारना आसान हो जाएगा। संसद ने तय किया कि उसका नाम नीलगाय नहीं है, नीलघोड़ा है। और उसके बाद उसको गोली मारी गई, धड़ाधड़ नीलगाय मारी गई, लेकिन किसी हिंदू ने एतराज नहीं उठाया। क्योंकि नीलघोड़ा के मरने से हिंदू को क्या मतलब? नीलगाय मरती तो झगड़ा होता। क्योंकि वह जो गाय का चश्मा था, वह दिक्कत ला देता, वह खड़ी कर देता फौरन झंझट। लेकिन कोई झंझट नहीं हुई। बड़े होशियार लोग! जरा... और वह नीलगाय बेचारी जो थी वही है, चाहे नीलघोड़ा कहो, चाहे नीलगाय। उसे पता भी नहीं चला

होगा कि संसद ने हमारा नाम बदल कर मरने की तैयारी कर दी। उसको कोई पता नहीं चला होगा कि आदमी कैसे खेल खेलता है।
लेकिन उसी गांव में अगर वह नीलगाय होती तो झगड़ा खड़ा होता, नीलघोड़ा हो
गई तो झगड़ा खड़ा नहीं होगा। क्योंकि हम उसे तो देखते ही नहीं जो है, हम तो वह देखते हैं जो हम चश्मा लगा लेते हैं। नीलगाय थी तो वह हमारे धर्म का प्रतीक थी। नीलघोड़ा हो गई तो बात खतम हो गई।
अगर हिंदू-मुस्लिम दंगा हो, तो आपकी टोपी उठा कर चोटी देखी जाएगी। अगर चोटी है तो मुसलमान मार डालेगा, अगर चोटी नहीं है तो हिंदू मार डालेगा। आपसे किसी को मतलब नहीं है, अपने प्रतीक से मतलब है। वह चोटी, वह जनेऊ, अपने प्रतीक से मतलब है। उस आदमी को कोई नहीं देख रहा कि जो वहां खड़ा है। उस आदमी से किसी का कोई संबंध नहीं है।
अपनी इमेज हम आदमी पर आरोपित करते हैं और उसके माध्यम से देखते हैं।
हम कभी भी सत्य को नहीं जान सकते हैं। जो आदमी एक प्रतिमा के माध्यम से जीवन को देखता है, वह सत्य को कभी नहीं जान सकता।
अगर किसी आदमी ने कह दिया कि मैं--यह आदमी मुसलमान है। बस, आपने मुसलमान की एक धारणा बना रखी है, अब आप उसी धारणा से मुझे देखेंगे। अब जो मैं हूं, वह आप कभी देखने वाले नहीं हैं। अब मैं दिखूंगा ही नहीं आपको।
और यह ध्यान रहे कि मुसलमान नंबर एक, मुसलमान नंबर दो, एक से आदमी नहीं हैं; मुसलमान नंबर तीन, तीसरे तरह का आदमी है; मुसलमान नंबर चार, चौथे तरह का आदमी है। मुसलमान जैसा कोई भी आदमी नहीं है, एक-एक आदमी इंडिविजुअल है। लेकिन जैसे ही हमने कह दिया मुसलमान, इंडिविजुअल खत्म हो गया। व्यक्ति के अपने मूल्य हैं, एक टाइप, एक इमेज खड़ा हो गया कि मुसलमान यानी क्या। और मुसलमान यानी क्या, जो आपने सीखा है मुसलमान के बाबत वह। और अब यह आदमी आपको वैसा ही दिखाई पड़ेगा। वह वैसा ही दिखाई पड़ेगा। और इस आदमी के साथ आप जो व्यवहार करेंगे, वह इस आदमी के साथ नहीं है, वह उस आदमी के साथ है जिसको आप सोच रहे हैं कि यह है।
इसलिए दुनिया में हम आदमियों से भी नहीं मिल पाते, सत्य से मिलना तो बहुत दूर है। व्यक्ति और व्यक्ति के बीच भी मिलन नहीं हो पाता, हर आदमी अपनी इमेज से मिल रहा है। हर आदमी इमेजिनेशन से घिरा हुआ है, कल्पना से घिरा हुआ है। दुनिया सत्य की बहुत दूसरी है।
एक आदमी गेरुआ वस्त्र पहने खड़ा हुआ है, आप फौरन झुक कर उसके पैर छू लेंगे। यही आदमी गेरुआ वस्त्र पहने हुए नहीं खड़ा है, और आप भूल कर पैर छूने वाले नहीं हैं। आपने किसके पैर छुए? इस आदमी के जो यह है? या आपकी गेरुआ वस्त्र के प्रति एक धारणा है, उस धारणा के आप पैर छू रहे हैं? आदमियों से किसी को कोई मतलब नहीं है।
ठक्कर बापा के जीवन में मैं पढ़ता था, कि वे अहमदाबाद आ रहे हैं किसी मीटिंग में बोलने के लिए। एक थर्ड क्लास के डिब्बे में चढ़े हुए हैं। एक आदमी--पूरे डिब्बे में भीड़ है भारी--और एक आदमी पूरी बेंच पर कब्जा जमाए हुए लेटा हुआ है, आराम से अखबार पढ़ रहा है। ठक्कर बापा ने उससे कहा कि मेरे भाई, मैं बूढ़ा आदमी हूं, अगर मुझे थोड़ा बैठ जाने दो!
चुप रहो! बात मत करना बैठने-वैठने की। दूसरे डिब्बे में चले जाओ! उसने लौट कर भी नहीं देखा कि कौन है। अखबार पढ़ रहा है और बगल में बैठे हुए आदमी से थोड़ी देर में कहता है, ठक्कर बापा का भाषण है अहमदाबाद में। बड़ा अच्छा आदमी है, बड़ा अदभुत आदमी है, इसको सुनने मुझे भी जाना है, तुम भी चलोगे? और ठक्कर बापा पीछे खड़े हैं, जिनसे वह कहता है, बुड्ढे बकवास मत कर, चुपचाप खड़ा रह!
यह किस ठक्कर बापा से मिलने की बात कर रहा है? किस ठक्कर बापा को देखने
जा रहा है? और यह जाएगा। और पैर भी छू सकता है। और वहां प्रभावित होकर लौटेगा कि गजब का आदमी था। और वह आदमी बगल में खड़ा था, जिसको बैठने भी नहीं दे रहा है।
जो है, उसकी तरफ हमारी कोई नजर नहीं है। हमारी नजर वहां अटकी है जो हमने सोच रखा है। हम सब अपने चश्मों से बंधे हुए लोग हैं। जिंदगी के सब पहलुओं पर हमारे चश्मे महत्वपूर्ण हैं, सत्य महत्वपूर्ण नहीं है। और

ध्यान रहे, जिसके लिए चश्मा महत्वपूर्ण है, वह सत्य को कभी भी नहीं जान सकता। सत्य की खोज में पहला त्याग है--चश्मे का त्याग।
बहुत मुश्किल है। क्योंकि दृष्टि का त्याग सबसे कठिन बात है। क्यों कठिन बात है? क्योंकि दृष्टि को हमने इतनी प्रगाढ़ता से सीखा है कि हम में और दृष्टि में कोई फर्क ही नहीं रह गया है। अगर आपसे आपकी दृष्टि छीन ली जाए, तो आप कहोगे कि मैं तो मिट गया, मैं तो बचा ही नहीं, फिर मैं क्या रहा! आप और आपकी दृष्टि बिल्कुल एक हो गए हैं। तो दृष्टि को छोड़ना करीब-करीब मरने जैसा लगेगा। और इसलिए यह समझ लेना कि सत्य की दिशा में वही बढ़ते हैं जो अपने को छोड़ने और मरने के लिए तैयार हैं। जो कहते हैं कि हम तो वही जानेंगे जो है।
बड़ा कठिन है यह। कल एक मुसलमान ने आपको धोखा दे दिया था। फिर आज एक मुसलमान मिलता है, तो आपका मन करता है मानने का कि यह भी धोखा देगा, क्योंकि मुसलमान ने धोखा दिया था। लेकिन यह दूसरा आदमी है, यह दूसरा हिंदू है, दूसरा ईसाई है, दूसरा जैन है, यह वही आदमी नहीं है। इसका मतलब यह है कि कल जो आपने सीखा था, उसको बीच में मत लाइए, उसको हटाइए। क्योंकि यह बिल्कुल दूसरा आदमी है। इससे उस आदमी का कोई संबंध नहीं जिसको आपने कल जाना था। उससे इसके बाबत कोई नतीजा नहीं लिया जा सकता।
बड़ी कठिन है दुनिया। दूसरा था वह आदमी, यह तो ठीक है; मैं आपसे कल मिला था, आज मिल रहा हूं, आज मैं दूसरा आदमी हूं, वही नहीं; चौबीस घंटे में बहुत कुछ बदल गया है, गंगा बहुत बह गई है।
बुद्ध के पास एक आदमी आया और उसने उनके ऊपर थूक दिया। बहुत गुस्से में था। बुद्ध ने अपनी चादर से थूक पोंछ लिया और उस आदमी से कहा, कुछ और कहना है?
बुद्ध के पास बैठे भिक्षुओं को तो आग लग गई। उन्होंने कहा, पागल हो गए हैं आप! वह आदमी थूक रहा है और आप उससे पूछ रहे हैं, और कुछ कहना है।
बुद्ध ने कहा कि जहां तक मैं समझता हूं, यह आदमी कुछ कहना चाहता है, लेकिन इतने तीव्र भाव हैं इसके कि शब्दों से नहीं कह पाता है, इसलिए थूक कर कहता है। मैं समझ गया हूं इसकी बात। इस आदमी को देखो, यह आदमी इतने जोर से भरा हुआ है किसी बात से कि बेचारा शब्दों से नहीं कह सकता, इसलिए थूक कर कह रहा है। मैं इसे देख रहा हूं।
अब यह आदमी जैसे बिना चश्मे के देख रहा है। जैसे सीधा देख रहा है। लेकिन बुद्ध का शिष्य आनंद बोला कि हमारे बरदाश्त के बाहर है।
वह आदमी तो हैरान हो गया जिसने थूका था। वह चला गया। रात भर सो नहीं सका। दूसरे दिन क्षमा मांगने आया। उसने बुद्ध के पैर पकड़ लिए, रोने लगा, आंसू टपकाने लगा। बुद्ध ने कहा, देखो-देखो! यह वही आदमी है जिस पर कल तुम नाराज हुए। गंगा में कितना पानी बह गया! कल यह थूकने आया था, आज यह पैर पकड़ कर आंसू गिरा रहा है। और मैं तुमसे कहता हूं, आनंद, आज भी इसका मन इतने भाव से भरा है कि यह कह नहीं पा रहा है, यह कुछ कहना चाहता है, आंसू टपका रहा है। वह आदमी कहने लगा, मुझे माफ कर दें!
बुद्ध ने कहा, पागल, किसको कौन माफ करे? चौबीस घंटे में मैं भी बदल गया, तू भी बदल गया। अब वे दोनों घटनाएं जा चुकी हैं। अब वह कोई भी नहीं है इस दुनिया में, कौन किसको माफ करे! अब मैं वह नहीं हूं जो चौबीस घंटे पहले तू आया था तब था। अगर मैं अब भी वही हूं, तो मैं मरा हुआ आदमी हूं। सिर्फ मरा हुआ नहीं बदलता है, जिंदा तो बदल जाता है। जिंदगी का मतलब है बदल जाना। जिंदगी का मतलब है परिवर्तन। और तू भी अब वही नहीं है। सोच! लौट कर देख! तू अब वह कहां है जो थूक गया था मेरे ऊपर? तू बिल्कुल दूसरा आदमी है। इसलिए छोड़ो। वे दोनों अब नहीं हैं, वे जा चुके। पानी पर खींची हुई लकीरों की तरह मिट गए। मैं तुझे देखूं, तू मुझे देख, ज्यादा उचित है। अब उनको, जो अब नहीं रहे, बीच में लाने की कोई भी जरूरत नहीं है।
लेकिन वह आदमी कहता है, नहीं, मुझे माफ कर दो!
तो बुद्ध अपने भिक्षुओं से कहते हैं, देखते हो, यह आदमी कल ही रुका हुआ है। यह मुझे नहीं देख रहा है, यह चौबीस घंटे पहले उस आदमी को देख रहा है जिसके ऊपर थूक गया था। यह अपने को भी नहीं जान रहा है जो यह अभी है। यह अपने को वहीं जान रहा है, चौबीस घंटे पहले, जब थूक गया था। यह दूसरा आदमी हो गया।

तुझे मैं कैसे माफ करूं? तू वह है ही नहीं जो थूक गया था। क्योंकि थूक जो गया था, वह रो नहीं सकता है, वह आंसू नहीं बहा सकता है, वह पैर नहीं पकड़ सकता है। जिसने क्रोध किया था, वही क्षमा मांगने नहीं आया है। क्योंकि क्षमा मांगने का व्यक्तित्व ही दूसरा है, क्रोध का व्यक्तित्व ही दूसरा है।
एक आदमी और दूसरे आदमी में तो भेद है ही, एक आदमी में भी एक क्षण के बाद भेद है। लेकिन हम हमेशा वही देखते हैं जो हमने कल देखा था, जो हमने परसों देखा था। जो बीत गया, वह चश्मा हमारी आंखों पर लग जाता है, हम उसी से जिंदगी को देखते चले जाते हैं।
आप जिस पत्नी को विवाह करके ले आए थे बीस साल पहले, या जो पत्नी बीस साल पहले आपको पति बना कर ले आई थी, शायद ही आपने बीस साल में उसे गौर से देखा हो--कि वह औरत अब कहां है जो आप लाए थे? वह आदमी अब कहां है जो आप लाए थे? वे सब बह गए। लेकिन धारणा वहीं रुकी है, चीजें वहीं अटकी हैं। और हम उसी से तौल रहे हैं, और उसी के पास जी रहे हैं। वह सब जा चुका है, सिवाय स्मृति के और कहीं भी नहीं रह गया है। रोज सब बदल जाता है, रोज सब बदल जाता है, कोई भी ठहरा हुआ नहीं है। जिंदगी एक बहाव है।
सत्य को वे जान सकते हैं, जो बहाव के साथ खड़े हो जाते हैं और पिछली दृष्टि को बह जाने देते हैं, रुकने नहीं देते।
लेकिन हमारी सारी दृष्टियां अटकी हुई हैं। जीवन के सत्य को जानने के लिए, इतना निर्मल होने की जरूरत, इतना इनोसेंट, जैसे दर्पण। आपने फर्क देखा है? फोटोग्राफ और दर्पण में कुछ फर्क दिखता है?
फोटोग्राफ पकड़ लेता है जो भी उसे दिखाई पड़ता है, फिर उसे छोड़ता नहीं। फोटोग्राफ की दृष्टि होती है, इमेज होता है। फोटोग्राफ बहुत सेंसिटिव है, जो चीज दिख गई वह उसको एकदम पकड़ लेता है, फिर उसको छोड़ता नहीं। फिर वह उसको ही पकड़े जीता है। फिर जिंदगी भर अब वह इसी को पकड़े रहेगा। बहुत चित्र निकलेंगे फिर इसके सामने से--सूरज उगेंगे, और चांद निकलेगा, और पक्षी उड़ेंगे--लेकिन नहीं, अब वह नहीं पकड़ेगा। उसने जो पकड़ लिया वह पकड़ लिया। इसलिए फोटोग्राफ मर जाता है।
दर्पण मरता नहीं है। वह भी देखता है, फोटोग्राफ से भी ज्यादा साफ देखता है, लेकिन पकड़ता नहीं। चित्र सामने से बीत जाते हैं, दर्पण खाली हो जाता है। फिर नये चित्र आते हैं, उनको देखता है, फिर दर्पण खाली हो जाता है। दर्पण रोज खाली हो जाता है, प्रतिपल खाली हो जाता है, इसलिए रोज फिर से पकड़ने के लिए ताजा हो जाता है। दर्पण रोज दर्शन करता है, क्योंकि दर्पण दृष्टि नहीं बांधता, दर्पण पकड़ नहीं लेता।
हम सब फोटोग्राफ जैसे लोग हैं। हमारा जो माइंड है, वह जो पकड़ लेता है
तो पकड़ ही लेता है, फिर उससे छूटता नहीं। और इसलिए हमें सत्य का कभी पता नहीं चलता; जो हमने पकड़ रखा है उसी के माध्यम से हम जिंदगी को देखते रहते हैं।
सत्य को जान सकते हैं वे, जो फोटोग्राफ की तरह व्यवहार नहीं करते खोपड़ी से, जो खोपड़ी से दर्पण की तरह का व्यवहार लेते हैं। जिनकी आंखें पकड़ती नहीं, खाली हैं। जिनकी आंखें मिरर लाइक हैं, चीजें बदल जाती हैं और आंखें खाली हो जाती हैं।
लेकिन नहीं, यह मुश्किल है बहुत। हम सब अटक जाते हैं। बूढ़ा आदमी बचपन
की याद करता रहता है। कहता है, वे दिन! वह बूढ़ा हो गया, लेकिन स्मृति में वह बच्चा बना रहता है। वह बूढ़ा हो गया, लेकिन स्मृति में जवान बना रहता है। और उन जगह अटका रहता है जहां वह कभी था। अब वहां नहीं है, अब सब बदल चुका है, सब जा चुका है, सब खो चुका है।
नेपोलियन हार गया, तो उसे सेंट हेलेना के एक छोटे से द्वीप पर कैद कर दिया गया। सम्राट था, तो हाथ में जंजीरें नहीं डाली गईं, द्वीप पर कैद कर दिया। द्वीप के बाहर कहीं जा नहीं सकता था, द्वीप पर पहरा था पूरे पर। लेकिन द्वीप के भीतर घूम सकता था, फिर सकता था, जो भी करना हो कर सकता था।
संगी-साथी दिए थे, डाक्टर दिया था, सब इंतजाम किया था।
दूसरे दिन ही सुबह, आज रात बंद किया गया, दूसरे दिन सुबह अपने डाक्टर
को साथ लिए घूमने निकला है नेपोलियन। एक छोटी सी पगडंडी पर एक घासवाली औरत

घास का गट्ठा लिए चली आती है। रास्ता संकरा है, डाक्टर चिल्ला कर कहता है, ओ घसियारिन, हट जा वहां से! देखती नहीं, कौन आ रहा है--नेपोलियन!
नेपोलियन डाक्टर को कहता है, पागल, तू कल के नेपोलियन का ख्याल कर रहा है। अब नेपोलियन को देख कर कोई भी नहीं हटेगा। हटने की कोई जरूरत भी नहीं है। वह वक्त गया, जब मैं पहाड़ को कहता कि हट जाओ! तो पहाड़ हट जाता। अब हमें हट जाना चाहिए।
नेपोलियन पगडंडी से उतर कर नीचे खड़ा हो जाता है। वह डाक्टर कहता है, क्या कहते हो तुम? क्योंकि डाक्टर को पता नहीं है, सब कुछ बदल गया। लेकिन नेपोलियन का माइंड ज्यादा मिरर लाइक मालूम होता है। वह कहता है, वह बात गई। अब घासवाली के लिए मुझे हट जाना चाहिए। वह वक्त गया, जब मैं सम्राटों को कहता कि हट जाओ! यह दिमाग, यह चित्त की बात, जैसे पीछे सब पुंछ गया। अब नहीं है कुछ। अब हम चीजों को फिर सीधा-साफ देख सकते हैं।
सत्य कोई ऐसी चीज नहीं है कि कहीं रखी है और आप चले जाएंगे और देख लेंगे। इस भूल में मत पड़ना। सत्य है पूरे जीवन का सतत अनुभव। सत्य कोई ऐसी चीज नहीं है कि कहीं हम गए, उठाया परदा और दर्शन कर लिया सत्य का। सत्य का अर्थ हैः पूरे जीवन का सार-संक्षेप। सत्य का अर्थ हैः पूरे जीवन की अनुभूति की उपलब्धि। और पूरे जीवन की अनुभूति की उपलब्धि बहुत डायनेमिक है, स्टेटिक नहीं है। रोज-रोज जानना पड़ता है, रोज-रोज भूल जाना पड़ता है। रोज-रोज जानते-जानते एक क्षण ऐसा आता है कि जीवन के प्रत्यय का बोध हो जाता है कि क्या है जीवन। लेकिन उस जीवन के प्रत्यय के बोध के लिए जरूरी है कि हम जीवन के साथ हों। हम हमेशा जीवन से पीछे होते हैं। हम स्मृति में होते हैं, जीवन सदा आगे होता है।
सुकरात मरने के करीब था, उसको जहर दिया जा रहा था। अब जिस आदमी को जहर मिल रहा है, अगर आपको जहर मिल रहा होता तो आप क्या सोचते? क्या करते? आप पड़े हुए हैं खाट पर और जहर तैयार किया जा रहा है। बस आधी घड़ी में जहर आपको दे दिया जाएगा। आप क्या सोचते उस वक्त? सोचते बचपन की, सोचते जवानी की, सोचते मित्रों की, सोचते उस सब की जो था। बहुत घबड़ाते कि सब छूट जाएगा, सब छूट जाएगा! गया मैं, मरा मैं, अब जिंदगी हाथ से गई!
लेकिन सुकरात? मित्र रो रहे हैं उसके पास बैठ कर, उनकी आंखों से आंसू बंद नहीं होते। तो सुकरात कहता है, किसके लिए रोते हो? किसके लिए रोते हो? तो वे कहते हैं कि तुम्हारे लिए। सुकरात ने कहा कि जो मैं था, जिसके लिए तुम रोते हो, वह तो कभी का जा चुका, वह अब मरेगा नहीं, वह तो मर ही चुका, वह तो अब है ही नहीं। तुम्हारी जो स्मृतियां हैं मेरे संबंध में, वह तो कभी का खो चुका आदमी।
और सुकरात उठ कर बाहर जाता है और जहर पीसने वाले से पूछता है, कितनी देर और?
तो जहर वाला कहता है, पागल हो गए हो? मैं तुम्हारी वजह से धीरे-धीरे पीस रहा हूं। कि इतना अच्छा आदमी, थोड़ी देर और जी ले! तुम क्यों बार-बार पूछते हो? तुम्हारा मतलब क्या है?
तो सुकरात कहता है कि मैं तो जानने को आतुर हूं कि यह मौत क्या है? मैं बिल्कुल तैयार हूं, तुम जहर ले आओ! मैं इस मौत को जानना चाहता हूं, यह मौत क्या है? मेरा मन बिल्कुल तैयार है। मेरा मन बिल्कुल खाली है। मेरे मन में कुछ भी नहीं है जो हो चुका, जो जा चुका। जो हो रहा है, उसको मैं जानना चाहता हूं। तुम जल्दी जहर ले आओ। मैं जान लूं कि यह मौत क्या है?
अब ऐसा आदमी कभी मर नहीं सकता, जो मौत के सत्य को जानने के लिए भी इतनी तैयारी दिखलाता है। लेकिन अधिक लोग मौत को बिना जाने मर जाते हैं। इसीलिए बार-बार जन्मते हैं और बार-बार मरते हैं। अधिक लोग मौत को बिना जाने मर जाते हैं, क्योंकि अधिक लोग जीवन को ही बिना जाने मर जाते हैं। मौत को जानना तो मुश्किल है, जो जीवन को ही नहीं जान पाता है।
जीवन को ही हम नहीं जान पाते हैं, क्योंकि हमारे माइंड का फोकस अतीत में लगा रहता है और जिंदगी हमेशा वर्तमान में है। लोग हमेशा पीछे देखते रहते हैं, और जिंदगी अभी है--हियर एंड नाउ! अभी और यहीं! इसी वक्त! हां, जब बीत जाएगा यह क्षण, तब हम फिर इस पर फोकस लगा लेंगे।

अभी आप मुझे सुन रहे हैं, तब आप और बातें सोच रहे होंगे। और मैं बोल कर गया कि मैंने जो बोला है, वह आप सोचना शुरू कर देंगे। यह अजीब सा मामला है। तब आप, जब मैं बोल रहा था, तब कुछ और सोच रहे थे। सोच रहे थे कि यह आदमी जो बोल रहा है, गीता से मेल खाता है कि नहीं; यह आदमी जो बोल रहा है, हिंदू धर्म के पक्ष में है कि विपक्ष में; यह आदमी जो बोल रहा है, यह ठीक है कि गलत; यह सब आप सोच रहे थे। तब आप चूक गए उससे जो मैं बोल रहा था। और मैं बोल कर यहां से गया तो फिर आप सोचेंगेः इस आदमी ने यह कहा, इस आदमी ने वह कहा, इस आदमी ने यह कहा। तब फिर माइंड पीछे लगा है।
और तब जिंदगी जहां से आती है वहीं से हमारा संपर्क नहीं हो पाता। हम अतीत में अटके रह जाते हैं और जिंदगी अभी है। ऐसा जीवन भर चलता है, हम जीवन भर चूक जाते हैं और नहीं जान पाते कि सत्य क्या है। फिर किताबों में पढ़ते हैं, फिर शास्त्रों से शब्द सीख लेते हैं और उन्हीं शब्दों को सत्य मान लेते हैं।
जीवन से जिन्हें सत्य नहीं मिला, उन्हें शास्त्रों से कैसे मिल सकता है? और जिन्हें जीवन से मिल जाता है, उन्हें शास्त्रों के सत्य की जरूरत क्या है? इतना विराट जीवन हमें सत्य नहीं दिखा पाता, तो किताबें आदमी की हमें सत्य दिखा देंगी?
रवींद्रनाथ ने एक संस्मरण लिखा है। लिखा है कि एक पूर्णिमा की रात मैं एक बजरे पर, एक नाव में एक किताब पढ़ता था। सौंदर्य-शास्त्र पर, एस्थेटिक्स पर एक शास्त्र पढ़ता था।
अब देखें मजा! पूरे चांद की रात है, झील है, सन्नाटा है, नाव है, अकेले हैं। बजाय इसके कि देखें कि सौंदर्य क्या है, पढ़ते हैं सौंदर्य-शास्त्र पर एक किताब! सौंदर्य चारों तरफ बरस रहा है। सौंदर्य पूरे वक्त झर रहा है। लेकिन बजरे में बंद करके द्वार-दरवाजा मोमबत्ती जला कर पढ़ रहे हैं सौंदर्य-शास्त्र की एक किताब। पढ़ रहे हैं सौंदर्य-शास्त्र की किताब में कि सौंदर्य क्या है, डेफिनीशन क्या है सौंदर्य की। और सौंदर्य बरस रहा है बाहर और बुला रहा है कि आओ-आओ, चिल्ला रहा है। लेकिन वे नहीं सुन रहे हैं। क्योंकि किताब पढ़ने वाला जिंदगी को कभी नहीं सुनता। इधर आंख गड़ाए हुए उस मद्दी सी रोशनी में, पीली सी रोशनी में, धुआं उठती मोमबत्ती में पढ़ रहे हैं--सौंदर्य क्या है?
दो बजे रात, थक गई हैं आंखें, किताब बंद कर दी है, फूंक मार कर मोमबत्ती बुझा दी है--और रवींद्रनाथ ने लिखा अपनी डायरी में कि दंग रह गया मैं! जैसे ही मोमबत्ती बुझी--रंध्र-रंध्र से, बजरे के द्वार-द्वार, खिड़की-खिड़की से, चांद की रोशनी भीतर भर आई। नाचने लगी चांद की रोशनी भीतर। मैं हैरान हुआ कि मोमबत्ती की रोशनी की वजह से चांद की रोशनी भीतर नहीं आ पाती! मोमबत्ती बुझी तो चांद भीतर आ गया। जरा-जरा से छेद से भी रोशनी आ गई भीतर। और रवींद्रनाथ ने लिखा है कि मैं भागा हुआ बाहर आया, क्योंकि वह जो छोटी सी रोशनी भीतर आई थी, उसने निमंत्रण दिया कि बाहर न मालूम और क्या होगा!
बाहर आकर देखा तो पूरा चांद सिर पर खड़ा है। सारे आकाश में मौन सन्नाटा है, सारी झील दर्पण बन गई है, सारी झील पर चांद बिखरा हुआ है। सौंदर्य था यहां! रवींद्रनाथ कहने लगे, मैंने अपना सिर ठोंक लिया कि मैं पागल, एक किताब खोल कर मोमबत्ती में पढ़ता था कि सौंदर्य क्या है!
फिर लिखा है कि उस दिन से सौंदर्य की किताब नहीं खोली, क्योंकि सौंदर्य की किताब खुल गई। फिर नहीं पढ़ने गया किताब में कि सौंदर्य कहां है, क्या है। फिर जी लिया सौंदर्य को, और देख लिया सौंदर्य को, और जान लिया सौंदर्य को। फिर नहीं उठाई किताब जो अधूरी रह गई थी, उसे अधूरा ही छोड़ दिया।
जिंदगी है सत्य। सत्य किन्हीं किताबों में नहीं है। सत्य किन्हीं गुरुओं के पास नहीं है। सत्य किन्हीं दुकानों में नहीं है। और सत्य किन्हीं मंदिरों और मस्जिदों में नहीं है। सत्य है जिंदगी में। जीवन ही सत्य है।
लेकिन उसे देखने में वे ही समर्थ हो पाते हैं जो किसी भी तरह का चश्मा, कोई धारणा, कोई कंसेप्ट, कोई अतीत की याददाश्त लेकर जिंदगी के पास नहीं जाते। जो जिंदगी के पास ऐसे जाते हैं जैसे कोरा दर्पण; और खड़े हो जाते हैं

जिंदगी के सामने और जिंदगी के प्रतिफलन को बनने देते हैं अपने भीतर। और पकड़ते नहीं कोई प्रतिफलन; जो बीत जाता है, बीत जाता है। जो आ जाता है उसका स्वागत है, जो चला जाता है उसकी विस्मृति है। और जिनका मन ऐसे दर्पण की तरह जिंदगी को देखता हुआ गुजरता है, प्रतिपल--दुख में, सुख में, प्रेम में, घृणा में, क्रोध में, शांति में, अशांति में, तनाव में, जिंदगी में, मृत्यु में-- जो प्रतिपल दर्पण की तरह गुजरते चले जाते हैं और जीवन की पूरीशृंखला को अनुभव करते हैं, वे जान लेते हैं कि सत्य क्या है।
सिवाय इसके कभी कोई सत्य नहीं जाना गया है। सत्य को जानने का अर्थ हैः स्वयं को दर्पण की तरह बना लेना। और दर्पण की कोई दृष्टि नहीं है। दर्पण यह नहीं कहता कि ऐसे हो जाओ। दर्पण कहता है, जैसे हो हम वैसे ही देख लेंगे, हम नहीं कोई आग्रह करते। दर्पण का कोई आग्रह नहीं है।
इसलिए मैं कहता हूं, सत्याग्रह शब्द बड़ा झूठा शब्द है। सत्य का कोई आग्रह नहीं होता; अनाग्रह वृत्ति में ही सत्य का अनुभव होता है। सत्याग्रह शब्द बड़ा गलत शब्द है, बड़ा उलटा शब्द है। सत्य का आग्रह! सत्य का आग्रह होता ही नहीं। जहां आग्रह है, वहां सत्य नहीं होता। क्योंकि आग्रह का मतलब है कि मैं कहता हूं ऐसा।
सत्य है अनाग्रह। अनाग्रह चित्त, पक्षपातशून्य, अनप्रिज्युडिस्ड, जिसका अपना कोई मत नहीं, कोई पक्ष नहीं, कोई धारणा नहीं; जो कहता है, मैं एक खाली दर्पण हूं; उसके जीवन में उपलब्धि होती है सत्य की।
इस दर्पण की जो मैंने बात कही, इस दर्पण को ही समाधि कहते हैं। इस दर्पण जैसे चित्त का नाम समाधिस्थ चित्त है। और इस समाधिस्थ चित्त के द्वार से जो उपलब्ध हो जाता है, उसका नाम सत्य है।
यह प्रत्येक को अपना ही खोजना पड़ता है, यह उधार नहीं मिलता। यह ट्रांसफरेबल नहीं है, यह कमोडिटी ऐसी नहीं है कि कोई किसी को दे दे। प्रत्येक को स्वयं ही जानना पड़ता है। असत्य दूसरे से मिल सकता है, सत्य स्वयं से ही खोजना पड़ता है। बल्कि सच तो यह है कि दूसरे से जो मिलता है, वह दूसरे से मिलने के कारण असत्य हो जाता है। वह उसके पास सत्य रहा हो, यह हो सकता है। कृष्ण ने जो जाना वह सत्य हो; आपको जैसे ही मिलेगा, असत्य हो जाएगा। वह जो हस्तांतरण है, उसकी प्रक्रिया में ही वह नष्ट हो जाता है। इतना सूक्ष्म है, इतना तरल है, इतना जीवंत है कि देते-देते ही मर जाता है। दिया नहीं जा सकता, सिर्फ लिया जा सकता है। खुद व्यक्ति बने दर्पण की तरह तो जान सकता है, नहीं तो नहीं जान सकता है।
ऐसे ही जैसे कि हम किसी अंधे को प्रकाश के बाबत कुछ कहें। तो हम कह सकते हैं, लेकिन अंधे तक कुछ भी नहीं पहुंचता कि आपने क्या कहा। अंधे की समझ में कुछ भी नहीं आता कि प्रकाश यानी क्या? कैसे आ सकता है! आंख का अनुभव आंख ही देख सकती है। अंधी आंख को आंख का अनुभव नहीं समझाया जा सकता। तो हम इतना कर सकते हैं कि अंधे की आंख के इलाज का उपाय करें। यह तो हो सकता है। आंख वाले अंधे के लिए सहयोगी हो सकते हैं, इलाज की दिशा में। लेकिन प्रकाश का ज्ञान देने की दिशा में सहयोगी नहीं हो सकते।
इसलिए बुद्ध ने एक अदभुत बात कही है। बुद्ध ने कहा, मैं कोई उपदेशक नहीं हूं, एक उपचारक हूं, एक वैद्य हूं। इसलिए बुद्ध से कोई पूछने आता कि सत्य क्या है? तो वे कहते, यह मत पूछो। क्योंकि यह तो कहा नहीं जा सकता, और कहा भी जाए तो समझा नहीं जा सकता, और समझ भी लिया जाए तो हमेशा गलत समझ लिया जाता है। तुम यह मत पूछो कि सत्य क्या है। तुम तो यह पूछो कि आंख क्या है, जिससे सत्य जाना जाता है।
इसलिए जब मुझे आज कहा कि सत्य की खोज पर कुछ कहूं। तो सत्य की कोई खोज नहीं होती; आंख की खोज होती है। प्रकाश की कोई खोज नहीं होती; आंख की खोज होती है। आंख है तो प्रकाश है, आंख नहीं है तो प्रकाश नहीं है। होगा प्रकाश। लेकिन जिसके पास आंख नहीं है, उसके लिए प्रकाश का क्या मतलब है! सारी दुनिया कहे कि प्रकाश है, और मेरे पास आंख नहीं है, सुनूंगा, लेकिन कोई अर्थ नहीं रखती वह बात। इतनी कठिनाई है अंधे आदमी को जिसकी हम कल्पना नहीं कर सकते, क्योंकि हम अंधे नहीं हैं।
अंधे आदमी को प्रकाश तो बहुत दूर, अंधेरा भी दिखाई नहीं पड़ता है। अंधेरा देखने के लिए भी आंख चाहिए। अंधेरा भी आंख का अनुभव है। अंधे आदमी

को अंधेरा भी नहीं दिखता। आप यह मत सोचना कि अंधा आदमी अंधेरे में रहता है। अंधेरा भी प्रकाश का ही अनुभव है। जिसको प्रकाश दिखता है, उसी को अंधेरा भी दिखता है। अंधे आदमी को अंधेरे का भी कोई पता नहीं है। क्योंकि पता होने के लिए आंख चाहिए। अंधेरे के पता होने के लिए भी आंख चाहिए।
तो जिसे अंधेरे का भी पता नहीं है, उसे प्रकाश का क्या हम ज्ञान दे सकते हैं? अगर हम उससे यह कहें कि अंधेरे से उलटा, तो भी कोई मतलब नहीं है। क्योंकि उसे अंधेरे का ही पता नहीं है कि अंधेरा क्या है।
तो जब हम सुनते हैं उन लोगों की बातें, जो कहते हैं कि परमात्मा असीम है; हमें सीमा का ही अनुभव नहीं है, असीम का क्या अनुभव होगा? वे कहते हैं, परमात्मा ज्योतिर्मय है, परमात्मा परम चैतन्य है। हमें पदार्थ का ही अनुभव नहीं है, हमें परम चैतन्य का क्या अनुभव होगा? वे कहते हैं, परमात्मा परम जीवन है। हमें मृत्यु का तक पता नहीं है, परम जीवन का हमें क्या पता होगा?
शब्द रह जाते हैं थोथे। चली हुई कारतूस जैसे होती है, कोई जान नहीं, बस दिखती है कारतूस। वैसे शब्द हमारे हाथ में रह जाते हैं थोथे, बेमानी। उन्हीं शब्दों को लेकर हम लड़ते-झगड़ते रहते हैं, और सोचते हैं कुछ निर्णय हो जाएगा। कितने ही अंधे आपस में लड़ें और तय करें, प्रकाश का कोई निर्णय नहीं होता है। आंख खुलनी चाहिए। और आंख--मिरर लाइक माइंड, एक दर्पण जैसा चित्त, वह है आंख सत्य के लिए। और जिसकी आंख खुल जाती है वह जान लेता है। और जानते ही जीवन दूसरा हो जाता है। सत्य को जानते ही जीवन सत्य हो जाता है। सत्य को बिना जाने जीवन असत्य ही रहता है, चाहे हम कितने ही उपाय करें। इसलिए मैं कहता हूं कि सत्य को पाने के लिए आपका जीवन बदलना व्यर्थ है; आप जीवन बदल ही नहीं सकते सत्य को पाए बिना। सत्य को पाने से जीवन बदलता है। जीवन की बदलाहट से सत्य नहीं मिलता, सत्य के मिलने से जीवन बदलता है। और जो आदमी सत्य को बिना पाए जीवन को बदलने की कोशिश में लगता है, वह कितना ही जीवन को बदले, वह जीवन भी असत्य जीवन ही होता है।
अगर वह प्रेम भी प्रकट करे तो असत्य होगा। अगर वह अहिंसक भी बन जाए तो भीतर हिंसा होगी। अगर वह प्रेमी भी बन जाए तो पीछे वासना होगी, अगर वह ब्रह्मचर्य भी साधे तो चित्त में सेक्स ही चलता रहेगा। सत्य को जाने बिना सारा का सारा जीवन ही असत्य होता है, चाहे हम कुछ भी करें। अंधा आदमी कुछ भी करे, टकराएगा। चाहे बाएं टकराए और चाहे दाएं टकराए, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। चाहे आगे टकराए, चाहे पीछे टकराए, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। अंधा आदमी टकराएगा ही। टकराहट बिल्कुल स्वाभाविक है। आंख वाला आदमी नहीं टकराएगा। नहीं टकराना आंख वाले के लिए उतना ही स्वाभाविक है, जितना अंधे के लिए टकराना।
सत्य की उपलब्धि जीवन का रूपांतरण है, वह जीवन को सत्य कर जाती है। और जीवन जब तक सत्य नहीं है, तब तक आनंद भी नहीं है। असत्य के साथ कोई आनंद नहीं है, अंधेपन के साथ कोई आनंद नहीं है। अंधापन ही दुख है, असत्य ही दुख है।
लेकिन क्या करें फिर सत्य की खोज में?
जीवन को बदलने की बात मैं नहीं करता। जीवन को देखने की दृष्टि बदलने
की बात है। और वह दृष्टि जितनी ताजी, साफ, पक्षपातरहित, दृष्टिमुक्त दृष्टि, शास्त्र-शब्द से मुक्त, अतीत से मुक्त, अभी और यहां जो है उसे देखने की जितनी निर्मलता हम साधते चले जाएं, उतनी ही वह आंख खुलेगी। वह आंख खुलेगी और हम उसे जान लेंगे जो है। जो है, उसी का नाम सत्य है।
ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं, फिर कल और आज कुछ और इस दिशा में बातें
हो सकेंगी।
नहीं; मेरी बातों से लेकिन समझ में नहीं आ जाएगा। मेरी बातें किसी काम
की नहीं हैं बहुत। हां, कुछ इशारे बन सकती हैं। और इशारे छोड़ देने के लिए होते हैं, उन्हें पकड़ा कि वे बेकार हो जाते हैं।
मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

तृषा गई एक बूंद से
छठवां प्रवचन

परमात्मा की अनुभूति

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक मित्र ने पूछा है कि क्या मैंने कभी परमात्मा को देखा है?

परमात्मा के संबंध में हम इस भांति सोचते हैं, जैसे उसे भी देखा जा सकता हो। जो देखा जा सकता है, वह संसार ही रहेगा। परमात्मा कभी भी देखा नहीं जा सकता; जो देख रहा है वह परमात्मा है।
इस बात को थोड़ा समझ लेना जरूरी है।
जो भी दिखाई पड़ता है उसका नाम ही संसार है और जिसको दिखाई पड़ता है उसका नाम परमात्मा है। इसलिए परमात्मा कभी दिखाई नहीं पड़ सकता है।
लेकिन कोई कहता है कि मैंने परमात्मा को देखा। बड़ी भूल कर रहा है। एक
तो परमात्मा दिखाई नहीं पड़ सकता, वह खुद परमात्मा है जिसको दिखाई पड़ता है। दूसरी बात, जहां परमात्मा का अनुभव होता है--दिखाई तो वह पड़ता नहीं, क्योंकि मैं वही हूं, आप वही हैं--लेकिन जब इस स्वयं का अनुभव होता है, तब मैं भी वहां शेष नहीं रह जाता है, वहां मैं भी गिर जाता है।
तो जो कहता है, मैंने परमात्मा को देखा, वह दोहरी भूल कर रहा है। एक तो
वह यह कहता है कि परमात्मा कोई चीज है मुझसे अलग, जो दिखाई पड़ गई। यह झूठ है। दूसरी भूल वह यह कर रहा है कि वह कह रहा है, मैंने देखा। मैं तो बचता नहीं वहां, जहां परमात्मा का अनुभव होता है। इसलिए इससे ज्यादा असत्य कोई बात नहीं हो सकती कि कोई कहे, मैं परमात्मा को देखा हूं।
लेकिन राम और कृष्ण देखे जा सकते हैं, बुद्ध और महावीर देखे जा सकते हैं। सच में ही बुद्ध और महावीर नहीं देखे जाएंगे, न राम और कृष्ण। लेकिन मनुष्य की कल्पना बहुत समर्थ है। कल्पना इतनी समर्थ है कि जो नहीं है, वह भी देखा जा सकता है। अगर कोई ठीक से कल्पना करे, तो प्रतीतियां हो सकती हैं स्वप्नवत, और उसी को लोग ईश्वर का साक्षात्कार समझ लेते हैं।
अगर कोई निरंतर धारणा करे, निरंतर कामना करे, निरंतर कल्पना करे, निरंतर पुकारे और चिल्लाए और रोए, और चौबीस घंटा स्मरण करे--कृष्ण का, कृष्ण का, कृष्ण का, तो चित्त में एक छवि बननी शुरू हो जाएगी। उस छवि को इतना प्रगाढ़ रूप मिल सकता है कि वह छवि बाहर भी दिखाई पड़ने लगे। वह प्रोजेक्शन होगा, वह प्रक्षेपण होगा। वहां कोई होगा नहीं, लेकिन दिखाई पड़ सकता है। और अगर किसी के पास कवि का हृदय हो, तब तो बहुत आसान है। टाल्सटाय का नाम सुना होगा आपने। गांधी जी अपने गुरुओं में एक टाल्सटाय की गिनती भी करते थे। वह बहुत अनूठा आदमी था। कवि हृदय, कल्पनाशील। एक रात उसे मास्को के एक ब्रिज के ऊपर, पुल के ऊपर पकड़ा गया। आधी रात, अंधेरे में खड़ा था पुल के ऊपर। पुलिसवाला जो वहां पहरे पर था, उसने पूछा कि महाशय ऐसे कैसे खड़े हैं यहां?
वह ब्रिज ऐसा था कि वहां अक्सर लोग आत्महत्या करते थे। तो एक सिपाही तैनात था इसीलिए कि वहां कोई आत्महत्या न कर सके। तो रात दो बजे टाल्सटाय को वहां देख कर उस सिपाही ने पकड़ा और कहा, आप यहां कैसे आए?
टाल्सटाय की आंखों से आंसू बह रहे हैं। टाल्सटाय ने कहा कि अब तुम देर करके आए, जिसे आत्महत्या करनी थी उसने कर ली है। मैं तो सिर्फ उसके लिए खड़ा होकर रो रहा हूं। वह सिपाही तो घबड़ा गया, वह था ड्यूटी पर तैनात। कौन गिर गया? कब गिर गया? उसने टाल्सटाय से पूछा। लेकिन टाल्सटाय रोए चला जा रहा है। वह टाल्सटाय को पकड़ कर थाने ले गया कि पूरी रिपोर्ट आप लिखवा दें--कौन था? क्या था? रास्ते में टाल्सटाय से उसने पूछा, कौन था? तो टाल्सटाय ने कहा, एक स्त्री थी। नाम बताया, उसकी मां का नाम, उसके पिता का नाम, सब जरूरी सब बताया।

थाने में पहुंचा। थाने में जो इंसपेक्टर था वह पहचानता था। उसने कहा, टाल्सटाय को ले आए! और टाल्सटाय शाही घराने के लोगों में से एक था। उसने टाल्सटाय को पूछा कि क्या कहते हैं आप, कौन मर गया?
थाने में पहुंच कर होश आकर टाल्सटाय ने कहा, क्षमा करना, भूल हो गई। मैं एक उपन्यास लिख रहा हूं। उस उपन्यास में एक पात्रा है। वह पात्रा, आज की रात कहानी वहां पहुंचती है कि वह जाकर वोल्गा में कूद कर आत्महत्या कर लेती है। मैं भूल गया, किताब बंद करके मैं वहां पहुंच गया जहां कहानी में वह आत्महत्या करती है। मैं वहीं खड़ा उसके लिए रोता था कि इस आदमी ने पकड़ लिया।
पर वह सिपाही कहने लगा, तुमने कहा उसके पिता का नाम, मां का नाम।
उसने कहा, वह सब ठीक है, कहानी में वही उसके पिता का नाम है, वही उसकी मां का नाम है।
लेकिन वे सब कहने लगे कि आप आदमी कैसे हैं, आप इतना धोखा खा गए?
टाल्सटाय ने कहा, बहुत बार ऐसा हो चुका है। कल्पना के चित्र इतने सजीव मालूम पड़ते हैं मुझे कि मैं कई बार भूल जाता हूं। बल्कि सच तो यह है कि असली आदमी इतने सजीव नहीं मालूम पड़ते, जितनी मेरी कल्पना के।
टाल्सटाय ने अपना पैर बताया, जिसमें बड़ी चोट थी, निशान था। और उसने कहा कि एक बार मैं लाइब्रेरी की सीढ़ियां चढ़ रहा था। और मेरे साथ एक स्त्री चढ़ रही थी। वह भी मेरी पात्र थी किसी कहानी की, थी नहीं। लेकिन वह उससे बातचीत करता हुआ ऊपर चढ़ रहा था। संकरी जगह थी, और ऊपर से एक सज्जन उतर रहे थे। मैंने सोचा कहीं स्त्री को धक्का न लग जाए, तो मैं बचा। बचने की कोशिश में उन सीढ़ियों से नीचे गिर गया। जब सीढ़ियों से नीचे गिर गया, उन सज्जन ने मुझसे आकर कहा, पागल हो गए हो? क्यों बचे तुम? दो के लायक काफी जगह थी! टाल्सटाय ने कहा, वह तो अब मुझे भी समझ में आ गया कि दो थे, पैर टूटने
से बुद्धि आई। लेकिन जब तक मैं चढ़ रहा था, मुझे ख्याल था हम तीन हैं, एक औरत मेरे साथ है। और उसको धक्का न लग जाए, इसलिए मैंने बचने की कोशिश की।
अब ऐसे व्यक्तियों को भगवान का साक्षात्कार करना कितना सरल हो सकता है। कवि हृदय चाहिए, कल्पनाशील मन चाहिए। और फिर ऐसी तरकीबें हैं कि कल्पनाशील मन को और कल्पनाशील बनाया जा सकता है। जैसे उपवास करके! अगर लंबा उपवास किया जाए, तो मन और भी कल्पना-प्रवीण, इमेजिनेटिव हो जाता है। कभी आपको अगर बुखार में लंघन करनी पड़ी हो तो आपको पता होगा कि अगर लंबी लंघन करनी पड़ी हो, भूखा रहना पड़ा हो बुखार में, कमजोरी बढ़ गई हो, भूख से रहना पड़ा हो--तो कभी खाट आकाश में उड़ती हुई मालूम पड़ेगी, कभी देवी-देवता दिखेंगे, कभी भूत-प्रेत, वे सब साथ दिखाई पड़ेंगे।
वह कमजोर चित्त को बहुत आसान है। इसीलिए लोग लंबे उपवास करके चित्त
को कमजोर करते हैं कि जो भी कल्पना करना चाहें वे कर सकें। लंबे उपवासों के द्वारा और कुछ भी नहीं होता, सिवाय इसके कि चित्त कमजोर होता है। और कमजोर चित्त तर्क करने में असमर्थ हो जाता है। कमजोर चित्त जांचने में कमजोर हो जाता है कि क्या सही है, क्या झूठ है। कमजोर चित्त सपना देखने में सरल हो जाता है। और फिर जो भी आपकी कल्पना हो वह देखा जा सकता है।
उपवास करिए और एकांत में चले जाइए। एकांत में जाना भी कल्पना के लिए बड़ा सहयोगी है। कभी ख्याल किया है, अकेले जंगल में गुजर रहे हों तो पत्ता भी खड़कता है तो लगता है कौन आ गया! अंधेरी रात में अकेले हों तो जरा सी चोट, आवाज होती है, और लगता है कि कोई आ गया! भूत-प्रेत दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं। जिस ढंग से भूत-प्रेत दिखते हैं, उसी ढंग से भगवान भी देखे जाते हैं, फर्क ज्यादा नहीं है। एकांत में चित्त संवेदनशील हो जाता है। भीड़ में चित्त उतना संवेदनशील नहीं होता, क्योंकि चारों तरफ लोग हैं और उनकी मौजूदगी आपके चित्त को ज्यादा संवेदनशील नहीं होने देती। लेकिन एकांत में चले जाइए, जंगल में चले जाइए, हिमालय पर चले जाइए। फिर वहां जो भी कल्पना करनी हो वह आप कर सकते हैं।
और फिर तीसरी विधि है कि खुद को आत्म-सम्मोहित करिए। रखिए कृष्ण की मूर्ति सामने और उसको ही देखिए, उसके साथ ही जागिए, उसके साथ ही सोइए, उससे बातें करिए, हाथ जोड़िए, प्रार्थना करिए। ऐसा वर्षों तक करते रहिए, करते रहिए। मन उस मूर्ति को पकड़ लेगा। फिर जो मन मूर्ति को पकड़ लेता है, फिर वह

उस मूर्ति को बाहर प्रोजेक्ट भी करता है, वह उसको बाहर निर्मित भी करता है। उसी का दर्शन हो जाएगा। उसको चाहें तो भगवान का दर्शन कह लें। लेकिन इसे मैं भगवान का दर्शन नहीं कहता हूं।
मेरी समझ में भगवान कोई व्यक्ति नहीं है कि जिसका दर्शन हो सके। भगवान है जीवन की समग्र शक्ति का नाम। भगवान है अस्तित्व का नाम। भगवान है होने का नाम। जो भी है वही है। लेकिन उसे जानने का जो मार्ग है वह देखना नहीं है, उसे जानने का मार्ग अनुभव करना है। देखते हम उसे हैं जो अन्य है, अनुभव हम उसे करते हैं जो हम स्वयं हैं। अन्य को देखा जा सकता है। लेकिन अन्य के और स्वयं के बीच में सदा फासला है, दूरी है।
मैं आपको देख रहा हूं, तो आपके और मेरे बीच एक दूरी है। देखने में सदा दूरी है। देखने में कभी भी निकटता नहीं होती। चाहे हम कितने ही निकट खड़े हो जाएं, देखने में दूरी है, दर्शन में फासला है, डिस्टेंस है। और परमात्मा को दूरी से नहीं जाना जा सकता, परमात्मा को तो उसके साथ एक होकर ही जाना जा सकता है।
इसलिए परमात्मा का दर्शन नहीं होता, अनुभूति होती है। और अनुभूति का मतलब? आपने कभी दर्द का दर्शन किया है? पैर में चोट लगी है, उसका आपने कभी दर्शन किया है? नहीं; उसकी अनुभूति की है, दर्शन कभी नहीं किया। आपने कभी प्रेम का दर्शन किया है? प्रेम की अनुभूति की है, दर्शन कभी नहीं किया। जितने गहरे में कोई बात होगी, जितने निकट होगी, उसका हम अनुभव करते हैं। और परमात्मा सर्वाधिक निकट है, हम परमात्मा में ही हैं, परमात्मा ही हैं। इसलिए परमात्मा का कोई दर्शन नहीं होता, अनुभूति होती है।
और अनुभूति तभी होती है जब मेरा यह ख्याल मिट जाए कि मैं हूं। क्योंकि
यह मैं अनुभूति में सबसे बड़ी बाधा है। जब यह मैं मिट जाता है और परम शांति होती है भीतर... क्योंकि जब तक मैं है, तब तक शांति नहीं। मैं के अतिरिक्त और कोई अशांति नहीं है, मैं ही अशांति का सूत्र है। जितने जोर से मैं, और मैं, और मैं चल रहा है, उतना ही चित्त अशांत है। जिस दिन मैं शांत हो जाता है, उस दिन हम उसे जान पाते हैं जो भीतर छिपा है। इस भीतर जो छिपा है, उसे जानना ही परमात्मा का अनुभव है। निश्चित ही, जो अपने भीतर इसे जान लेता है, वह यह भी जान लेता है कि वही फैला है सब में। लेकिन वह भी दर्शन नहीं है, वह भी भीतर से ही अनुभव है।
जैसे कोई वृक्ष का एक पत्ता हवा में हिल रहा है। शायद वह पत्ता समझता
हो कि मैं हूं। और शायद वह पत्ता यह भी सोचता हो कि उसके निकट के पत्ते अन्य हैं, भिन्न हैं, दूसरे हैं। क्योंकि उस पत्ते को वे पत्ते दिखाई पड़ रहे हैं। सोचता होगा ये अन्य हैं, दूसरे हैं, इनके और मेरे बीच फासला है। निश्चित ही एक पत्ते में और उसी वृक्ष के दूसरे पत्ते में फासला है। वह पत्ता कहता होगा, मैं मैं हूं, तू तू है।
लेकिन पत्ता अगर अपने भीतर प्रवेश करे थोड़ा, तो अपने भीतर प्रवेश करने से वह शाखा में प्रवेश कर जाएगा, जिसमें सारे पत्ते जुड़े हैं। और तब वह जानेगा, अरे, मैं सोचता था मैं मैं हूं! मैं मैं नहीं हूं, यह पूरी शाखा मैं हूं, ये सारे पत्ते मैं हूं। और अगर और भीतर प्रवेश करे, तो पता चलेगा, नीचे की जड़ पर सारी शाखाएं भी जुड़ी हैं! तब वह समझेगा कि न केवल मैं, मैं और पत्ते, और शाखा; दूसरी शाखाएं भी मैं हूं। और अगर वह और नीचे प्रवेश करे, तो पाएगा कि जड़ें पृथ्वी से जुड़ी हैं। और पृथ्वी के बिना जड़ें नहीं हो सकती हैं। तब शायद वह समझे कि पृथ्वी भी मैं हूं। और जिस पृथ्वी से मेरा वृक्ष जुड़ा है, उसी से दूसरे वृक्ष भी जुड़े हैं। तब वह शायद समझे कि सारे वृक्ष मैं हूं। और अगर वह गहरे से गहरा प्रवेश करता जाए, तो शायद उसे पता चलेः सूरज अगर डूब जाए, अस्त हो जाए सदा के लिए, तो वृक्ष भी नष्ट हो जाएगा। सूरज की किरणों से बंधा है वृक्ष। तब शायद वह जाने कि सूरज भी मैं हूं। और अगर वह इस तरह प्रवेश करता ही चला जाए, करता ही चला जाए, तो एक पत्ता यह जानेगा कि ब्रह्मांड मैं हूं। क्योंकि इस पूरे जगत में, उस पत्ते के होने के लिए सारे जगत की जरूरत है। अगर यह सारे जगत में कुछ भी कमी हो तो वह पत्ता नहीं हो सकेगा। एक पत्ता है, क्योंकि पूरा ब्रह्मांड है।
लेकिन यह पत्ता जितने भीतर प्रवेश करे, उतना ही पता चलेगा। बाहर देखे
तो यह कभी पता नहीं चलेगा। पता चलेगाः दूसरे पत्ते दूसरे हैं, दूसरे वृक्ष

दूसरे हैं। कहां चांद-तारे! कहां सूरज! यह सब फासला है। बाहर से देखने पर फासला है, भीतर से देखने पर फासला मिट जाता है। क्योंकि भीतर से सब जुड़ा है।
अपने भीतर उतर कर स्वयं को जान लेने से ही परमात्मा के जानने का द्वार खुलता है। इसलिए यह मत पूछिए कि मैंने कभी परमात्मा को देखा या नहीं देखा। किसी ने कभी नहीं देखा। हां, जाना है। और जान कोई भी सकता है। क्योंकि हम वही हैं। जानने के लिए कहीं दूर नहीं जाना है--किसी तीर्थ नहीं, किसी मंदिर नहीं, किसी हिमालय पर नहीं। जानने के लिए जाना है अपने ही भीतर।
एक छोटी सी कहानी, फिर मैं दूसरा प्रश्न लूं।
मैंने सुना है कि जब सृष्टि बनी और ईश्वर ने सारी चीजें बनाईं, बड़ी अदभुत कहानी है। और जब उसने आदमी बनाया, तो वह अपने देवताओं से पूछने लगा कि यह आदमी मुझे बड़ा शिकायती मालूम पड़ता है। यह बन तो गया, लेकिन यह छोटी- छोटी शिकायत लेकर मेरे द्वार पर खड़ा हो जाएगा। मैंने वृक्ष बनाए, वृक्ष कभी शिकायत लेकर नहीं आए, न वृक्षों ने कभी प्रार्थना की और न शिकायत की। मैंने पशु बनाए, पशु कभी मेरे द्वार पर नहीं आए। पक्षी बनाए, कभी पक्षी मेरे द्वार पर नहीं आए। चांद-तारे बनाए। लेकिन यह आदमी मुसीबत का घर है। यह सुबह-शाम चौबीस घंटे द्वार पर दस्तक देगा, कहेगा कि यह करो, यह करो; यह होना चाहिए, वह नहीं होना चाहिए। इस आदमी से बचने का मुझे कोई उपाय चाहिए।
मैं कहां छिप जाऊं?
तो किसी देवता ने कहा, हिमालय पर छिप जाइए।
तो उसने कहा, तुम्हें पता नहीं है, बहुत जल्द वह वक्त आएगा कि हिलेरी
और तेनसिंग हिमालय पर चढ़ जाएंगे।
तो किसी ने कहा, पैसिफिक महासागर में छिप जाइए।
तो उसने कहा, वह भी कुछ काम नहीं चलेगा। जल्दी ही अमेरिकी वैज्ञानिक वहां भी उतर जाएंगे।
किसी ने कहा, चांद-तारे पर बैठ जाइए।
उसने कहा, उससे भी कुछ होने वाला नहीं है। जरा ही समय बीतेगा और चांद-तारों पर आदमी पहुंच जाएगा।
तब एक बूढ़े देवता ने उसके कान में कहा, एक ही रास्ता है, आप आदमी के भीतर छिप जाइए। वहां आदमी कभी नहीं जाएगा।
और ईश्वर ने बात मान ली और आदमी के भीतर छिप गया। और आदमी हिमालय पर भी पहुंच गया, चांद-तारों पर भी पहुंच जाएगा, पैसिफिक में भी पहुंच गया। एक जगह भर छूट गई है जहां आदमी नहीं पहुंचता, वह खुद के भीतर।
और धार्मिक आदमी भी कहता है, ईश्वर कहां है? यह सवाल ही अधार्मिक है।
और धार्मिक आदमी भी कहता है, ईश्वर के दर्शन कैसे करूं? यह सवाल ही नास्तिक का है। आस्तिक यह पूछता ही नहीं। आस्तिक यह पूछता है, मैं कौन हूं? और जिस दिन जान लेता है, उस दिन जान लेता है कि मैं नहीं हूं, परमात्मा है।
लेकिन नास्तिक भी आस्तिकों की शक्लों में बैठे हुए हैं। मंदिर में मूर्ति बनाते हैं। ये सारी मूर्तियां नास्तिकों ने बनाई हैं। कोई आस्तिक कभी परमात्मा की मूर्ति नहीं बना सकता। क्योंकि आस्तिक जानता है कि उसकी मूर्ति बन ही नहीं सकती। कोई आस्तिक कभी परमात्मा की न मूर्ति बना सकता है और न कोई आस्तिक परमात्मा की मूर्ति कभी तोड़ सकता है। क्योंकि वे दोनों नासमझियां हैं।
लेकिन दो तरह के आस्तिक हैं दुनिया मेंः एक मूर्ति बनाने वाले, एक मूर्ति तोड़ने वाले। लेकिन दोनों मूर्ति को मानते बहुत हैं। एक पूजने के लिए मानता है, एक तोड़ने के लिए मानता है। लेकिन दोनों मूर्ति से बेचैन बहुत होते हैं। ये सब नास्तिकों की कतारें हैं, जो भूल से अपने को आस्तिक समझ रहे हैं।
आस्तिक वह है जो कहता है, सभी मूर्तियां उसकी हैं। इसलिए उसकी मूर्ति बनाने की और क्या जरूरत है? इतनी मूर्तियों में वह नहीं दिखाई पड़ता, तुम और एक बना कर पत्थर की बिठा कर उसको देखोगे। सब कुछ वही है। तो आस्तिक मंदिर नहीं बना सकता; क्योंकि मंदिर नास्तिकता का सबूत है। नास्तिक मंदिर बनाएगा, वह कहेगा, यहां भगवान है। यहां भगवान का मतलब होता है, और शेष सब

जगह नहीं है। जो आस्तिक है वह कहता है, जो भी है मंदिर है। जो आस्तिक है वह कहता है, कण-कण तीर्थ है। जो आस्तिक है वह कहता है, वही है, उसके सिवाय कुछ भी नहीं है।
और लेकिन यह कहने वाले का मतलब यह नहीं है कि कहीं अंधेरे में भगवान
से उसका मिलना हो गया है। कहीं नमस्कार, जोड़ कर हाथ नमस्कार हो रही है। ऐसा कुछ भी नहीं है। इसका कुल मतलब इतना है कि वह अपने भीतर उतरा है, और मैं मिट गया है, और वह द्वार खुल गया है जहां से संपूर्ण अस्तित्व का साक्षात्कार हो जाता है।
परमात्मा का अर्थ हैः अस्तित्व का साक्षात्कार। परमात्मा का साक्षात्कार नहीं; अस्तित्व का! और अस्तित्व का साक्षात्कार दर्शन नहीं है, अस्तित्व का साक्षात्कार अनुभूति है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि आजकल समाज नीचे गिरता जा रहा है, अनैतिक होता चला जा रहा है, अनाचार बढ़ रहा है, भ्रष्टाचार बढ़ रहा है। तो इस समाज को ऊंचा उठाने के लिए क्या किया जाए?

इसमें दो-तीन बातें समझ लेनी जरूरी हैं।
पहली तो बातः यह गलत है कहना कि आजकल समाज नीचे गिरता जा रहा है। इससे ऐसा भ्रम पैदा होता है कि पहले समाज ऊंचा था। समाज ऊंचा कभी नहीं था। कभी नहीं रहा। और यह ध्यान रहे, ऊंचाई से नीचे की तरफ जाना होता ही नहीं है। ऊंचाई से नीचे की तरफ जाने जैसी घटना घटती ही नहीं है। हां, धोखे की ऊंचाई हो, तो हो जाता है। कोई मनुष्य कभी भी ऊंचाई से नीचाई की तरफ नहीं जाता है। हां, धोखे की ऊंचाई हो, तो हो सकता है। और जब कोई नीचे चला जाए तो समझ लेना चाहिए--जिसे हमने ऊंचाई समझी थी वह ऊंचाई नहीं थी, सिर्फ धोखा था।
तो पहली तो बात यह कि मनुष्य का समाज कभी भी ऊंचा नहीं रहा। कुछ मनुष्य ऊंचे रहे हैं, समाज कभी ऊंचा नहीं रहा। कुछ मनुष्यों की ऊंचाई के कारण हमें यह भ्रम पैदा हुआ कि सारा समाज ऊंचा हो गया।
इस भ्रम का टूट जाना उचित है, तो ही हम समाज को ऊंचा करने का रास्ता खोज सकते हैं। और अगर हम यह मानते रहें कि पहले समाज ऊंचा था, अब नीचे हो गया, तो चूंकि यह मानना ही बुनियादी रूप से गलत है, इसके आधार पर हम जो भी करेंगे, वह गलत होगा।
होता क्या है, इतिहास में बड़ी भूलें हो जाती हैं। और बुनियादी भूलें
हो जाती हैं, जिनका फिर पता भी नहीं चलता। जैसे अभी, इन पचास सालों में हिंदुस्तान में जितने लोग पैदा हुए, इनमें से गांधी का नाम हजारों साल तक याद रहेगा। पांच हजार साल भी गांधी का नाम शेष रहेगा। न मुझे कोई याद करेगा, न आपको, न इन पचास वर्षों में जितने लोग पैदा हुए किसी की याद रह जाएगी। लेकिन गांधी का नाम टिकेगा, बचेगा। पांच हजार साल बाद लोग कहेंगे कि गांधी जैसा आदमी जिस जमाने में पैदा हुआ, वह जमाना कितना ऊंचा था! कितने ऊंचे लोग थे! गांधी के आधार पर हम सब के संबंध में वे सोचेंगे और कहेंगे, कितने ऊंचे लोग थे! हम तो मिट जाएंगे, धूल हो जाएंगे। गांधी का नाम रह जाएगा, गांधी मापदंड बन जाएंगे।
और गांधी और हममें कोई भी संबंध नहीं, हम बिल्कुल उलटे आदमी हैं। गांधी से हमारा क्या लेना-देना! लेकिन गांधी हमारे प्रतिनिधि नहीं हैं, वे हमारे रिप्रेजेंटेटिव भी नहीं हैं। सच तो बात यह है कि गांधी हमारे बिल्कुल ही उलटे प्रतिनिधि हैं, जैसे हम नहीं हैं वैसे वे हैं। लेकिन वे हमारे प्रतिनिधि बन कर इतिहास में याद रह जाएंगे। हम तो भूल जाएंगे, वे याद रह जाएंगे। और पांच हजार साल बाद लोग कहेंगे, गांधी का युग कितना अदभुत था! गांधी को देख कर वे सोचेंगे हमारे बाबत। वह सोचना बिल्कुल झूठा होगा।
ऐसे ही राम की याद रह गई है, बुद्ध की याद रह गई है, महावीर की याद रह गई है। उस जमाने के लोग भूल गए हैं। राम को देख कर हम कहते हैं, आह! कैसे अदभुत लोग थे! राम का युग, राम-राज्य!
झूठी हैं ये बातें। आदमी नहीं था बड़ा; कुछ आदमी बड़े हुए हैं इतिहास में, समाज बड़ा नहीं हो पाया। और कुछ आदमी चमकते हुए सितारों की तरह दिखाई

पड़ते हैं पीछे और हम उनके आधार पर पूरे जमाने को चमकता हुआ मान लेते हैं। यहां बिल्कुल भूल हो जाती है। बल्कि सच्चाई तो यह है कि अगर समाज बहुत बड़ा हो तो महापुरुष पैदा ही नहीं हो सकते हैं, महापुरुष हमेशा छोटे समाज में पैदा होते हैं।
जैसे स्कूल का शिक्षक होता है, वह काले बोर्ड पर सफेद खड़िया से लिखता है, सफेद दीवाल पर नहीं लिखता। क्योंकि सफेद दीवाल पर लिख तो सकते हो, लेकिन दिखाई नहीं पड़ेगा। सफेद दीवाल है तो सफेद खड़िया का लिखा हुआ दिखाई कैसे पड़ेगा? सफेद खड़िया चमक कर दिखाई पड़ती है काले बोर्ड पर।
समाज जितना काला होता है, महापुरुष उतने ही चमकते हुए दिखाई पड़ते हैं। अगर समाज महान हो तो महापुरुष का पता लगाना मुश्किल है। असंभव है। बिल्कुल असंभव है। अगर गांधी जैसे सौ, दो सौ लोग भी मौजूद हों, तो मोहनदास करमचंद गांधी कहां पैदा हुए, कोई फिकर करेगा पोरबंदर की? खो जाएंगे। लेकिन नहीं खोते हैं, क्योंकि पूरा समाज हीन है। और उस हीन काले तख्ते पर जरा सी भी चमकती हुई लकीर हजारों वर्ष तक दिखाई पड़ती रहेगी।
अगर हम पीछे लौट कर देखें, दस-बीस नाम याद आते हैं। वह क्यों? क्योंकि समाज बिल्कुल काले तख्ते की तरह साबित हुआ है। उसमें वे चमकते हुए नाम दिखाई पड़ते रहते हैं। और फिर उन चमकते हुए नामों के अनुसार हम पूरे समाज का निर्णय लेते हैं, जो कि बिल्कुल ही इल्लाजिकल है, बिल्कुल तर्कशून्य है। महापुरुष पैदा हुए हैं, महान समाज पैदा नहीं हुआ। और यह भी ध्यान रहे, जिस दिन महान समाज पैदा होगा, उस दिन महापुरुष इतनी आसानी से नहीं पहचाने जा सकेंगे।
दूसरी बातः अतीत, बीता हुआ, जो हो चुका, उसके दुखद स्मरण तो भूल जाते हैं, सुखद स्मरण शेष रह जाते हैं। अगर आप अपनी जिंदगी में लौट कर देखें, तो आपको दुखद बातें तो भूल गईं--भूल क्या गईं, आपने कोशिश करके उनको भुलाया भी है--सुखद बातें याद रह गईं।
यह बहुत मजेदार बात है मनुष्य के चित्त की कि जब दुख बीतता है तो दुख बहुत गहरा होकर दिखाई पड़ता है, और जब सुख बीतता है तो सुख का पता भी नहीं चलता। सुख मौजूद जब होता है तो पता नहीं चलता; दुख जब मौजूद होता है तो पता चलता है। और जब दुख बीत जाता है तो भूल जाता है; और जब सुख बीत जाता है तो याद रह जाता है। सुख को हम संजो कर रख लेते हैं अपने मन में कि ये-ये सुख की बातें घटी हैं जिंदगी में। और उन्हीं की याद करते रहते हैं। दुख को विस्मरण कर देते हैं, सुख को याद करते हैं। इसलिए पीछे लौट कर देखने पर ऐसा लगता है कि जिंदगी बड़ी सुखद थी। जब गुजरे थे उसी वक्त से तो इतना सुखद नहीं था
एक छोटे से बच्चे से पूछो कि बचपन कितना सुखद है? बच्चे बहुत जल्दी जवान हो जाना चाहते हैं, बचपन से छुटकारा चाहते हैं। लेकिन बूढ़े कहते हैं, बचपन बड़ा सुखद था। बच्चे बहुत जल्दी में रहते हैं कि कब जवान हो जाएं। क्योंकि जवान आदमी शानदार दिखाई पड़ता है। बच्चों को कोई भी सुख नहीं है। स्कूल में शिक्षक डांटता है, घर में मां पीछे पड़ी है, बाप पीछे पड़ा है, जिंदगी एक मुसीबत है, परीक्षा है, यह है, वह है, सब है। कोई सुख नहीं है बच्चे को। लेकिन बूढ़े आदमी को बचपन के सुख याद आते हैं। बच्चे को बिल्कुल नहीं मालूम पड़ते कि कोई सुख हैं। कोई बच्चा नहीं कहेगा कि मैं सुखी हूं। लेकिन सब बूढ़े कहते हैं कि जब मैं बच्चा था तो बहुत सुखी था।
यह तथ्यगत नहीं है, यह फैक्चुअल नहीं है, यह सच्चाई नहीं है। जब जिंदगी गुजरती है तो दुखपूर्ण मालूम पड़ती है; जब बीत जाते हैं दिन तो सुख की सौरभ बाकी रह जाती है, दुख भूल जाते हैं। बस सुख की कथा याद रह जाती है। और जो व्यक्ति के साथ होता है वही समाज के साथ होता है। अतीत स्वर्णयुग मालूम पड़ता है। बहुत सुंदर था जो बीत गया, जो है वह दुखद मालूम पड़ता है। हर पीढ़ी यह कहती है कि अब जमाना बिगड़ गया, पहले जमाना अच्छा था। पिछली पीढ़ी भी यही कहती थी। उससे पिछली पीढ़ी भी यही कहती थी। लौटते चले जाओ पीछे, हमेशा हर पीढ़ी ने यह कहा है कि वह जमाना और था जो हमने देखा है, अब सब बिगड़ गया। और आप हैरान होंगे, दुनिया में एक भी किताब ऐसी नहीं है जिसमें यह लिखा हो कि आजकल का जमाना ठीक है। हर किताब में यह लिखा है कि पहले का जमाना ठीक था। पुरानी से पुरानी किताब में भी यही लिखा हुआ है। चीन में छह

हजार वर्ष पुरानी किताब मिली है। उस किताब की भूमिका में लिखा है कि धन्य हैं वे लोग जो पहले हुए, अब तो जमाना बिगड़ गया।
छह हजार साल पुरानी किताब भी यही कहती है कि पहले सब अच्छा था, अब बिगड़ गया! यह पहले कब था? यह था भी कि यह साइकोलाजिकल इल्यूजन है? यह कोई मानसिक धोखा है कि कभी था पहले का युग? प्राचीन से प्राचीन ग्रंथ भी और पहले की बात करते हैं, कि और पहले सब ठीक था।
नहीं; इसमें मानसिक भ्रम है। याददाश्त गुजरते-गुजरते सुखद बाकी रह जाती है, दुखद भूल जाता है। फिर उस सुख को ही संजो कर हम बैठ जाते हैं, वह हमारी धरोहर बन जाती है। बस वह हमारे चित्त की संपत्ति हो जाती है, फिर उसी को हम संजोते रहते हैं। और फिर यह जो भाव बन जाए भीतर, तो फिर जो भी मौजूद है वह बुरा दिखाई पड़ने लगता है। वह उतना बुरा नहीं होता जितना दिखाई पड़ता है। वह जो स्मृति का हमने सुख बना रखा है, उसकी तुलना में बुरा दिखाई पड़ने लगता है।
तो पहली तो बात यह समझ लेनी जरूरी है कि दुनिया कभी अच्छी थी, समाज अच्छा था, यह भ्रम है। और यह समझ लेना इसलिए जरूरी है कि अगर समाज को अच्छा बनाना है तो पुरानी कोई तरकीबें काम नहीं करेंगी, क्योंकि वे तरकीबें काम में लाई जा चुकीं और समाज अच्छा नहीं हो सका।
जैसा गांधी जी कहते हैं कि राम-राज्य ले आओ। यह पीछे लौट चलने की दलील है। पीछे लौट चलने से कोई हित नहीं है। अगर राम-राज्य अच्छा होता तो हम आगे आते ही नहीं, हम वहीं रुक जाते। वह अच्छा नहीं था, उसे छोड़ना पड़ा। वह छूटा, उससे हम पार हो गए। आगे जा सकते हैं हम, पीछे नहीं लौट सकते। आगे ही जाने का उपाय है, पीछे लौटने का उपाय भी नहीं है। लेकिन जो लोग यह मान लेते हैं कि पहले अच्छा था, बस फिर वे निश्चिंतता से पहले के गुणगान करने लगते हैं। और कहते हैं कि पहले जैसा समाज बनाओ, वर्ण बनाओ, आश्रम बनाओ। पहले जैसा ब्राह्मण को आदर दो, पहले जैसे मां-बाप की पूजा करो, अतिथि को देवता समझो, पहले जैसा सब करो। तो फिर समाज अच्छा हो जाएगा।
जब वह सब किया जाता था, तब भी समाज अच्छा नहीं था। समाज अच्छा था ही नहीं आज तक! क्योंकि समाज कैसे अच्छा हो, इसके सूत्र ही नहीं खोजे जा सके। लेकिन आगे समाज अच्छा हो सकता है। मेरी दृष्टि पीछे की तरफ नहीं, आगे की तरफ है। मैं आप से यह कहता हूं, आगे समाज अच्छा हो सकता है। लेकिन उसके लिए हमें बुनियादी चिंतन करना पड़ेगा।
हमारे चिंतन की प्रक्रिया ही झूठी और असत्य पर खड़ी है।
जैसेः हम कहते हैं, चोरी है; और हम चोरी को गाली देते हैं और चोरी बढ़ती
जा रही है। लेकिन कोई भी यह नहीं कहता कि चोरी समाज में क्यों है? और ऐसा कोई जमाना था जब चोरी नहीं थी?
कोई जमाना ऐसा नहीं था। क्योंकि अगर ऐसा कोई जमाना होता तो पुराने से पुराने शिक्षक और तीर्थंकर और अवतार लोगों को समझाते हैं कि चोरी करना पाप है, चोरी मत करना। किसको समझाते हैं? बुद्ध यही समझाते हैं, महावीर यही समझाते हैं, जीसस यही समझाते हैं--चोरी मत करना, चोरी पाप है। क्या उन लोगों को समझाते हैं जो चोरी करते ही नहीं थे? इनका दिमाग खराब था? यह चोरों को ही समझाने वाली बात है कि चोरी मत करना। और जब सुबह से शाम तक यही- यही समझाते हैं, तो इसका मतलब साफ है कि चोर काफी रहे होंगे। नहीं तो एकाध दफे कहते, मामला खतम हो जाता।
अगर बुद्ध के वचन उठा कर देखें, तो एक दिन ऐसा नहीं जिस दिन वे न समझाते हों कि चोरी मत करो, हिंसा मत करो, दूसरी स्त्री की तरफ बुरी नजर से मत देखो। ये सारी की सारी बातें रोज--झूठ मत बोलो, बेईमानी मत करो, भ्रष्टाचार मत करो--ये ही सब समझा रहे हैं बुद्ध सुबह से लेकर शाम तक। किसको समझा रहे हैं?
ये उपदेश बताते हैं कि चोरों का समाज था, झूठ बोलने वालों का समाज था, बेईमानों का समाज था। बुद्ध उसी के बीच भ्रमण कर रहे हैं, उसी को समझाते फिर रहे हैं। नहीं तो कोई भी कह देता कि महाराज, हम करते ही नहीं, आप यह क्यों बकवास जारी किए हुए हैं? यह बंद करिए! चालीस साल बुद्ध सुबह से सांझ तक यही समझा रहे हैं। उपदेश बताते हैं कि समाज कैसा था। उपदेश बताते हैं कि समाज कैसा था।

अगर किसी गांव में बहुत डाक्टर हों, तो वे बताते हैं कि उस गांव में उसी अनुपात में मरीज होंगे। डाक्टरों का पता लगा कर गांव की बीमारी का पता चल सकता है, बीमारों को नापने की कोई जरूरत नहीं। जिस गांव में कोई भी डाक्टर न हो, शक होता है कि उस गांव में लोग स्वस्थ होंगे। नहीं तो डाक्टर पैदा हो जाता, बीमार डाक्टर को पैदा कर ही लेते।
पापी हमेशा उपदेशक को पैदा कर लेते हैं। उपदेशक उपदेश नहीं देता, पापी उपदेश करवाते हैं। जब चोरी बढ़ती है तो कोई न कोई कहने लगता है, चोरी बुरी है। समाज हमेशा ऐसा ही रहा है। और ऐसा ही रहेगा, अगर हम बुनियादी बातों को नहीं समझते।
लाओत्से चीन में हुआ एक अदभुत आदमी, कोई ढाई हजार साल पहले। वह एक राज्य का कानून मंत्री बना दिया गया। पहले ही दिन मुकदमा आया, एक आदमी ने चोरी की थी। चोरी पकड़ गई थी और आदमी ने स्वीकार कर लिया कि मैंने चोरी की है, अब लाओत्से को फैसला देना था सजा का। उसने छह महीने की सजा चोर को दे दी और छह महीने की उस साहूकार को जिसके घर चोरी हुई थी।
साहूकार ने कहा, आपका दिमाग दुरुस्त है! कभी सुना है किसी कानून में
कि जिसके घर चोरी हो उसको ही सजा मिले। तब तो हद हो गई!
लाओत्से ने कहा कि जब तक साहूकार को भी सजा नहीं मिलती, तब तक दुनिया
से चोरी बंद नहीं हो सकती। एक आदमी के पास गांव की सारी संपत्ति इकट्ठी हो गई है, चोरी नहीं होगी तो क्या होगा?
अगर एक आदमी के पास गांव की सारी संपत्ति इकट्ठी हो जाए--ऐसा समाज हो
कि एक तरफ संपत्ति इकट्ठी हो जाए, एक तरफ भूख इकट्ठी हो जाए--तो चोरी नहीं होगी तो क्या होगा? लेकिन हम कहते हैं, चोरी नहीं होनी चाहिए। और संपत्ति एक तरफ इकट्ठी होती चली जाए, इसकी कोई फिकर नहीं है। चोरी होगी, चोरी होती रहेगी, चोरी नहीं रुक सकती। अदालत बनाओ, कानून बनाओ, नरक बनाओ, भगवान को कांस्टेबल बना कर बिठाल दो, चोरी जारी रहेगी, चोरी नहीं मिटने वाली। और चोरी रोज बढ़ती जाएगी, क्योंकि संपत्ति एक तरफ इकट्ठी होती चली जाएगी। चोरी व्यक्तिगत संपत्ति के साथ जुड़ी है। इसलिए अगर चोरी को कम करना है, तो संपत्ति उस वर्ग तक भी पहुंचनी चाहिए जहां भूख है, जहां दीनता है, जहां दरिद्रता है। जब तक वहां भी संपत्ति नहीं पहुंच जाती, तब तक चोरी नहीं रुकेगी। अगर चोरी रोकनी है तो धन बढ़ाओ और निर्धन को कम करो। जब तक निर्धनता है, चोरी रहेगी। कितना ही समझाओ, कितना ही सुझाओ, इससे कुछ होने वाला नहीं है।
लेकिन हम बुनियादों को पकड़ना नहीं चाहते। हम एक-एक चोर को सुधारने की कोशिश करते हैं, और पूरे समाज की व्यवस्था चोरी करवाने वाली है। वह पूरी समाज की व्यवस्था नहीं बदलती; तो कुछ लोग हिम्मत करके चोरी न करें, यह हो सकता है। लेकिन कितने लोग हिम्मत जुटाएंगे? कितनी देर तक हिम्मत जुटाएंगे? चोरी जारी हो जाएगी। एक नहीं करेगा, दूसरा करेगा; दूसरा नहीं, तीसरा करेगा।
चोरी खत्म होनी चाहिए, जरूर खत्म होनी चाहिए। लेकिन चोरी है क्यों? चोरी इसलिए है कि संपत्ति कम है। और कम संपत्ति भी कुछ हाथों में केंद्रित हो जाती है और शेष लोग निर्धन छूट जाते हैं।
जीवन के सारे उपद्रव इसी तरह विकसित होते हैं। लेकिन किसी उपद्रव को मिटाने में समाज आज तक समर्थ नहीं हो सका। और नहीं होने का कारण यह है कि हमने उनकी मूल भित्ति को ही चोट नहीं पहुंचाई। हम ऊपर-ऊपर टीम-टाम करते रहे।
लाओत्से को कानून मंत्री का पद छोड़ देना पड़ा। क्योंकि सम्राट ने कहा, तुम्हारा दिमाग खराब है। सारे गांव में चर्चा हुई कि यह आदमी पागल है। लेकिन मैं आपसे कहता हूं, लाओत्से पागल नहीं था, पूरा गांव पागल था। लाओत्से ने जो कहा था, बुनियादी रूप से सच था। और जिस दिन दुनिया में लाओत्से की बात स्वीकृत हो जाएगी, उसी दिन चोरी खतम हो जाएगी। उसके पहले चोरी खतम नहीं हो सकती।
हां, एक चोर बदला जा सकता है कि दूसरा पैदा हो जाए, इससे कोई अंतर नहीं होता। व्यक्तिगत रूप से एक आदमी इस समाज में भी चोरी से बच सकता है। लेकिन समाज चोरी से नहीं बच सकता।

तो हमें बुनियादी चिंतन करना जरूरी है कि जीवन के ढांचे को हम फिर से सोच लें कि हजारों साल से यह ढांचा चल रहा है, लेकिन कोई फर्क नहीं पड़ा है। हम आदमी को जो भी समझाते हैं, उस समझाने के पीछे यह ढांचा बदलता है या ढांचा जारी रहता है?
गरीब को हम हजारों साल से समझा रहे हैं कि तुम्हारे पिछले जन्मों के पापों के कारण तुम गरीब हो।
यह सरासर झूठी बात है। कोई आदमी किसी पिछले जन्म के पाप के कारण गरीब नहीं है। गरीब समाज की व्यवस्था के कारण है। और कोई आदमी अमीर नहीं है पिछले जन्मों के पुण्यों के कारण। समाज की व्यवस्था के कारण अमीर है। लेकिन हम यह समझा रहे हैं हजारों साल से। और इसकी वजह से न गरीबी मिटती है, न धन पैदा होता है। क्योंकि निर्धन अपनी निर्धनता में तृप्त हो जाता है, संतुष्ट हो जाता है कि ठीक है। अब पिछले जन्मों के कर्मों को तो बदला नहीं जा सकता; अब अगले जन्म में जो कुछ कर सकेंगे, कर रहे हैं, वह अगले जन्म में मिलेगा; इस जन्म में मिलने वाला नहीं। निर्धन अपनी निर्धनता को स्वीकार कर लेता है, धनी अपने धन को स्वीकार कर लेता है। समाज के ढांचे में कोई रूपांतरण नहीं होता, चोरी जारी रहती है, झूठ जारी रहता है, बेईमानी जारी रहती है।
दूसरी बात, हमने मनुष्य के सहज स्वभाव को आज तक स्वीकार नहीं किया। और
जब तक मनुष्य का सहज स्वभाव स्वीकार नहीं होता, तब तक दुनिया अच्छी नहीं हो सकती। हम उलटी बातें आदमी को सिखाते हैं। उसमें आदमी बेईमान होता है, ईमानदार नहीं होता। हम आदमी को क्या सिखा रहे हैं? हम उसे उलटी बातें सिखा रहे हैं, जो स्वभाव के प्रतिकूल हैं, जो स्वभाव के अनुकूल नहीं हैं।
जैसे हम कहते हैं कि कितनी कामुकता बढ़ गई! संयम होना चाहिए! एक मित्र
ने प्रश्न भी पूछा है इस संबंध में। वह भी इस संदर्भ में आपको याद दिला दूं।

किसी मित्र ने पूछा है कि गांधी जी संयम पर जोर देते हैं, ब्रह्मचर्य
पर जोर देते हैं। वे कहते हैं, संयम ही जीवन है। आप क्या कहते हैं?

मैं कहता हूं, संयम पाप है, जीवन नहीं। और मैं कहता हूं कि ब्रह्मचर्य
की बातें करना इतना खतरनाक है जिसका कोई हिसाब नहीं। लेकिन इसको समझ लेना पूरा, तब कोई निर्णय लेना।
संयम बिल्कुल नहीं चाहिए; चाहिए समझ, संयम नहीं। जितनी समझ होगी, संयम अपने आप आएगा, लाना नहीं पड़ेगा। जो संयम अपने आप आता है, वह तो हितकर है। और जो लाना पड़ता है, वह बिल्कुल जहर है और खतरनाक है।
लेकिन अब तक यही सिखाया गया है कि संयम साधो! साधा हुआ संयम पाप है।
साधे हुए संयम का क्या मतलब होता है? साधे हुए संयम का मतलब होता हैः भीतर कुछ है, ऊपर से कुछ पकड़ लो। भीतर कामवासना है, ऊपर से ब्रह्मचर्य का पाठ रखो। भीतर काम चलेगा, सेक्स चलेगा, ऊपर ब्रह्मचर्य की बातें चलेंगी। ब्रह्मचर्य ऊपर रहेगा, भीतर ब्रह्मचर्य से बिल्कुल उलटी आत्मा रहेगी। अगर ब्रह्मचारियों की खोपड़ी खोली जा सके, तो उनके अंदर ब्रह्मचर्य बिल्कुल नहीं मिलेगा। मिल ही नहीं सकता। वहां भीतर वही मिलेगा जो उन्होंने सप्रेस किया है, दबाया है। अगर ब्रह्मचारियों के सपने जाने जा सकें... ।
और अब जानने का उपाय हो गया है, इसलिए ब्रह्मचारियों को अब सावधान हो जाना चाहिए। अब उन्होंने व्यवस्था कर ली है कि सपने पकड़े जा सकते हैं। अब रात मशीन लगा कर सपने टेप किए जा सकते हैं कि सपने में क्या हो रहा है! उसके सब सिंबल्स पकड़े जा सकते हैं। क्योंकि मस्तिष्क पूरे वक्त चलता है। और चलने से पता चल गया है कि जब सेक्स का मन में विचार चलता है, तो धमनियां किस तरह धड़कती हैं। वह धमनियों की धड़कन कागज पर आ जाती है और पता चल जाता है कि भीतर क्या चल रहा है। अब बहुत दिन यह धोखा नहीं चल सकता कि भीतर कुछ चलता रहे और ऊपर आप कुछ चलाते रहें।
ब्रह्मचर्य आता है। वह बात दूसरी है। उसके लिए कभी नहीं कोई संयम साधना पड़ता। वह आता है सेक्स की अंडरस्टैंडिंग से, दमन से नहीं। जो आदमी

अपनी कामवासना को जितना समझ लेता है, उतना ही मुक्त हो जाता है। लेकिन ब्रह्मचर्य लाना नहीं पड़ता; लानी पड़ती है सेक्स की समझ। जितनी सेक्स की वृत्ति की समझ बढ़ती है, बोध बढ़ता है, ज्ञान बढ़ता है, उतना ही ब्रह्मचर्य फलित होता है। ब्रह्मचर्य लाना नहीं पड़ता; आता है। जैसे आदमी चलता है और पीछे छाया आती है; ऐसे ही जितना आंतरिक जीवन का ज्ञान और बोध बढ़ता है, उतना ही ब्रह्मचर्य आता है।
लेकिन वह बात अलग है, आया हुआ संयम बात अलग है। हमें जो सिखाया गया है हजारों साल से वह लाया हुआ संयम है। वे कहते हैं कि दबाओ हिंसा को, और अहिंसक बनो। वे कहते हैं, दबाओ वासना को, वासना पाप है। इच्छा को दबाओ, परिग्रह को दबाओ, धन को दबाओ, लोभ को दबाओ, क्रोध को दबाओ, सबको दबा लो। जिसको दबाओगे वह भीतर बैठ जाएगा। ऊपर कपड़े सफेद होंगे, भीतर आदमी काला बैठ जाएगा। और वह काला आदमी प्राण लेगा, वह पूरे वक्त सताएगा। और इसीलिए अक्सर यह होता है--आपने देखा होगा, धार्मिक आदमी को अगर गौर से देखें तो उसके व्यक्तित्व में पाखंड दिखाई पड़ेगा, उसके व्यक्तित्व में हिपोक्रेसी दिखाई पड़ेगी। ऊपर से कुछ होगा, भीतर से बिल्कुल दूसरा आदमी होगा। उसके व्यक्तित्व में द्वैत मालूम पड़ेगा। एक उसका व्यक्तित्व होगा, जैसा वह दिखाई पड़ता है; एक उसका व्यक्तित्व होगा, जैसा वह है। और वह भी जानता है। लेकिन फिर वह उलटे रास्ते अख्तियार करेगा। वह पीछे के रास्ते अख्तियार करेगा। और उन पीछे के रास्तों पर उसकी गति चलेगी।
यहां वह कहेगा कि लोभ? लोभ पाप है, लोभ ठीक नहीं है। लेकिन अगर उसके चित्त की दशा समझें, तो लोभी की होगी। वह दिन-रात चिंता करेगा कि स्वर्ग कैसे मिल जाए? मोक्ष कैसे मिल जाए? ये भी लोभ के ही रूप हैं। क्या चाहते हो स्वर्ग में? क्या जरूरत है स्वर्ग के पाने की? यह ग्रीड यहां दबा ली, वहां निकलनी शुरू हो गई। यहां वह कहेगा कि स्त्रियों से दूर रहना! और स्वर्ग में इंतजाम करेगा अप्सराओं का। ये स्वर्ग की अप्सराओं की जरूरत क्या है? ये किस दिमाग से निकलती हैं स्वर्ग की अप्सराएं?
और आपको पता नहीं होगा शायद, यहां जमीन पर जो स्त्रियां हैं, वे तो बेचारी जवान भी होती हैं और बूढ़ी भी हो जाती हैं। स्वर्ग की अप्सराएं कभी बूढ़ी नहीं होतीं, सोलह साल पर उनकी उम्र रुक जाती है, उसके आगे नहीं जाती। सोलह के ऊपर अगर किसी स्त्री की चाहना-वाहना हो, स्वर्ग मत जाना। वहां सोलह के ऊपर कोई स्त्री होती नहीं, बस सोलह पर ठहर जाती है।
ये कौन लोग शास्त्र लिख रहे हैं स्वर्गों का? इनके दिमाग में क्या है?
ये किस बात की सबूत हैं इनकी कल्पनाएं? वहां कल्पवृक्ष बनाए हैं, जिनके नीचे बैठ जाइए और जो भी कामना करिए पूरी हो जाती है। और यहां वे कहते हैं, कामना छोड़िए, कामना छोड़ने से स्वर्ग मिलेगा। स्वर्ग में कल्पवृक्ष हैं, जिनके नीचे बैठने से सब कामनाएं पूरी हो जाती हैं। यह क्या सर्किल है? यह क्या चक्कर है? यह दिमाग कैसा है? यह धोखा किसको दिया जा रहा है?
दिमाग यहां जिसको दबाता है, आगे पाने का इंतजाम कर रहा है। जो-जो यहां छोड़ता है, वहां पाने का इंतजाम कर रहा है। लेकिन उसी पाने के लिए छोड़ रहा है। और हम समझते हैं कि बहुत त्याग किया जा रहा है। लोभ छोड़ा जा रहा है। कोई लोभ नहीं छोड़ा जा रहा है। जिस आदमी का लोभ छूट जाता है, उसके मन में स्वर्ग की कामना भी उसी क्षण छूट जाती है। क्योंकि जब लोभ नहीं है, स्वर्ग की जरूरत क्या है? स्वर्ग लोभ का ही विस्तार है। जिस आदमी का लोभ छूट जाता है, उसे मोक्ष की कामना भी छूट जाती है। क्योंकि मोक्ष भी लोभ का विस्तार है। परम आनंद की आकांक्षा भी तो लोभ का विस्तार है।
लेकिन नहीं, वह हमें दिखाई नहीं पड़ता। क्योंकि हमने एक डिसेप्टिव पर्सनैलिटी, एक धोखा देने वाला व्यक्तित्व विकसित किया है। और उसने ही सारे समाज को रुग्ण किया है, बीमार किया है, भ्रष्ट किया है। सबसे बड़ी भ्रष्टता एक है कि एक-एक आदमी दो-दो हिस्सों में खंडित हो जाए। हम कहते कुछ और हैं, जीते कुछ और हैं, कामना कुछ और करते हैं।
मेरी अपनी समझ यह है कि अगर मनुष्य को ऊंचा उठाना है, तो पहली तो बात
यह है, मनुष्य को पाखंडी मत बनने देना। क्योंकि पाखंडी मनुष्य से गिरा हुआ कोई आदमी नहीं होता। और अगर मनुष्य को पाखंडी नहीं बनने देना है, तो पहली बात है, मनुष्य के जीवन में जो भी हो उसकी निंदा मत करना, क्योंकि निंदा से

पाखंड शुरू होता है। जो भी मनुष्य के जीवन में है, उसको स्वीकार करना और समझना, और उसको रूपांतरित करना, दमन मत करना।
अब जैसे क्रोध है। मनुष्य के भीतर क्रोध है। और प्रकृति ने बहुत जान
कर क्रोध रखा है। और अगर किसी बच्चे में क्रोध न हो, तो वह बच्चा विकसित ही नहीं हो सकेगा। आप जरा सोचें कि एक बच्चा पैदा हो जिसमें क्रोध है ही नहीं; आप उस बच्चे की कल्पना करें जिसमें क्रोध है नहीं। वह बच्चा विकसित नहीं हो सकेगा। क्योंकि शिक्षक उसको चांटा मारेगा, वह बैठा हुआ देखता रहेगा। उसे क्रोध ही नहीं आएगा कि वह शिक्षक के चांटे से सोचे कि मैं जो आज नहीं करके लाया हूं, वह करके लाऊं। उसको क्रोध ही नहीं आता। उसका बाप कहेगा, स्कूल जाओ, डंडा उठा लेगा। वह बैठा रहेगा, क्योंकि उसे क्रोध नहीं आता। क्रोध तो गति है, ताकत है। वह जरूरी है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि
वह सदा बना रहे। इसका यह मतलब है कि वह एक तल पर जरूरी है और एक तल पर वह सारी की सारी शक्ति रूपांतरित होनी चाहिए। जैसे कोई आदमी सीढ़ी पर चढ़ता है। तो पहले सीढ़ी पर चढ़ना जरूरी है, अगर ऊपर जाना है। लेकिन फिर ऊपर जाकर सीढ़ी छोड़नी भी पड़ेगी। और नहीं तो वह कहे कि जब हम सीढ़ी पर चढ़ गए, तो अब हम छोड़ नहीं सकते। क्योंकि हम चढ़े क्यों? और अगर उतरना था तो हम चढ़ते ही नहीं, पहले आप बता देते।
ऊपर जाने के लिए सीढ़ी पर चढ़ना भी जरूरी है और ऊपर जाने के लिए सीढ़ी को छोड़ना भी जरूरी है। नहीं तो सीढ़ी पर ही अटक जाइएगा।
क्रोध से गुजरना जरूरी है। क्रोध होना भी जरूरी है और एक सीमा पर जाकर क्रोध से मुक्त हो जाना भी जरूरी है।
लेकिन क्रोध की निंदा यह सिखाती है कि नहीं, क्रोध पाप है, छोड़ो! और छोड़ेंगे कैसे आप क्रोध को? वे कहते हैं, क्षमा का भाव धारण करो।
लेकिन जिस आदमी में क्रोध है, वह क्षमा का भाव धारण कैसे कर सकता है?
वह अगर किसी से यह भी कहेगा कि जाओ, मैंने क्षमा कर दिया। तो उसमें भी क्रोध होगा। क्रोधी आदमी की क्षमा भी क्रोध ही होगी। और वह उसमें भी मजा लेगा कि देखो मैंने क्षमा कर दिया, मैं कोई साधारण आदमी नहीं! क्रोध से भरा हुआ व्यक्ति, जो भी करेगा, उसमें क्रोध होगा।
इसलिए मैं कहता हूं, क्रोध को दबाना मत, समझना। हां, क्रोध जितना समझ लिया जाएगा, उतना ही विलीन हो जाता है। और जहां क्रोध नहीं है, वहां क्षमा का जन्म होता है। इस बात को समझ लें ठीक से! क्षमा क्रोध की उलटी नहीं है, कि आप क्षमा को ले आएं और क्रोध खत्म हो जाए। क्षमा क्रोध का अभाव है, एब्सेंस है। क्रोध चला जाए तो जो रह जाता है उसका नाम क्षमा है।
हिंसा का अभाव है अहिंसा, हिंसा का विरोध नहीं।
वासना का अभाव है ब्रह्मचर्य, वासना का दमन नहीं।
लेकिन हमें जो समझाया गया है, वह यह है कि वासना का दमन है ब्रह्मचर्य, आत्मदमन है ब्रह्मचर्य, संयम है ब्रह्मचर्य।
नहीं, संयम ब्रह्मचर्य नहीं है। संयम का मतलब ही यह होता है कि वासना मौजूद है और तुम सम्हाल रहे हो। संयम का क्या मतलब होता है? संयम का मतलब होता है कि जिसका हम संयम कर रहे हैं वह मौजूद है, और हम उसको सम्हाले हुए हैं। लेकिन जिसको आप सम्हाले हुए हैं वह मौजूद है, और सारे प्राणों में भटक रहा है और घूम रहा है।
ब्रह्मचर्य संयम नहीं है। ब्रह्मचर्य कामवासना की समझ से आया छुटकारा है। समझ से! सिर्फ ज्ञान के अतिरिक्त और किसी चीज से छुटकारा नहीं होता।
इसलिए मैं गांधी जी से सहमत नहीं हूं। मैं उन किन्हीं भी लोगों से सहमत नहीं हूं जो कहते हैं कि हमें संयम साधना चाहिए। और वही दिक्कत गांधी जी को अंतिम क्षण तक रही। जीवन भर उन्होंने संयम और ब्रह्मचर्य साधा, लेकिन आखिरी क्षणों में उन्हें खुद शक आ गया कि पता नहीं यह संयम सध पाया कि नहीं? क्योंकि संयम कितना ही साधो, पीछे वह मौजूद रहता है जिसको आपने दबाया है। और जीवन अंत होने से पहले एक स्त्री को नग्न लेकर बिस्तर पर सोना शुरू किया, यह जांच के लिए कि संयम पूरा हुआ है कि नहीं। जीवन भर के ब्रह्मचर्य की साधना के बाद भी भीतर यह ख्याल है, यह डाउट है, यह संदेह है कि जो मैंने साधा है वह सध पाया है कि नहीं सध पाया!

लेकिन ऐसा संदेह महावीर और बुद्ध को नहीं है। तो मेरा मानना है कि गांधी और महावीर और बुद्ध के बीच बुनियादी अंतर है। गांधी संयम साध रहे हैं, बुद्ध असंयम को समझ रहे हैं। महावीर हिंसा को समझ कर हिंसा से मुक्त हो गए हैं, तो जो शेष रह गया है वह अहिंसा है। गांधी जी हिंसा को दबा कर अहिंसक होने की चेष्टा कर रहे हैं। यह चेष्टा नैतिक चेष्टा है।
इसलिए मैं गांधी जी को एक नैतिक महापुरुष कहता हूं, धार्मिक व्यक्ति नहीं। बुद्ध और महावीर को धार्मिक कहता हूं। और धार्मिक और नैतिक व्यक्ति में फर्क करता हूं। नैतिक व्यक्ति वह है, जो क्रोध को बुरा मान कर क्षमा की साधना करता है, जो सेक्स को बुरा मान कर ब्रह्मचर्य की साधना करता है, जो परिग्रह को बुरा मान कर अपरिग्रह की साधना करता है। और धार्मिक व्यक्ति वह है, जो परिग्रह को समझ कर अपरिग्रह को उपलब्ध होता है, जो वासना को समझ कर ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होता है, जो हिंसा को जान कर, हिंसा को पहचान कर हिंसा से छुटकारा पा जाता है और व्यक्तित्व में अहिंसा शेष रह जाती है। धार्मिक और नैतिक व्यक्ति में बुनियादी अंतर है।
मुझे क्रोध आता है। मैं दो काम कर सकता हूं। क्रोध को दबा लूं, और रोज दबाता चला जाऊं। और इतना दबा लूं कि अंततः मुझे भी पता न चले कि मुझमें क्रोध रह गया है। लेकिन फिर भी क्रोध होगा। बहुत गहरे में सरक गया होगा। आदमी के मन में बहुत गहराइयां हैं। जिस मन को हम जानते हैं, वह बहुत थोड़ा है। उससे दस गुना बड़ा मन नीचे छिपा है, अंधेरे में, अनकांशस, अचेतन। वहां सरक जाएगा क्रोध। और वहां सरक कर नये-नये अनूठे रास्तों से प्रयोग शुरू करेगा। हमें पता भी नहीं चलेगा कि यह क्रोध क्या करवा रहा है।
वहां हिंसा सरक जाएगी, और नये रूपों में शुरू हो जाएगी। हिंसा का मतलब होता है, दूसरे को दबाना। अगर मैं अपने भीतर हिंसा को दबा कर अहिंसक हो जाऊं, तो मैं दूसरों को दबाने की नई-नई तरकीबें निकालूंगा। मैं उनसे कहूंगा कि जो मैं कह रहा हूं वह सत्य है। जो मैं कह रहा हूं वह भगवान की आवाज है। उसे मानना पड़ेगा। और उसे अगर नहीं मानते हो तो मैं अनशन करके मर जाऊंगा।
यह भी हिंसा है। अगर दूसरे आदमी को मैं धमकी देता हूं कि मैं अनशन करके मर जाऊंगा, तो मैं हिंसा कर रहा हूं। हिंसा का मतलब क्या है? हिंसा का मतलब है दूसरे पर दबाव, प्रेशर। हिंसा का मतलब है दबाना।
मैं एक छुरा लेकर आपके घर पर आ जाऊं और कहूं कि मैं छुरा मार दूंगा, अगर मेरी बात नहीं मानते, इसमें और मैं आपके घर आ जाऊं और लेट जाऊं और कहूं कि मैं भूखा अनशन करता हूं आमरण, मर जाऊंगा, अगर मेरी बात नहीं मानते--इन दोनों बातों में बुनियादी भेद नहीं है। एक में हिंसा प्रकट है, दूसरे में हिंसा अप्रकट है। एक में हिंसा ऊपर है, दूसरे में हिंसा भीतर चली गई। दूसरे में अहिंसा ऊपर है, हिंसा भीतर।
अहिंसक आदमी अनशन भी नहीं कर सकता किसी को दबाने के लिए। क्योंकि अहिंसक व्यक्ति का कहना यह है, मानना यह है कि मैं कौन हूं जो दूसरे को दबाऊं? मेरा हक क्या है? मेरा दबाव क्या है? मैं हूं कौन जो दूसरे को दबाऊं?
लेकिन अगर हमने हिंसा को भीतर दबा लिया, तो हिंसा नये मार्ग खोजेगी अपना कार्य जारी रखने के लिए। और वे अहिंसक मार्ग हो जाएंगे। और हिंसा जब अहिंसा की शक्ल में आती है तो और खतरनाक हो जाती है। क्योंकि हम उसे पहचान भी नहीं पाते कि उसने कौन से रास्ते ले लिए हैं।

मेरी दृष्टि में, संयम थोपना नहीं है, ब्रह्मचर्य साधना नहीं है, ऊपर
से आरोपण नहीं करना है; भीतर चित्त की जो स्वाभाविक दशा है, उसको समझना है। लेकिन अब तक संस्कृति ने, सभ्यता ने मनुष्य के स्वाभाविक चित्त को स्वीकार नहीं किया है। वह उसकी निंदा करती है। निंदा करने के कारण प्रत्येक व्यक्ति पाखंडी हो जाता है।
मनुष्य की निंदा बंद करो, अगर मनुष्य को बदलना हो। मनुष्य जैसा है, उसे स्वीकार करो। और वह जैसा है उसकी खोज करो कि वह वैसा क्यों है? और उसके चित्त को, उसकी चेतना को, उसके ध्यान को विकसित करो कि वह अपने क्रोध को समझ सके।

कभी आप एक छोटा प्रयोग करके देखें, और आपको समझ में आ जाएगा कि मैं क्या कह रहा हूं। कभी आप जानते हुए क्रोध करने की कोशिश करें। जब क्रोध आ जाए, तब आप पूरी तरह होश से भर जाएं कि मुझे क्रोध आ गया है, अब मैं क्रोध करता हूं। और अगर आप क्रोध कर लें, तो आपने एक चमत्कार कर दिया दुनिया में, जो अब तक नहीं हो सका है। जानते हुए कोई आदमी क्रोध नहीं कर सकता। जैसे ही आपने जाना कि मैं क्रोध से भर गया हूं, क्रोध विलीन हो जाएगा। क्रोध सिर्फ मूर्च्छा में होता है, अज्ञान में होता है, बेहोशी में होता है।
एक मेरे मित्र थे। भारी क्रोध की आदत थी। उन्हें बहुत कहा। उन्होंने कहा, मेरी कुछ समझ में नहीं पड़ता; जब क्रोध मुझे पकड़ता है तो मुझे याद ही कहां रहता है कि मैं होश रखूं। वह तो हो ही जाता है, जब मैं गाली-वाली बक चुकता हूं, तब मुझे ख्याल आता है। जब मैं मार-पीट कर चुकता हूं, तब मुझे पता चलता है कि हो गया, फिर हो गया। मुझे याद ही नहीं रहता, मैं याद कैसे करूं? मैंने एक कागज पर लिख कर उनको एक चिट दे दी, उसमें लिख दिया कि अब मुझे क्रोध आ रहा है। मैंने कहा, इसे सदा खीसे में रखो। जब भी क्रोध आए, कृपा करके इसे एक दफे निकाल कर अंदर रख लेना।
उन्होंने कहा, देखें यह हो सकता है, इसकी कोशिश करें।
पंद्रह दिन बाद मेरे पास आए और उन्होंने कहा, यह तो बड़ी अदभुत बात हो गई। हाथ ले जाने की जरूरत नहीं पड़ती, यहां हाथ खीसे पर गया और जैसे कोई चीज भीतर टूट जाती है खटके के साथ। और लगता है, फिर वही! और इतना होश, कि वह गया जो पकड़ रहा था।
सिर्फ बेहोशी में पकड़ती हैं वासनाएं मनुष्य को, होश में नहीं। इसलिए दमन करने की जरूरत नहीं है, जागने की जरूरत है। जो वासना पीड़ित कर रही है, उसके प्रति जागिए; घबड़ाइए मत। सेक्स पकड़ता है? सेक्स के प्रति जागिए। और देखिए कि जाग कर क्या होता है। जाग कर हैरान हो जाएंगे, जिस वासना के प्रति जागेंगे, वही क्षीण होने लगेगी। और अगर निरंतर जागने का प्रयोग जारी रहे, अवेयरनेस का, तो सारी वासनाओं से छुटकारा हो जाता है।
लेकिन यह छुटकारा बहुत दूसरा है, यह संयम नहीं है। क्योंकि इसके बाद संयम करने को कुछ भी नहीं बचता।
महावीर को लोग कहते हैं कि महाक्षमावान थे। मैं कहता हूं, झूठ कहते हैं। महावीर ने कभी किसी को क्षमा नहीं किया। क्योंकि क्षमा वही आदमी कर सकता है जो क्रोध करता हो। महावीर ने क्रोध ही नहीं किया, तो क्षमा करने का क्या सवाल है! क्रोध हो भीतर तो क्षमा करने की जरूरत पड़ती है। लेकिन जो आदमी क्रोधित ही नहीं हुआ, वह क्षमा कैसे करेगा? महावीर की क्षमा बिल्कुल झूठी बात है। क्षमा के लिए पहले क्रोध करना जरूरी है।
अहिंसक होने के लिए पहले हिंसा होनी जरूरी है। लेकिन जिसकी हिंसा विदा हो गई है, उसे यह भी पता नहीं होता कि मैं अहिंसक हूं। उसकी जिंदगी एक सहज जीवन बन जाती है--एक स्पांटेनिटी, एक सहजता।
मनुष्य को अब तक गलत उसूलों पर ढाला गया है, इसीलिए समाज ऊंचा नहीं उठ पाया। समाज ऊंचा उठेगा उसी दिन, जिस दिन हम मनुष्य की सहजता को स्वीकार लेंगे; सरलता को, उसके व्यक्तित्व में जो भी है उसको स्वीकार कर लेंगे, उसको समझेंगे, उस पर मेडिटेट करेंगे, उस पर ध्यान को विकसित करेंगे। दुनिया में संयम की नहीं, ध्यान की जरूरत है। दुनिया में कंट्रोल की नहीं, मेडिटेशन की जरूरत है। आदमी को नियंत्रण करना नहीं सिखाना है, आदमी को जागना सिखाना है। और अगर हम जागना सिखा सके, तो एक दूसरी मनुष्यता पैदा हो जाएगी, ऐसी मनुष्यता जमीन पर कभी भी नहीं थी। लेकिन आज तक जो मनुष्यता है, वह गलत सिद्धांतों के कारण गलत है।
एक छोटी सी कहानी, और अपनी बात मैं पूरी करूं।
एक राजमहल के पास से एक पंखा बेचने वाला गुजरता था। वह बहुत जोर से चिल्ला रहा था--कि ऐसे अनूठे पंखे कभी भी नहीं बने दुनिया में!
सम्राट के पास दुनिया के कोने-कोने के पंखे थे। उसने झांक कर नीचे देखा कि ऐसे अनूठे पंखे कौन ले आया! नीचे देखा एक साधारण गरीब आदमी, रोज पंखे बेचता था वही, साधारण पंखे, दो-दो पैसे के पंखे बेच रहा है। सम्राट ने गौर से सुना। वह फिर से चिल्ला रहा है कि अनूठे पंखे हैं! ऐसे न कभी देखे गए और न कभी बने!

सम्राट ने उस पंखेवाले को ऊपर बुला लिया। और उससे पूछा कि इन पंखों की खूबी क्या है? दिखते तो बिल्कुल साधारण हैं।
उस पंखेवाले ने कहा, महाराज, असाधारण दिखने वाले अक्सर साधारण होते हैं। यह पंखा बहुत असाधारण है; दिखाई नहीं पड़ता, है।
क्या खूबी है इसकी?
उसने कहा, यह सौ साल चलता है। इसकी सौ साल की गारंटी है।
सम्राट ने कहा, हैरान कर रहे हो! यह पंखा इतना कमजोर दिखता है कि दो घंटे चल जाए तो मुश्किल है।
उस आदमी ने कहा, मैं तो गारंटी देता हूं।
सम्राट ने कहा, इसके दाम कितने हैं?
उस आदमी ने कहा, सौ रुपये दाम हैं, ज्यादा दाम भी नहीं हैं।
उस सम्राट ने कहा, मैंने बहुत पंखे देखे, लेकिन दो पैसे के पंखे के दाम
सौ रुपये! तुम कहते क्या हो? धोखा देना चाहते हो? फांसी लगवा दूंगा!
उस आदमी ने कहा, उसकी चिंता मत करिए। रोज आपके महल के नीचे से गुजरता हूं। जिस दिन पंखा टूट जाए, मुझे बुला लीजिए। और रुपये चाहें तो अभी मत दें, पीछे भी दे सकते हैं। लेकिन मैं गरीब आदमी हूं, और मेरा कोई भरोसा नहीं कि कब मर जाऊं। आपका भी कोई भरोसा नहीं कब मर जाएं। पंखा सौ साल की गारंटी का है। इसलिए रुपये मैं अभी ले लेता हूं।
(वह पंखा खरीद लिया गया। दो-चार दिन में ही पंखे की डंडी बाहर निकल गई। सातवें दिन तो वह बिल्कुल मुर्दा हो गया। सम्राट ने सातवें दिन उस पंखेवाले को बुलवाया। सम्राट ने कहा, यह पंखा पड़ा है टूटा हुआ। सात दिन में ही यह गति हो गई, तुम कहते थे सौ वर्ष चलेगा! उस आदमी ने कहा कि मालूम होता है आपको पंखा झलना नहीं आता है। पंखा तो सौ वर्ष चलता ही। पंखा तो गारंटीड है। सम्राट ने कहा, और भी सुनो! पंखा कैसे झला जाता है, यह मैं नहीं जानता हूं!)
उस आदमी ने कहा, कृपा करके झल कर बताइए, उससे मैं समझ जाऊंगा। महाराज
ने पंखा झल कर बताया। वह आदमी हंसा और उसने कहा, बस गड़बड़ हो गई। यह पंखा झलने का ढंग नहीं है। यह पंखा तो सौ साल चलता, लेकिन आपने गलत ढंग से झला, इसलिए टूट गया। (मैं आपसे कहता हूं कि पंखा पकड़िए सामने और सिर को हिलाइए। पंखा सौ वर्ष चलेगा। आप समाप्त हो जाएंगे, लेकिन पंखा बचेगा। पंखा गलत नहीं है, आपके झलने का ढंग गलत है।)
(यह आदमी पैदा हुआ है--पांच-छह हजार या दस हजार वर्ष की संस्कृति का यह आदमी फल है। लेकिन संस्कृति गलत नहीं है, यह आदमी गलत है।) हमारी फिर आपको गारंटी भी सही है, आदमी गलत है, आदमी अपना ढंग बदले।
बहुत हो चुकी यह बात। पांच-छह हजार साल से सुनते-सुनते हम परेशान हैं, सारी दुनिया परेशान है। अब हमें बदलाहट करनी पड़ेगी। आदमी को करना पड़ेगा स्वीकार और सिद्धांत बदलने पड़ेंगे।
यह दुनिया बदल सकती है, यह समाज बदल सकता है। आदमी गलत नहीं है, सिद्धांत गलत हैं। आदमी के लिए सिद्धांत हैं, सिद्धांतों के लिए आदमी नहीं है। अगर सिद्धांत काम नहीं करते, तो हम सिद्धांत बदलेंगे। और बहुत समय हो गया प्रयोग करते हुए। अब एक नया प्रयोग करना चाहिए--आदमी की स्वीकृति का प्रयोग। आदमी की स्वीकृति का प्रयोग, आदमी जैसा भी है, वह स्वीकृत है हमें। इस स्वीकृत आदमी को हम मानेंगे। इस स्वीकृति के भीतर आदमी को जगाएंगे और कहेंगे, अपने प्रति जागो--क्या-क्या तुम्हारे भीतर है! और मजे की बात है, जितना ही जागिए, जो श्रेष्ठ है वह शेष रह जाता है जागने पर, जो अश्रेष्ठ है वह विलीन हो जाता है। संयम की कोई जरूरत नहीं पड़ती। संयम धोखा है। संयमी आदमी बेईमान आदमी है। संयमी आदमी अपने साथ लड़ाई कर रहा है। और जो अपने साथ लड़ाई कर रहा है, वह हमेशा पाखंड में गिर जाएगा।
नहीं; आदमी को आदमी के भीतर लड़ाना नहीं है, जगाना है। और इस जगाने के सूत्र पर, कल तीसरे सूत्र पर सुबह मैं बात करूंगा, वह अंतिम सूत्र होगा। दो सूत्रों पर हमने बात की है, कल तीसरे सूत्र पर सुबह बात करूंगा--आदमी कैसे जागे?

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

तृषा गई एक बूंद से
सातवां प्रवचन

जागरण के तीन सूत्र

मेरे प्रिय आत्मन्!
जो बाहर है, वह एक स्वप्न से ज्यादा नहीं है। और जो सत्य है, वह भीतर है। जो दृश्य है, वह परिवर्तन है। और जो द्रष्टा है, वह सनातन है।
सत्य की खोज में विज्ञान बाहर देखता है, धर्म भीतर देखता है। विज्ञान परिवर्तन की खोज है, धर्म शाश्वत की। और सत्य शाश्वत ही हो सकता है। इस शाश्वत सत्य की दिशा में तीसरा सूत्र साक्षीभाव है। द्रष्टा को खोजना है, तो द्रष्टा बने बिना और कोई रास्ता नहीं है।
लेकिन हम सब हैं सोए हुए लोग। हम सब करीब-करीब सोए-सोए जीते हैं, सोए-सोए ही जागते हैं।
बुद्ध एक सुबह प्रवचन करते थे। कोई दस हजार लोग इकट्ठे थे। सामने ही बैठ कर एक भिक्षु पैर का अंगूठा हिलाता था। बुद्ध ने बोलना बंद कर दिया और उस भिक्षु को पूछा कि यह पैर का अंगूठा तुम्हारा क्यों हिल रहा है? जैसे ही बुद्ध ने यह कहा, पैर का अंगूठा हिलना बंद हो गया। उस भिक्षु ने कहा, आप भी कहां की फिजूल बातों में पड़ते हैं! आप अपनी बात जारी रखिए। बुद्ध ने कहा, नहीं; मैं यह पूछे बिना आगे नहीं बढूंगा कि तुम पैर का अंगूठा क्यों हिला रहे थे? उस भिक्षु ने कहा, मैं हिला नहीं रहा था, मुझे याद भी नहीं था, मुझे पता भी नहीं था।
तो बुद्ध ने कहा, तुम्हारा अंगूठा है, और हिलता है, और तुम्हें पता नहीं; तो तुम सोए हो या जागे हुए हो? और बुद्ध ने कहा, पैर का अंगूठा हिलता है, तुम्हें पता नहीं; मन भी हिलता होगा और तुम्हें पता नहीं होगा। विचार भी चलते होंगे और तुम्हें पता नहीं होगा। वृत्तियां भी उठती होंगी और तुम्हें पता नहीं होगा। तुम होश में हो या बेहोश हो? तुम जागे हुए हो या सोए हुए हो?
यदि हम गौर से देखें, तो आंखें खुली होते हुए भी हम अपने को होश में नहीं कह सकते। हमारा मन क्या कर रहा है इस क्षण, वह भी हमें ठीक-ठीक पता नहीं। अगर कभी दस मिनट एकांत में बैठ जाएं, द्वार बंद कर लें, और मन में जो चलता हो उसे एक कागज पर लिख लें--जो भी चलता हो, ईमानदारी से--तो उस कागज को आप अपने प्रियजन को भी बताने के लिए राजी नहीं होंगे। मन में ऐसी बातें चलती हुई मालूम पड़ेंगी कि लगेगा क्या मैं पागल हूं? ये बातें क्या हैं जो मन में चलती हैं? खुद को भी विश्वास नहीं होगा कि यह मेरा ही मन है जिसमें ये सारी बातें चलती हैं!
लेकिन हम भीतर देखते ही नहीं, बाहर देख कर जी लेते हैं। मन में क्या चलता है, पता भी नहीं चलता। और यही मन हमें सारी क्रियाओं में संलग्न करता है। इसी मन से क्रोध उठता है, इसी मन से लोभ उठता है, इसी मन से काम उठता है। इस मन के गहरे में न हम कभी झांकते हैं, न कभी इस मन के गहरे में जागते हैं। जो भी चलता है, चलता है। यंत्रवत, सोए-सोए हम सब कर लेते हैं
अगर आपने कभी क्रोध किया हो, तो शायद ही आप यह कह सकें कि मैंने क्रोध किया है। आपको यही कहना पड़ेगा, क्रोध आ गया। आज तक किसी आदमी ने क्रोध किया नहीं है, क्रोध सदा आया है। आप क्रोध के कर्ता नहीं हैं, आप सिर्फ क्रोध के विक्टिम हैं, शिकार हैं। आप पूरी जिंदगी स्मरण करें तो यह नहीं कह सकते कि मैंने एक बार क्रोध किया था। क्रोध में, करने में आप मालिक नहीं थे। अगर मालिक होते तो आपने किया ही नहीं होता। कोई आदमी जान कर गड्ढे में नहीं गिरता है। गिर जाता है, यह दूसरी बात है। किसी आदमी ने जान कर क्रोध भी नहीं किया है कभी। क्रोध हो जाता है, यह दूसरी बात है। क्रोध घटता है, क्रोध हम करते नहीं हैं। तो हम सोए हुए आदमी हैं या जागे हुए?
और प्रेम के संबंध में तो लोग कहते ही हैं कि प्रेम हमने किया नहीं, हो गया। लेकिन इसका मतलब क्या होता है कि प्रेम हो गया? इसका मतलब यह होता है कि जैसे हवाएं चलती हैं और वृक्ष के पत्ते हिलते हैं अवश-परवश, जैसे आकाश में बादल आते हैं और हवाएं उन्हें जहां उड़ा कर ले जाती हैं, चले जाते हैं,

विवश। क्या वैसे ही हमारे भीतर भी चित्त में भावनाएं उठती हैं प्रेम की, क्रोध की, घृणा की और हम विवश होकर उनके साथ हिलते-डुलते रहते हैं? हमारा कोई वश नहीं है? हम अपने मालिक नहीं हैं?
एक फकीर था यूनान में, गुरजिएफ। वह तो कहता था, आदमी यंत्र है। वह यह मानता ही नहीं था कि सभी लोगों के भीतर आत्मा है। वह कहता था, जो सोए हुए हैं उनके भीतर आत्मा मानने का कारण क्या है? जाग्रत कोई हो तो ही उसके भीतर आत्मा मानने का कारण है। अगर आत्मा है भी तो सोई हुई है।
हमारा सारा व्यक्तित्व ही सोया हुआ है। न हमने कभी क्रोध किया है, न हमने प्रेम किया है। चीजें घटती रही हैं और हम उनके साथ हिलते रहे हैं, डोलते रहे हैं--यंत्रवत! जैसे किसी ने बटन दबा दी हो और बिजली जल गई, तो बिजली यह नहीं कह सकती कि मैं जल गई हूं। वह यही कह सकती है, जलना हो गया। हमें भी कोई बटन दबा देता है और क्रोध जल जाता है। हम भूल से कहते हैं
कि मैंने क्रोध किया। क्रोध हो गया है। बटन दबी और क्रोध हो जाता है, पता भी नहीं चलता कब हो गया। हमारे सारे व्यक्तित्व का पूरा का पूरा आधार ऐसा ही अनकांशस, अचेतन है। इस अचेतन चित्त को लेकर कोई सत्य का साक्षात्कार नहीं कर सकता है। सत्य के साक्षात्कार के लिए कांशस, चेतन, होश से भरा हुआ होना जरूरी है।
इस होश के लिए ही तीसरा सूत्र आपसे कहना चाहता हूं। जीवन की प्रत्येक क्रिया के प्रति जागरूक होना साधना का एकमात्र मार्ग है। जो भी हम करते हैं, वह निद्रित न हो। जो भी हम करते हैं, वह जाग्रत हो।
बहुत कठिन है यह बात। अगर रास्ते पर आप चल रहे हैं, और जाग्रत होकर चलने की कोशिश करें, तो आपको पता चलेगा कितना कठिन है! एक-दो क्षण याद रख पाएंगे कि मैं चल रहा हूं, और फिर यह बात भूल जाएगी और चलना मैकेनिकल, यांत्रिक ढंग से होने लगेगा। मन कहीं और चला जाएगा। पांच मिनट भी चलते हुए यह होश रखना मुश्किल है कि मैं चल रहा हूं। अपनी ही क्रिया है चलने की, अपना ही मन है, लेकिन चलने की क्रिया को पांच मिनट तक सतत स्मरण रखना, रिमेंबर रखना, मुश्किल मामला है। इसे थोड़ा लौटते वक्त प्रयोग करेंगे तो ख्याल में आएगा। और जब चलने की साधारण सी क्रिया के प्रति हम पांच मिनट नहीं जाग सकते, तो आत्मा की बहुत गहरी क्रियाओं के प्रति हम कैसे जाग सकते हैं?
बुद्ध एक रास्ते से गुजरते हैं। उनके साथ एक भिक्षु है आनंद। वे आनंद
से बात कर रहे हैं। एक मक्खी आकर उनके गले पर बैठी है, उन्होंने मक्खी उड़ा दी है। फिर रुक कर खड़े हो गए। फिर आनंद से कहा, भूल हो गई आनंद, मक्खी को मैंने सोए-सोए उड़ा दिया। तुमसे बात करता रहा और हाथ मशीन की तरह गया और मक्खी को उड़ा दिया। गलती हो गई है। फिर उस जगह हाथ ले गए जहां मक्खी बैठी थी--अब मक्खी वहां नहीं है, वह कभी की उड़ चुकी है--फिर वहां हाथ ले गए, फिर उस मक्खी को उड़ाया जो नहीं थी।
आनंद ने कहा, आप यह क्या कर रहे हैं?
बुद्ध ने कहा, अब मैं जाग कर मक्खी को उड़ा रहा हूं, जैसे कि मुझे उड़ाना चाहिए था। मैंने नींद में हाथ उठा दिया, वह होश में नहीं था हाथ। वह यांत्रिक था, वह आत्मिक नहीं था। अब मैं उस तरह हाथ ले जा रहा हूं जाग कर, जैसे कि मुझे ले जाना चाहिए था।
कभी आपने ख्याल किया? इस हाथ को नीचे से ऊपर तक उठाएं होश से भर कर, आपको पूरा पता हो कि हाथ उठ रहा है। और आप हैरान हो जाएंगे। जितनी देर आप जागे रहेंगे कि हाथ उठ रहा है, उतनी देर चित्त शांत हो जाएगा।
जाग्रत चित्त शांत होता है, सोया चित्त अशांत होता है। रास्ते पर चल
कर देखें दस मिनट भी जागे हुए। और जितनी देर होश रहेगा कि मैं चल रहा हूं, उतनी देर चित्त शांत रहेगा; जैसे ही होश जाएगा, चित्त अशांत हो जाएगा। हमारी सामान्य क्रियाओं से शुरू करना जरूरी है साक्षी का भाव--चलते, उठते, खाना खाते, सुनते, बोलते। अभी मैं बोल रहा हूं और आप सुन रहे हैं। यह सुनना दो तरह से हो सकता है। या तो सोए-सोए आप सुन रहे हैं, सुन रहे हैं एक यंत्र की तरह। या आप जाग कर सुन रहे हैं; कि आपको पूरा पता है कि आप सुन रहे हैं; होश है पूरा कि आप सुन रहे हैं। अगर आप होशपूर्वक सुन रहे हैं, तो सुनने में ही एक अदभुत शांति आनी शुरू हो जाएगी जिसका आपको कोई पता नहीं।

यहीं प्रयोग करके देखें। मुझे सुन रहे हैं, इस तरह सुनें कि आपको पूरी तरह पता है कि आप सुन रहे हैं। सिर्फ कान पर चोट नहीं पड़ रही, पीछे मन पूरी तरह जाग कर सुन रहा है। मन साक्षी है कि सुनने की क्रिया हो रही है। और मन एकदम शांत होने लगेगा। सुनने में भी शांत होने लगेगा। भोजन कर रहे हैं, तो भोजन करें जाग कर। और जैसे ही जाग कर भोजन करेंगे, भोजन करने की क्रिया ही रह जाएगी, मन और कहीं नहीं जाएगा। जाग कर कोई भी काम होगा तो मन इधर-उधर भागना बंद कर देगा। सोया हुआ मन भागता है, जागा हुआ मन नहीं भागता।
जापान में एक फकीर था बोकोजू। वह लोगों को वृक्षों पर चढ़ने की कला सिखाता था। और वह यह कहता था कि वृक्षों पर चढ़ने की कला के साथ ही मैं जागने की कला भी सिखाता हूं।
अब फकीर को वृक्षों पर चढ़ने की कला सिखाने से कोई प्रयोजन भी नहीं है। लेकिन उस फकीर ने बड़ी समझ की बात खोजी थी कि जागना और वृक्ष पर चढ़ना एक साथ सिखाना आसान था।
जापान का एक राजकुमार उस फकीर के पास वृक्ष पर चढ़ना सीखने गया। कोई डेढ़ सौ फीट ऊंचे सीधे वृक्ष पर उस फकीर ने कहा कि तुम चढ़ो। और वह फकीर नीचे बैठ गया। राजकुमार जैसे-जैसे ऊपर जाने लगा, उसने नीचे लौट कर देखा, वैसे- वैसे फकीर ने आंख बंद कर ली। राजकुमार डेढ़ सौ फीट ऊपर चढ़ गया, जहां से जरा भी चूक जाए तो प्राणों का खतरा है। तेज हवाएं हैं, वृक्ष कंपता है, आखिरी शिखर तक जाकर उसे वापस लौटना है। श्वास लेने तक में डर लगता है। और वह फकीर कुछ भी नहीं बोलता, चुपचाप नीचे बैठा है, न बताता है कैसे चढ़ो, न कहता है कि क्या करो। फिर वह वापस लौटना शुरू हुआ। जब कोई पंद्रह फीट ऊपर रह गया, तब वह फकीर छलांग लगा कर खड़ा हो गया और उसने कहा, सावधानी से उतरना! होश से उतरना!
राजकुमार बहुत हैरान हुआ कि कैसा पागल है! जब मैं डेढ़ सौ फीट ऊपर था,
तब चुपचाप बैठा रहा। और अब जब मैं पंद्रह फीट कुल ऊंचाई पर रह गया हूं, जहां से गिर भी जाऊं तो अब बहुत खतरा नहीं है, वहां इन सज्जन को होश आया है, चिल्ला रहे हैं कि सावधान! होशियारी से उतरना! बोधपूर्वक उतरना! गिर मत जाना!
नीचे उतरा, और उसने कहा, मैं बहुत हैरान हूं! जब मैं डेढ़ सौ फीट ऊपर था,
तब तुमने सावधानी के लिए नहीं कहा। और जब पंद्रह फीट, नीचे से केवल पंद्रह फीट रह गया, तब तुम चिल्लाने लगे।
उस फकीर ने कहा, जब तुम डेढ़ सौ फीट ऊपर थे, तब तुम खुद ही सावधान थे। मुझे कुछ कहने की जरूरत न थी। खतरा इतना ज्यादा था कि तुम खुद ही जागे हुए रहे होगे। लेकिन जैसे-जैसे तुम जमीन के करीब आने लगे, मैंने देखा कि नींद ने पकड़ना तुम्हें शुरू कर दिया है, तुम्हारा होश खो रहा है। उस फकीर ने कहा, जिंदगी भर का मेरा अनुभव है, लोग जमीन के पास आकर गिर जाते हैं, ऊपर से कभी कोई नहीं गिरता। ऊपर इतना खतरा होता है कि आदमी जागा होता है। और उस राजकुमार से उसने कहा कि तुम सोचोः जब तुम डेढ़ सौ फीट ऊपर थे, हवाएं जोर की थीं और वृक्ष कंपता था, तब तुम्हारे मन में कितने विचार चलते थे?
उसने कहा, विचार? एक विचार नहीं चलता था! बस एकमात्र होश था कि जरा चूक
न जाऊं! मैं उस वक्त पूरी तरह जागा हुआ था।
तो उस फकीर ने पूछा, उस जागरण में तुम्हें कोई विचार नहीं थे! मन अशांत था, दुखी था, परेशान था, स्मृतियां आती थीं, भविष्य की कल्पना आती थी? उसने कहा, कुछ भी नहीं आता था! बस मैं था, डेढ़ सौ फीट की ऊंचाई थी, प्राण खतरे में थे! वहां कुछ भी न अतीत था, न भविष्य था। बस वर्तमान था! वही क्षण था और कंपती हुई हवाएं थीं, और प्राण का खतरा था, और मैं था, और मैं पूरी तरह जागा हुआ था!
उस फकीर ने कहा, तो तुम समझ लो, अगर इस तरह तुम चौबीस घंटे जागे रहने लगो, तो तुम उसे जान लोगे जो आत्मा है। इसके अतिरिक्त तुम नहीं जान सकते हो।
यह जान कर हैरानी होगी कि बहुत बार खतरों में आदमी को आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है। और यह भी जान कर हैरानी होगी कि खतरे का जो हमारे भीतर आकर्षण है, वह आत्मा को पाने का ही आकर्षण है। खतरे का भी एक आकर्षण है, डेंजर का भी एक आकर्षण है हर एक के भीतर। और जब तक आदमी में थोड़ा बल

होता है, खतरे का एक मोह होता है, खतरे को स्वीकार करने की एक इच्छा होती है।
एक आदमी था, अभिनेता, उसने अमेरिका में रह कर लाखों रुपये कमाए। जापानी था। फिर लौटता था वापस, तो उसने सोचा सारी दुनिया घूमता हुआ चलूं। सारी संपत्ति, कोई अस्सी लाख रुपये लेकर लौटता था। अब उसने ख्याल छोड़ दिया था काम करने का, अब रुपये कमा लिए थे, अब चुपचाप एक झोपड़ा बना कर कहीं जंगल में रहेगा। वह पेरिस रुका आकर अपनी यात्रा में। जिस होटल में ठहरा था, उस होटल में किसी परिचित ने कहा कि पेरिस आए हो, तो पेरिस के जुआघर देखना बहुत जरूरी है। उनको बिना देखे व्यर्थ है, पेरिस तुमने देखा ही नहीं। तो पेरिस का जुआघर जरूर देख लो। उस आदमी ने कहा, मैंने कभी जुआ नहीं खेला, लेकिन तुम कहते हो तो चलो चलता हूं। वह पेरिस के बड़े जुआघर में गया। और उसने जाकर अस्सी लाख रुपये एक ही साथ दांव पर लगा दिए, जितना लाया था कमा कर।
उसके मित्र ने कहा, क्या पागलपन करते हो! पागल हो गए हो? इतना बड़ा दांव पेरिस के जुआघर में कभी भी नहीं लगाया गया! एक ही दांव और इकट्ठा! और उसके पास एक पैसा नहीं बचता है पीछे।
पर उस अभिनेता ने कहा, अगर दांव ही लगाना है तो पूरा लगाना चाहिए, नहीं
तो दांव का मजा ही नहीं आएगा।
उसने वह अस्सी लाख रुपये का दांव लगा दिया और हार गया। उस जुआघर से होटल तक लौटने के लिए पैसे भी मित्र से उधार लेने पड़े! सन्नाटा छा गया होटल में। और सभी लोगों ने समझा, कहीं वह आदमी मर न जाए। इतना बड़ा धक्का होगा उसको! रात जाकर वह अपनी होटल में सो गया।
संयोग की बात, किसी दूसरे जापानी ने उस रात आत्महत्या की पेरिस में। सुबह अखबारों ने खबर छाप दी कि फलां-फलां अभिनेता ने आत्महत्या कर ली। क्योंकि पक्का ही हो गया कि वही होगा। दूसरा कौन होगा!
सुबह जब वह उठा, उसने अखबार पढ़ा, तो उसमें छपा है कि उसने आत्महत्या कर ली। वह बहुत हैरान हुआ! उसने मैनेजर को बुला कर कहा कि यह किसने अखबार में खबर छाप दी कि मैं मर गया? मैं मरा नहीं, मैंने कल आत्महत्या नहीं की, जुए के दांव के वक्त मुझे पहली बार आत्मा का साक्षात्कार हो गया है। जब मैंने सब दांव पर लगा दिया, तो श्वास भी मेरी रुक गई, विचार भी मेरे रुक गए। एक क्षण को दुनिया मिट गई मेरे लिए, दांव ही रह गया। मैं उसी पर जागा हुआ रह गया। क्योंकि पूरे जीवन का सवाल था। और उस मौन में, उस जागृति में मैंने जो जाना है, वह अस्सी लाख से बहुत ज्यादा का है। मैंने कुछ खोया नहीं, मरने का सवाल नहीं है। मैंने कुछ पा लिया, जो जिंदगी भर में मुझे कभी भी जिसकी सुगंध नहीं मिली थी।
आप जान कर हैरान होंगे कि जुए का मोह और मजा, खतरे का मोह और मजा भी मनुष्य की आत्मा को जानने की गहरी प्यास से ही पैदा होता है। पहाड़ों पर चढ़ने की इच्छा, समुद्रों में तैरने की इच्छा, खतरों में उतरने की इच्छा, युद्धों के मैदान पर चले जाने की इच्छा भी मनुष्य के आत्म-साक्षात्कार की किसी तीव्र कामना से पैदा होती है। क्योंकि लाखों वर्ष के अनुभव के बाद मनुष्य को यह पता चला है कि कभी-कभी खतरों में धुआं छूट जाता है, नींद टूट जाती है, और वह जो भीतर है उसकी झलक मिल जाती है। लेकिन वह खतरे के कारण नहीं मिलती, वह मिलती है जागरण के कारण। खतरे में जागरण हो जाता है और झलक मिल जाती है।
जैसे कोई आदमी अचानक आपकी छाती पर छुरा लेकर खड़ा हो जाए, तो शायद एक सेकेंड को विचार बंद हो जाएंगे। विचार चलेंगे उस क्षण जब कोई छाती पर छुरा लेकर खड़ा हो गया हो? विचार बंद हो जाएंगे। नींद रहेगी उस वक्त? बेहोशी रहेगी? जैसे छुरे की धार काट देगी सारी नींद को। भीतर कोई चीज जग जाएगी जैसी कभी नहीं जगी थी। लेकिन खतरा सवाल नहीं है, असली सवाल जागरण है। अगर हम जागने का प्रयोग कर सकें तो जीवन की सामान्य स्थितियों में भी वह भीतर की धार, वह भीतर का द्वार, वह भीतर का अंधेरा टूट सकता है, नींद टूट सकती है।
लेकिन जागने के लिए क्या किया जा सकता है?
जागने के लिए तीन सूत्र स्मरण रखने चाहिए। एक तो शरीर की कोई भी क्रिया होशपूर्वक हो, बेहोशीपूर्वक न हो। शरीर की कोई भी क्रिया--हाथ भी

हिले, पैर भी उठे, तो होशपूर्वक उठे। और अगर चार-छह महीने निरंतर ध्यान रखा जाए, तो शरीर की सब क्रियाएं होशपूर्वक होनी शुरू हो जाती हैं।
और जब शरीर की सारी क्रियाएं होशपूर्वक होती हैं, तो शरीर से सारे तनाव, सारे टेंशंस विदा हो जाते हैं। शरीर एकदम रिलैक्स्ड हो जाता है। शरीर इतना हलका हो जाता है, वेटलेस, जैसे उड़ जाएगा। ऐसा लगने लगता है जैसे शरीर है ही नहीं। शरीर इतना, इतना हलका हो जाता है कि जैसे उड़ सकेगा। जितना होशपूर्वक होगा शरीर का जीवन, उतना ही शरीर हलका हो जाएगा; उतना ही, शरीर नहीं है, ऐसा मालूम पड़ने लगेगा।
अभी हम शरीर ही हैं। अभी हमें शरीर ही सब कुछ मालूम पड़ता है। शरीर का बहुत वेट है, बहुत वजन है, शरीर पत्थर की तरह है, वही मालूम पड़ता है, उसके भीतर और कुछ मालूम नहीं पड़ता। क्योंकि शरीर बिल्कुल नींद में चल रहा है, सोया हुआ चल रहा है।
कभी आपने ख्याल किया कि नींद में सोए हुए आदमी को उठाइए तो ज्यादा भारी मालूम पड़ेगा, जागे हुए आदमी को उठाने की बजाय। कभी आपने सोचा कि क्या बात हो सकती है? वजन तो उतना ही है--चाहे सोओ, चाहे जागो।
लेकिन सोया हुआ आदमी तमस से घिर गया है, निद्रा से घिर गया है। निद्रा भार है। जागा हुआ आदमी तमस से छूट गया है, नींद से मुक्त हो गया है। जागना निर्भार होना है। लेकिन यह तो बहुत साधारण जागना है। अगर कोई व्यक्ति अपनी शरीर की प्रत्येक क्रिया के प्रति पूरी तरह जागरूक होकर काम करता है, तो शरीर मिट जाता है, जिसको हम विदेह कहते हैं। विदेह का और कोई मतलब नहीं होताः बॉडीलेसनेस! बॉडी रहेगी, शरीर रहेगा; लेकिन शरीर नहीं है, ऐसा मालूम पड़ने लगेगा। शरीर के प्रति परिपूर्ण जागृति से विदेह अवस्था की संभावना शुरू होती है।
और जिसको विदेह होने का अनुभव होता है, उसे ही भीतर जो अशरीरी बैठा हुआ है, आत्मा बैठी हुई है, उसकी झलक मिलती है। जब तक हमें लगता है हम शरीर हैं, तब तक हमें उसकी झलक नहीं मिल सकती जो शरीर के भीतर छिपा है और जो शरीर नहीं है। शरीर जाए तो हमें उसका पता चल सकता है।
जैसे ही शरीर की क्रियाओं के प्रति हम जागरूक होकर व्यवहार करेंगे,
एक नया अनुभव होगाः लगेगा शरीर अलग है और मैं अलग हूं।
आज ही लौटते वक्त, चलते वक्त, आप ख्याल करके चलें कि जाग कर चल रहे हैं। आप अपने चलने के एक साक्षी हो गए हैं, एक विटनेस हो गए हैं। आप अपने ही चलने को देख रहे हैं, जान रहे हैं, पहचान रहे हैं। चलने की क्रिया चल रही है और भीतर आप उस क्रिया को देख भी रहे हैं, पहचान भी रहे हैं कि चलना हो रहा है। बायां कदम उठा, दायां कदम उठा, आगे गए, तेजी से जा रहे हैं--चलने की जो क्रिया है, जो मूवमेंट है, उसको आप देख भी रहे हैं।
तो आपको फौरन एक अजीब बात मालूम पड़ेगी। पता चलेगाः शरीर चल रहा है और मैं नहीं चल रहा हूं। शरीर चल रहा है और मैं नहीं चल रहा हूं। शरीर अलग है और मैं अलग हूं। शरीर और स्वयं के अलग होने का अनुभव बहुत जरूरी है, पहली सीढ़ी है, जिससे हम आत्मा के ज्ञान को उपलब्ध होंगे।
इसलिए पहला सूत्र हैः काया-स्मृति; रिमेंबरेंस ऑफ दि बॉडी, माइंडफुलनेस ऑफ दि बॉडी; शरीर के प्रति होश, शरीर के प्रति स्मृति, शरीर के प्रति जागरण। अदभुत है अनुभव शरीर के प्रति जागने का।
दूसरी सीढ़ी परः चित्त के प्रति जागरण, मन के प्रति जागरण। मन में क्या
हो रहा है? क्या चल रहा है? हम कभी देखते ही नहीं। हम कभी घड़ी, दो घड़ी को बैठ कर यह नहीं देखते कि मन में क्या हो रहा है? कैसे विचार चल रहे हैं? कैसी वासनाएं चल रही हैं? कैसी वृत्तियां चल रही हैं? मन में जोर के तूफान प्रतिक्षण चल रहे हैं, चौबीस घंटे चल रहे हैं। एक क्षण भी मन शांत नहीं है, मौन नहीं है। मन काम कर रहा है। शरीर तो रात में सो भी जाता है, मन तब भी नहीं सोता, तब भी उसका काम जारी है। रात सपने चल रहे हैं। मुश्किल से स्वस्थ आदमी रात में दस मिनट को सोता है पूरी तरह, बाकी समय सपने चलते ही रहते हैं।
आप कहेंगे, हमें तो सुबह याद नहीं रहता!
याद नहीं रहेगा। सिर्फ वे ही सपने याद रहते हैं जो सुबह के करीब, जागने के करीब आने शुरू होते हैं। जब चित्त थोड़ा जागने लगता है तब जो सपने

आते हैं वे याद रहते हैं। वे सपने याद नहीं रहते जो पूरी नींद में आते हैं। लेकिन रात भर सपने चल रहे हैं और मन काम कर रहा है, मन पूरे वक्त काम कर रहा है।
लेकिन इस मन का हमें कोई होश नहीं है। इस मन को कभी बैठ कर हमने देखा नहीं कि यह क्या कर रहा है। इस मन को भी देखना जरूरी है। कभी घड़ी, आधा घड़ी को दिन में, रात में, द्वार बंद करके बैठ जाएं, सिर्फ यह देखने के लिए कि मन क्या कर रहा है। लड़ने के लिए नहीं; मन से लड़ना नहीं है कि यह गलत है, यह नहीं आना चाहिए; यह ठीक है, यह आना चाहिए। ऐसा नहीं; मन में जो भी आ रहा है, उसे मैं देखूंगा। जैसे फिल्म पर चलती हुई कहानी को कोई देखता है, ऐसे मन के पर्दे पर जो भी चल रहा है, मैं देखूंगा।
देखने की शर्त हैः न तो कंडेमनेशन, निंदा मत करना मन की; अन्यथा देखना बंद हो जाएगा। मन बहुत बारीक है, बहुत डेलिकेट, बहुत सूक्ष्म है। अगर किसी चीज की निंदा की, तो वह पीछे सरक जाएगी चीज, फिर वह दिखाई नहीं पड़ेगी।
मन के दो हिस्से हैंः एक चेतन मन है और एक अचेतन मन है। चेतन मन बहुत छोटा सा है, अचेतन मन नौ गुना बड़ा है। जैसे ही किसी चीज पर आपने कहा, यह बुरी है, यह नहीं होनी चाहिए। वह चेतन से हट कर अचेतन में चली जाती है, अंधेरे में चली जाती है। वह आपसे डर गई, वह अब अंधेरे में चली जाएगी। वह रहेगी, जाएगी नहीं कहीं। लेकिन अब आपके सामने नहीं आएगी, आपके पीछे चली जाएगी।
मन की निंदा मत करना।
लेकिन हमें हजारों साल से यही सिखाया गया है कि मन की निंदा करो। हमें कहा जाता है, मन शत्रु है। हमें कहा जाता है, मन दुश्मन है, उसका नियंत्रण करो। हमें कहा जाता है, मन में जो बुरा है उसको हटाओ, जो अच्छा है उसे लाओ। और हमें पता ही नहीं कि अच्छा और बुरा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अच्छे और बुरे को अलग नहीं किया जा सकता। अगर कोई आदमी एक ही सिक्के के एक पहलू से मुक्त होना चाहे और दूसरे को बचाना चाहे, तो पागल हो जाएगा। फेंको तो दोनों फिंक जाते हैं, बचाओ तो दोनों बच जाते हैं। एक नहीं बचाया जा सकता। लेकिन हमें सिखाया गया है, अच्छे को बचाओ, बुरे को हटाओ। अच्छा और बुरा एक ही चीज के दो पहलू हैं। इसलिए जो संत है वह दोनों फेंक देता है--अच्छे और बुरे दोनों। तब जो शेष रह जाता है, वह बात ही और है। न वह अच्छा है, न वह बुरा है।
यह जो चित्त है हमारा, यह जो सतत चित्त की चलती हुई प्रक्रिया है, यह
जो प्रोसेस है माइंड की, इसको घड़ी, दो घड़ी कभी एकांत में बैठ कर सिर्फ देखने की जरूरत है। इस तरह जैसे आकाश में पक्षी उड़ रहे हैं और हम नीचे बैठ कर देखते हों; या समुद्र की लहरें आकर तट से टकरा रही हैं--हम कोई निर्णय नहीं लेते कि अच्छी हैं कि बुरी हैं--किनारे पर बैठे हैं और देख रहे हैं। हम यह नहीं कहते कि आकाश में उड़ता हुआ फलां पक्षी अच्छा है, फलां बुरा है-- बस नीचे बैठे हैं और देखते हैं। ऐसे ही मन के आकाश में जो विचारों के पक्षी चलते हैं या मन के सागर में जो विचारों की लहरें चलती हैं, चुपचाप बैठ जाएं और देखें कि क्या चल रहा है। सिर्फ देखना काफी है, कुछ और करना जरूरी नहीं। अगर चार-छह महीने निरंतर देखने का एक घंटे भी प्रयोग हो, तो आप चकित हो जाएंगे। जितनी देखने की क्षमता बढ़ेगी, उतने ही विचार कम होते चले जाएंगे। जितना आप होश से देखेंगे, उतने ही विचार गिर जाएंगे। और एक घड़ी ऐसी आएगी कि मन तो होगा, लेकिन विचार बिल्कुल नहीं होंगे। और जिस दिन ऐसी स्थिति आ जाती है, विचारशून्य मन की, उसी दिन--उसी दिन--हम मन से भी ऊपर उठ जाते हैं। शरीर के जागरण से शरीर के ऊपर उठता है व्यक्ति, मन के प्रति जागरण से मन से ऊपर उठ जाता है। और तब वहां प्रवेश होता है जो आत्मा है। शरीर और मन से मुक्त हुए बिना कोई अंदर प्रवेश नहीं पा सकता।
लेकिन शरीर और मन से मुक्त होने के लिए न तो शरीर को कष्ट देने की जरूरत है, न भूखा मारने की जरूरत है, न धूप में खड़ा करके तपश्चर्या करने की जरूरत है। शरीर से मुक्त होने के लिए शरीर की क्रियाओं के प्रति जागने की जरूरत है।
मेरे एक मित्र सीढ़ियों से गिर पड़े और बहुत चोट खा गए। पैर में बहुत असह्य दर्द, कोई सत्तर साल की उम्र है। मैं उन्हें देखने गया। डाक्टरों ने

कहा कि तीन महीने तक बिस्तर से हिलना भी नहीं है। और वे मित्र बहुत सक्रिय आदमी हैं। इस सत्तर साल की उम्र में भी भाग-दौड़, चलना-फिरना, काम! एक क्षण खाली, एक क्षण व्यर्थ बैठना मुश्किल है, आराम करना कठिन है। तीन महीने उन्हें एक ही, सीधा पड़े रहना पड़ेगा! मैं उन्हें देखने गया। वे रोने लगे और कहने लगे, इससे तो अच्छा था कि मैं मर जाता। तीन महीने मैं कैसे पार होऊंगा? तीन महीने बरदाश्त करना मुश्किल है। अभी तीन ही दिन बीते हैं और मैं घबड़ा गया हूं। और डाक्टर कहते हैं, तीन महीने हिलना भी नहीं है, करवट भी नहीं लेनी है, सीधे ही पड़े रहें, तो ही पैर ठीक हो सकेंगे। और पैर में बहुत तकलीफ है, उसे सहना मुश्किल है। अगर मैं काम में लग जाऊं तो शायद तकलीफ भूल भी जाए। लेकिन कोई काम नहीं है तो वह तकलीफ ही तकलीफ, तकलीफ ही तकलीफ मालूम हो रही है।
मैंने उनसे कहा, एक छोटा सा प्रयोग करें, तकलीफ के प्रति जागने का प्रयोग करें। आंख बंद कर लें, मैं आपके पास बैठा हूं, और तकलीफ को देखें कि कहां है, पिन प्वाइंट करें कि कहां है। अभी आप कहते हैं पूरे पैर पर तकलीफ है। पूरे पैर पर नहीं हो सकती, कोई खास केंद्र होगा जहां सर्वाधिक होगी। तो सरकें, धीरे-धीरे केंद्र पर आएं। आंख बंद करके देखें कि ठीक वह केंद्र कहां है, जहां तकलीफ है, उस केंद्र पर पहुंचें।
उन्होंने आंख बंद कर ली। और मैंने कहा, हां, खोजें, खोजें, खोजें... । वे आंख बंद करके खोज करने लगे और उस जगह उनका चित्त पहुंच गया जहां तकलीफ थी। और पंद्रह मिनट बीते, बीस मिनट बीते--मैंने उनसे पंद्रह मिनट के लिए कहा था--पैंतीस मिनट बीते, पैंतालीस मिनट बीते... और मैं उनका बाहर बैठा चेहरा देख रहा हूं, उनका चेहरा शांत होता जा रहा है, जैसे तकलीफ विलीन हो गई हो। कोई पैंसठ मिनट पर उन्होंने आंख खोली और कहा, यह तो बड़ी हैरानी की बात
हो गई! जैसे-जैसे मैंने गौर से देखा तो पता चला, पूरे पैर पर तकलीफ भ्रम थी, पूरे पैर पर तकलीफ नहीं थी, वह सिर्फ ख्याल था। तकलीफ बहुत छोटी जगह थी, एक प्वाइंट पर थी। धीरे-धीरे मैं उस प्वाइंट पर पहुंच गया। और जब मैं ठीक उस प्वाइंट पर पहुंचा जहां तकलीफ थी, दर्द था, तो मैं एकदम हैरान रह गया, मुझे दिखाई पड़ाः दर्द वहां है और मैं यहां हूं, और दर्द और मेरे बीच लंबा फासला है, मैं दर्द नहीं हूं।
कभी किसी दर्द के प्रति जाग कर देखें और आपको पता चलेगा, आप दर्द नहीं हैं। मैंने उनसे कहा, ये तीन महीने भगवान का आशीर्वाद समझें, यह मौका कभी नहीं मिलेगा, तीन महीने दर्द के प्रति जागें।
कोई तीन महीने बाद मैं उनसे मिलने गया, वे आदमी दूसरे हो गए थे। उन्होंने मुझसे कहा कि सच में ही भगवान की कृपा है, अन्यथा मैं ऐसे ही मर जाता। मैं दर्द के प्रति ही जागने की कोशिश में धीरे-धीरे शरीर के प्रति जाग गया हूं--क्योंकि दर्द शरीर में था, दर्द के प्रति जागा, शरीर के प्रति जागा। और मुझे अदभुत अनुभव हुए इन तीन महीनों में, वह आपसे कहना चाहता हूं।
मैंने कहा, क्या हुआ?
उन्होंने कहा, पहला तो मुझे यह अनुभव हुआ कि मैं शरीर नहीं हूं। और तीन महीने में यह प्रतीति इतनी गहरी और स्पष्ट हो गई कि मैं शरीर नहीं हूं कि अब मुझे मृत्यु का भी कोई भय नहीं है। क्योंकि मैं जानता हूं, शरीर ही मरेगा, मैं नहीं मर सकता हूं।
लेकिन शरीर और हमारे बीच फासला नहीं है, डिस्टेंस नहीं है। हम कभी जागे ही नहीं। ध्यान रहे, जिस चीज के प्रति आप जागेंगे, उसी से फासला हो जाएगा। जाग ही आप उस चीज के प्रति सकते हैं, जो आप नहीं हैं। क्योंकि आप जागेंगे, हमेशा दूसरी चीज के प्रति जागेंगे। शरीर के प्रति जागेंगे और शरीर अलग हो जाएगा।
एक फकीर था। मुसलमान फकीर था शेख फरीद। शेख फरीद के पास कोई गया और पूछने लगा कि मैंने सुना है कि जीसस को सूली दी गई। और जीसस सूली पर लटकाए जा रहे थे तो भी हंस रहे थे। यह कैसे हो सकता है कि आदमी का शरीर लटकाया जा रहा हो सूली पर और आदमी हंसता हो?
और उस आदमी ने पूछा, मैंने यह भी सुना है कि मंसूर के साथ तो और भी दुर्व्यवहार किया गया। मंसूर के पहले पैर काटे गए, फिर हाथ काटे गए, फिर

आंखें फोड़ी गईं और मंसूर हंसता रहा। यह नहीं हो सकता! यह कैसे हो सकता है? जिसके पैर कट गए हों और पैर से लहू गिर रहा हो, जिसके हाथ कट गए हों और जिसकी आंखें फोड़ दी गई हों--वह हंस रहा हो, यह नहीं हो सकता! यह कभी नहीं हो सकता! यह कैसे हो सकता है? मैं पूछने आया हूं।
शेख फरीद हंसने लगा। उसके पास एक नारियल पड़ा था, उसने उठा कर उस आदमी
को दिया और कहा कि जाओ, इस नारियल को फोड़ लाओ। एक बात ख्याल रखना, इसकी खोल टूट जाए लेकिन भीतर की गरी न टूटे।
उस आदमी ने कहा, यह नहीं हो सकेगा। नारियल कच्चा है, खोल और गरी जुड़े हुए हैं, यह नहीं हो सकता। मैं खोल तोडूंगा, गरी भी टूट जाएगी।
फरीद ने दूसरा नारियल उठा कर दिया, सूखा नारियल, और कहा, इससे हो सकता है? इसकी गरी को बचा कर ले आना, खोल तोड़ देना।
उस आदमी ने कहा, यह हो सकता है।
फरीद ने पूछा, क्यों?
उस आदमी ने कहा, गरी और खोल के बीच फासला हो गया। हम खोल को तोड़ देंगे, भीतर की गरी साबुत बच सकती है। लेकिन कच्चे नारियल में यह नहीं हो सकता। तो फरीद ने कहा कि बस तू समझा कि नहीं समझा? जीसस और मंसूर जैसे लोग सूखे नारियल हैं, उनके शरीर और उनके बीच फासला है। तुम शरीर को चोट पहुंचाओ, वह चोट शरीर से भीतर नहीं जाती, वह गरी तक नहीं पहुंचती, वह आत्मा तक नहीं पहुंचती। और हम सब कच्चे नारियल हैं। हमारे ऊपर चोट पहुंचती है, वह भीतर तक पहुंच जाती है, क्योंकि बीच के फासले का हमें कोई भी पता नहीं है।
शरीर के प्रति जागरण से, स्वयं और शरीर के बीच डिस्टेंस, फासला पैदा होता है। और वह फासला इतना है कि आप हैरान हो जाएंगे। वह फासला जमीन और आसमान के बीच जो फासला है, इससे ज्यादा है। वह फासला, जमीन और आसमान के बीच जो फासला है, इससे ज्यादा है। यह फासला कभी पूरा किया जा सकता है जमीन और आसमान के बीच का; शरीर और आत्मा के बीच का फासला कभी पूरा नहीं किया जा सकता। वे दिशाएं ही अलग हैं, डायमेंशन अलग हैं। उनके बीच जो फासला है, वह दो बिल्कुल विभिन्न चीजों का फासला है, जिनके बीच कभी भी फासला पूरा नहीं किया जा सकता।
लेकिन हमें तो लगता है कि मैं शरीर हूं--हमने फासला पूरा कर लिया, नींद में यह फासला पूरा हो गया। जैसे एक आदमी पोरबंदर में सोए और सपना देखे कि पोरबंदर में नहीं है, पेकिंग में है। सपने में फासला पूरा हो गया। उसे नींद में पता भी नहीं चल रहा कि वह पोरबंदर में है, वह पेकिंग में समझ रहा है अपने को। सुबह नींद खुले और वह जाग कर हैरान हो जाए और वह कहे कि मैं पेकिंग से वापस कैसे आया? क्योंकि मैं सपने में पेकिंग में था! मैं लौटा कैसे? मैं गया कैसे? तो हम उससे कहेंगे, न तुम गए, न तुम लौटे; तुम्हें सिर्फ ख्याल पैदा हुआ कि तुम गए और तुम लौटे। तुम सदा यहीं थे, रात भी तुम यहीं थे, तुम पोरबंदर में ही थे, पेकिंग में तुम गए ही नहीं, पेकिंग तुम पहुंचे ही नहीं, लौटे भी तुम नहीं; पेकिंग में होने का सिर्फ ख्याल था, सिर्फ इल्यूजन था।
आदमी की आत्मा शरीर तक कभी पहुंची ही नहीं है और न लौटने का सवाल है, सिर्फ ख्याल है कि हम शरीर में हैं, कि मैं शरीर हूं। यह शरीर में होना सिर्फ एक सपना है। शरीर से लौटना नहीं है, सिर्फ जागना है और सपना टूट जाएगा। और पेकिंग से लौटना नहीं पड़ेगा, आप पाएंगे कि आप पोरबंदर में हैं। आदमी आत्मा में ही है, शरीर वह हो नहीं गया है; बस शरीर में होने का ख्याल पैदा हो गया है कि मैं शरीर में हूं। और ख्याल अगर पैदा हो जाए, और ख्याल अगर मजबूत हो जाए, और अगर हम उसी ख्याल को मजबूत करते चले जाएं, तो आत्मा भूल जाती है और शरीर ही रह जाता है।
अमेरिका में सौ वर्ष पहले ऐसा हुआ। लिंकन की शताब्दी मनाई जा रही थी।
एक आदमी की खोज की गई जो लिंकन जैसा दिखाई पड़ता था। बहुत मुश्किल से वह आदमी मिला। और एक आदमी मिल गया जिसकी शक्ल ठीक लिंकन जैसी थी। उसको लिंकन का पार्ट अदा करने के लिए पूरे अमेरिका में घुमाया गया। जगह-जगह लिंकन के जीवन-चरित्र का नाटक हुआ और उस आदमी ने अब्राहम लिंकन का पार्ट किया। एक साल तक वह आदमी एक कोने से दूसरे कोने तक लिंकन का पार्ट करता रहा।

लेकिन साल भर बाद एक बड़ी गड़बड़ हो गई। नाटक खतम हो गया, शताब्दी समाप्त
हो गई, समारोह बंद हो गया और उस आदमी को यह भ्रम पैदा हो गया कि वह अब्राहम लिंकन है। वह भूल गया, पागल हो गया! घर लौट आया, लेकिन अपना नाम बताने लगा अब्राहम लिंकन! पहले तो लोगों ने समझा कि वह मजाक कर रहा है। लेकिन मजाक नहीं थी। उसने जो कपड़े नाटक में पहने थे वह उतारने से इनकार कर दिए। उसने कहा, यही तो मेरे कपड़े हैं। वह उन्हीं कपड़ों को पहन कर सड़कों पर निकलने लगा। वह बिल्कुल लिंकन तो मालूम होता था, कपड़े भी लिंकन के पहनता था, वही लिबास पुराना जो लिंकन का था, उसी तरह छड़ी रखता था, उसी चाल से चलता था। पहले तो लोगों ने समझा कि वह मजाक कर रहा है, लेकिन जब महीने, दो महीने बीत गए और घर के लोग, पत्नी, बेटे, वह किसी को मानता ही नहीं था, वह कहता था, मैं अब्राहम लिंकन हूं।
तब तो परेशानी हुई। उसे बहुत समझाया गया, लेकिन वह मानने को राजी नहीं हुआ। उसे बहुत डराया-धमकाया गया, लेकिन वह मानने को राजी नहीं हुआ। फिर लोगों को शक हुआ कि यह खुद अपने भीतर तो जानता ही होगा कम से कम कि मैं अब्राहम लिंकन नहीं हूं। बहुत भीतर तो जानता होगा।

तो एक मशीन होती है लाई-डिटेक्टर, जिस पर झूठ पकड़ी जा सकती है। उस मशीन
पर उसको खड़ा किया गया।
उस मशीन पर खड़ा करके अगर आपसे पूछा जाए, तो जो सत्य है वह आप बोलेंगे
तो आपके हृदय की गति दूसरी रहती है और आप असत्य बोलेंगे तो हृदय की गति में फर्क पड़ जाता है। इसलिए वह मशीन नीचे हृदय की गति आंक लेती है कि फर्क कब पड़ा। जैसे आपसे पूछा कि आप स्त्री हो कि पुरुष? आपने कहा, मैं पुरुष हूं। तो झूठ बोलने का कोई कारण नहीं है, मशीन नीचे आपकी गति अंकित करेगी। आपसे पूछा कि इस समय कितना बजा है घड़ी में? आपने कहा, नौ। तो झूठ बोलने का कोई कारण नहीं है, मशीन नीचे अंकित करेगी। आप से आठ-दस ऐसे प्रश्न पूछे जाएंगे, जिनमें झूठ बोलने का कोई कारण ही नहीं है। फिर आपसे असली सवाल पूछा जाएगा। यही उसके साथ किया गया। दस सवाल पूछे गए, उसने सबका ठीक जवाब दिया। फिर उससे पूछा गया, तुम अब्राहम लिंकन हो? वह घबड़ा गया था, वह परेशान हो गया था इस बात से, लोग पूछ-पूछ कर हैरान कर दिए थे। उसने कहा, मैं अब्राहम लिंकन नहीं हूं। लेकिन मशीन ने नीचे से बताया कि यह आदमी झूठ बोल रहा है! वह तो भीतर से जानता था कि मैं अब्राहम लिंकन हूं। मशीन ने बताया कि यह आदमी इस वक्त झूठ बोल रहा है। तब तो बड़ी मुश्किल हो गई।
कैसे यह ख्याल इसे पैदा हो गया? यह ख्याल पैदा हो सकता है। हमें लगेगा
वह आदमी पागल था। लेकिन जो जानते हैं वे कहेंगे, हम सब भी पागल हैं! हम को भी यह ख्याल पैदा हो गया है कि हम शरीर हैं।
और ये ख्याल बहुत लोगों को पैदा होते हैं। जब स्टैलिन रूस में हुकूमत में था, तो रूस के कई पागलों को यह ख्याल था कि वे स्टैलिन हैं। जब चर्चिल हुकूमत में था, तो कई पागलों को इंग्लैंड में ख्याल था कि वे चर्चिल हैं। नेहरू जब हुकूमत में थे, तो हिंदुस्तान में कम से कम दस आदमी थे जिनको यह ख्याल था कि वे नेहरू हैं। एक ऐसे आदमी से नेहरू का मिलना भी हो गया।
एक पागलखाने में नेहरू गए। और उस पागलखाने में एक पागल था जो ठीक हो गया था। पागलखाने के अधिकारियों ने उसे रोक रखा था कि कल नेहरू आने वाले हैं, उन्हीं के हाथ से इसको मुक्ति दिलवा देंगे तो यह भी खुश होगा, जलसा भी हो जाएगा। नेहरू उससे मिल कर बहुत खुश हुए और उन्होंने कहा, मैं बहुत खुश हूं कि तुम ठीक हो गए। तुम बिल्कुल ठीक हो गए हो?
उस आदमी ने कहा, मैं बिल्कुल ठीक हो गया हूं। लेकिन महाशय मैं भूल गया पूछना आपसे कि आप हैं कौन?
तो नेहरू ने कहा, मैं? तुम्हें पता नहीं! मैं जवाहरलाल नेहरू हूं।
वह आदमी खूब हंसने लगा और उसने कहा, महाशय, आप भी तीन साल यहां रह जाइए
तो ठीक हो जाएंगे। तीन साल पहले मुझे भी यही ख्याल था कि मैं जवाहरलाल नेहरू हूं। लेकिन तीन साल में मैं बिल्कुल ठीक हो गया हूं।
आदमी के भ्रमों की कोई सीमा नहीं है। भ्रम तोड़ने का एक ही उपाय है-- जागरण। और पहला बुनियादी भ्रम है आदमी को कि मैं शरीर हूं। और जब तक यह भ्रम बना हुआ है, तब तक मैं आत्मा हूं यह नहीं जाना जा सकता।

लेकिन कुछ साधु-संत सिखाते हैं कि बैठ कर यह विचार करो कि मैं शरीर नहीं हूं, मैं शरीर नहीं हूं... । इससे कुछ भी नहीं होगा। क्योंकि जितनी बार आप कहते हो, मैं शरीर नहीं हूं, उतनी बार ही आप यह बात सिद्ध कर रहो हो कि आप जानते हो कि आप शरीर हो। साधु-संत सिखाते हैं कि बैठ कर यह जप करो कि मैं शरीर नहीं हूं, मैं शरीर नहीं हूं... । लेकिन इस जप का मतलब क्या है? इस जप का मतलब यह है कि आप मानते हो कि आप शरीर हो और उस मान्यता को तोड़ने के लिए उलटी मान्यता पैदा कर रहे हो।
अगर एक पुरुष बैठ कर एक कोने में कहे कि मैं पुरुष हूं, मैं पुरुष हूं,
तो हमें शक होगा कि इस आदमी के दिमाग में कुछ गड़बड़ है। क्योंकि अगर यह पुरुष है, तो दोहराता क्यों है? अगर आपको पता चल गया है कि आप शरीर नहीं हैं, तो आपको दोहराने की जरूरत नहीं है। दोहराने से पता नहीं चल जाएगा, दोहराने से सिर्फ आप एक नया भ्रम पैदा कर रहे हो। पुराना भ्रम कायम है और नया भ्रम पैदा कर रहे हो।
नहीं; दोहराना नहीं है, शरीर के प्रति जागना है। जागने से यह पता चल जाएगा कि मैं शरीर नहीं हूं। इसको दोहराना नहीं पड़ेगा। जैसे मैंने कहा कि एक आदमी पोरबंदर में सोया है और सपना देखता है कि मैं पेकिंग में हूं। और वह सपने में कहे कि नहीं, मैं पेकिंग में नहीं हूं; नहीं, मैं पेकिंग में नहीं हूं; नहीं, मैं पेकिंग में नहीं हूं; तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि यह कहना कि मैं पेकिंग में नहीं हूं, इस बात को मान लेने से शुरू होता है कि मैं पेकिंग में हूं। इसके कहने की कोई जरूरत नहीं है।
हम सिर्फ उसी को निगेट करते हैं, विरोध करते हैं, जिसको हम स्वीकार कर लेते हैं। स्वीकृति को ही विदा करना है, अस्वीकृति नहीं पैदा करनी है। और स्वीकृति कैसे विदा होगी? स्वीकृति जागने से विदा होगी, क्योंकि स्वीकृति निद्रा से पैदा हुई है। हम सोए हुए हैं, इसलिए लगता है कि हम शरीर हैं। हम जाग जाएंगे, लगेगा कि हम शरीर नहीं हैं।
इसलिए पहला स्मरण है शरीर की क्रियाओं के प्रति। दूसरा स्मरण है मन
के विचारों के प्रति। और जैसे ही मन के विचारों के प्रति हम जागेंगे, वैसे ही विचार खो जाएंगे। विचार भी निद्रा से पैदा होते हैं। और जितनी गहरी निद्रा हो, विचार उतने ही सत्य मालूम होते हैं।
इसीलिए तो नींद में सपना सच मालूम होता है। दिन में आपको उतना सच नहीं मालूम होता, क्योंकि दिन में आप थोड़े जाग गए हैं। आप शराब पी लें, और दिन में ही सपना सच मालूम होने लगेगा। क्योंकि शराब में फिर आप सो गए हैं। अभी अमेरिका में दो नई चीजें चलती हैं--लिसर्जिक एसिड और मैस्कलीन।
इन दोनों चीजों को लेने से आदमी दिन में ही जागते ही ऐसे सपने देखने लगता है जिनका कोई हिसाब नहीं। जैसा भांग और गांजे से होता है, वैसे ही ये नये सिंथेटिक ड्रग, नई बनाई गई दवाएं हैं, जिनको लेने से आदमी अदभुत आनंद में पहुंच जाता है, जो देखना चाहे वही दिखाई पड़ने लगता है। स्वर्ग देखिए, नरक देखिए, भगवान देखिए--जो भी देखना चाहें देखिए--बस एक ड्रग ले लीजिए और छह घंटे के लिए खो जाइए। छह घंटे फिर आप दूसरी दुनिया में हैं। प्रत्येक विचार सत्य मालूम होगा।
जिस मात्रा में नींद गहरी होगी, बेहोशी होगी, विचार उतने ही सत्य मालूम होंगे। जिस मात्रा में जागरण होगा, विचार असत्य होते चले जाएंगे। जागरण पूर्ण होगा, विचार शून्य हो जाएंगे। जागे हुए चित्त में कोई विचार नहीं होता।
तो दूसरी प्रक्रिया है साक्षी कीः मन के प्रति जागना। यह घंटे भर कभी एकांत में बैठ कर करना जरूरी है। और बन सके तो दिन में जब भी ख्याल आ जाए, तब मन के विचारों के प्रति होश रखना जरूरी है, अवेयरनेस रखना जरूरी है। एक छह महीने का प्रयोग और चित्त को रूपांतरित कर देता है।
ये दो जागरण आपको करने हैं, तीसरा जागरण अपने आप आता है। जो आदमी शरीर
के प्रति और मन के प्रति जाग जाता है और जिस आदमी को यह अनुभव हो जाता है कि मैं शरीर नहीं हूं और जिसको यह अनुभव हो जाता है कि मन के विचार शांत हो गए, उसको तीसरा जागरण अपने आप आता है--वह है आत्म-जागरण। शरीर के प्रति जागना पड़ता है, मन के प्रति जागना पड़ता है; आत्म-जागरण अपने आप आता है। दो जागरण

हमें करने पड़ते हैं, तीसरा जागरण अपने से उपलब्ध होता है। ये दो जागरण जहां पूरे हो जाते हैं, तीसरा जागरण प्रकट हो जाता है।
जैसे कोई आदमी छत पर खड़ा हो और कूदना चाहे छत से, तो कूदेगा। कूदने के बाद अगर वह हम से पूछे कि अब मैं जमीन पर पहुंचने के लिए और क्या करूं?
तो हम उससे कहेंगे, अब तुम्हें कुछ भी नहीं करना, अब जमीन तुम्हें खींच लेगी। तुम कूद गए, इतना काफी है। अब बाकी काम जमीन करेगी। जमीन में ग्रेविटेशन है, वह तुम्हें खींच लेगा। छत से कूदो मत, तो जमीन का ग्रेविटेशन काम नहीं करेगा, गुरुत्वाकर्षण काम नहीं करेगा। छत से कूद जाओ, फिर तुम्हें कुछ भी नहीं करना है, फिर जमीन खींच लेगी।
हम शरीर और मन पर रुके हुए हैं, अटके हुए हैं। वहां से हम कूद जाएं, फिर आत्मा का ग्रेविटेशन है, आत्मा की कशिश है, आत्मा का गुरुत्वाकर्षण है, वह जमीन के गुरुत्वाकर्षण से भी ज्यादा है। बस एक बार हम कूद जाएं शरीर की छत से, फिर आत्मा खींच लेती है।
एक बहुत प्राचीन इजिप्त की किताब में एक वचन है कि तुम एक कदम चलो परमात्मा की तरफ और परमात्मा तुम्हारी तरफ हजार कदम चलता है। एक कदम तुम उठाओ, हजार कदम परमात्मा की शक्ति उठाती है। उसे उठाना नहीं पड़ता, बस तुम्हारा एक कदम छलांग बन जाती है और फिर खींच लिया जाता है आदमी।
शरीर और मन से कूद जाना है, फिर हम वहां पहुंच जाते हैं जहां आत्मा है।
वह तीसरा जागरण अपने आप आता है। दो साक्षीभाव स्वयं साधने हैं, तीसरा अपने आप आता है। यह कहना भी शायद गलत है कि अपने आप आता है। वह तीसरा साक्षीभाव मौजूद है हमेशा से, उसका हमें पता नहीं चल रहा, क्योंकि हम दो तलों पर नींद में खो गए हैं। वह सदा से मौजूद है, वह है! हम यहां से जागे और वह दिखाई पड़ जाएगा।
जैसे कि हम अभी आंख बंद करके बैठ जाएं, तो सूरज है बाहर, लेकिन हमें पता नहीं चलेगा। हम आंख खोलें और हम कहेंगे सूरज आ गया। सूरज आ नहीं गया, सूरज तब भी था जब हम आंख बंद किए बैठे थे। लेकिन आंख बंद हो तो सूरज दिखाई कैसे पड़े?
हम शरीर की तरफ खोए हुए हैं, इसलिए वह हमें नहीं दिखाई पड़ता जो शरीर के पीछे है। हम शरीर से उठ जाएं और वह हमें दिखाई पड़ जाएगा जो पीछे है।
जिस दिन बुद्ध को सत्य की उपलब्धि हुई, लोगों ने उनसे पूछा कि तुम्हें क्या मिल गया है? तुम क्यों नाचते हो? क्यों इतने खुश हो रहे हो? तुम्हें मिला क्या है?
बुद्ध ने कहा, मिला कुछ नहीं; जो सदा से मिला हुआ था, उसका ही पता चल गया है। जो सदा से ही मिला हुआ था, उसका ही पता चल गया है।
बुद्ध ने कहा, मिला कुछ भी नहीं; कुछ खो जरूर गया है--नींद खो गई है, अज्ञान खो गया है। ज्ञान मिला है, ऐसा मैं नहीं कहूंगा। क्योंकि ज्ञान था! मैं नींद में था, इसलिए उसका पता नहीं चलता था।
सत्य है हमारे पास, उसे खोजने कहीं जाना नहीं है, सिर्फ जागना है।
एक छोटी सी कहानी, और अपनी बात मैं पूरी कर दूंगा।
एक छोटी सी पहाड़ी के पास एक संन्यासी खड़ा हुआ है। और तीन व्यक्ति गांव
के पहाड़ी के पास घूमते हुए निकल रहे हैं। उन तीनों को ख्याल उठा कि सूरज की चमकती रोशनी में यह संन्यासी वहां क्या कर रहा है? एक ने कहा कि कभी-कभी ऐसा होता है, उसकी गाय खो जाती है। और वह अपनी गाय को खोजने पहाड़ पर जाता है, वहां से ऊंचाई पर खड़े होकर देखता है कि गाय कहां है।
लेकिन दूसरे व्यक्ति ने कहा, मित्र, जो आदमी कुछ खोजता है वह आंख खोल
कर खड़ा होता है। वह संन्यासी आंख बंद किए हुए खड़ा है, वह खोज नहीं रहा है। दूसरे मित्र ने कहा कि मैं समझता हूं, कभी-कभी उसके साथी कुछ और लोग भी घूमने आते हैं। वे पीछे रह जाते हैं तो वह खड़े होकर उनकी प्रतीक्षा करता है, जब वे आ जाते हैं तब पहाड़ से नीचे उतर आता है।
लेकिन तीसरे मित्र ने कहा, यह भी ठीक मालूम नहीं पड़ता; क्योंकि जो आदमी किसी की प्रतीक्षा करता है वह कभी-कभी पीछे लौट कर भी देखता है। वह पीछे लौट कर ही नहीं देख रहा, वह एक ही तरफ सिर किए हुए है। तो तीसरे ने कहा, मैं यह नहीं मानता कि वह किसी की प्रतीक्षा कर रहा है, न मैं यह मानता हूं

कि वह गाय की खोज कर रहा है। मेरी समझ है कि वह परमात्मा का स्मरण कर रहा है।
विवाद तेज हो गया और उन तीनों ने कहा, अब इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं
कि हम चलें और उससे ही पूछ लें कि तुम क्या कर रहे हो?
वे तीनों पहाड़ चढ़ कर गए। और पहले आदमी ने जाकर उस संन्यासी को पूछा कि भिक्षुजी, क्या आप अपनी गाय खोज रहे हैं?
उस भिक्षु ने आंख खोली और कहा, गाय? मेरा कुछ भी नहीं है, तो मैं खोजूंगा क्या! मैं खाली हाथ आया और खाली हाथ चला जाऊंगा। और मैं जानता हूं कि मेरे हाथ अभी भी खाली हैं। मैं उस भ्रम में नहीं पड़ता कि मेरा कुछ है। इसलिए खोजने का सवाल ही नहीं। अपने को ही खोज लूं वही बहुत, बस वही मैं हूं। अपने को ही नहीं खोज पाया, गाय को क्या खोजूंगा? समय खराब करने को मेरे पास नहीं है। मैं कुछ खोज नहीं रहा।
वह आदमी हार कर पीछे हट गया। दूसरे आदमी ने कहा, तब तो निश्चय ही कोई मित्र पीछे छूट गया, आप उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं?
उस संन्यासी ने कहा, भाई, मेरा कोई शत्रु नहीं, इसलिए मित्र का भी कोई सवाल नहीं! जिनके शत्रु होते हैं, उनके ही मित्र होते हैं! मेरा न कोई शत्रु है, न मेरा कोई मित्र है! मैं किसी की प्रतीक्षा नहीं कर रहा। प्रतीक्षा किसकी करनी है? और कितनी ही प्रतीक्षा करो, कभी कोई मिल सकता है? अपने से ही मिलना मुश्किल है, दूसरे से मिलना कहां संभव है! मैं किसी की प्रतीक्षा नहीं कर रहा हूं।
वह आदमी भी हार गया। तीसरे आदमी ने कहा, तब तो निश्चित ही जीत मेरी है। मैं आपसे पूछता हूं, क्या आप भगवान का स्मरण कर रहे हैं?
वह फकीर कहने लगा, भगवान? भगवान का मुझे कुछ पता नहीं। जिसका पता नहीं उसका स्मरण कैसे करूं? और पता चल जाएगा तो फिर स्मरण क्यों करूंगा? पता नहीं है तब भी स्मरण नहीं किया जा सकता और पता हो जाए तब स्मरण की जरूरत नहीं रह जाती। मैं किसी का स्मरण नहीं कर रहा हूं।
तो उन तीनों ने पूछा कि फिर महाशय, आप कर क्या रहे हैं यहां खड़े होकर?
तो उस भिक्षु ने बड़ी अदभुत बात कही। उसने कहा, मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं; मैं सिर्फ जागा हुआ खड़ा हूं। उस भिक्षु ने कहा, मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं; मैं सिर्फ जागा हुआ खड़ा हूं। जस्ट स्टैंडिंग इन अवेयरनेस। बस मैं होश में खड़ा हुआ हूं। मैं कुछ कर ही नहीं रहा, बस मैं साक्षी की तरह खड़ा हुआ हूं। आकाश का साक्षी हूं, सूरज का साक्षी हूं, वृक्षों का साक्षी हूं, तुम्हारा साक्षी हूं, अपना साक्षी हूं--बस साक्षी होकर खड़ा हूं।
लेकिन वे मित्र पूछने लगे कि किसलिए साक्षी होकर खड़े हो?
तो उस भिक्षु ने कहा, यह तुम साक्षी होकर खड़े हो जाओ तो ही जान सकते हो। यह तुम भी इसी तरह जब किसी दिन खड़े होओगे तो जान सकोगे। क्योंकि, उस भिक्षु ने कहा, जब तक मैं सोया था, मैंने सब खोया; और जब से मैं जागना शुरू हो गया हूं, मैंने सब पा लिया। सोया हुआ व्यक्ति सब खो देता है--जीवन, सत्य, अमृत, सब! जागा हुआ व्यक्ति सब पा लेता है--जीवन, आत्मा, सत्य, अमृत। अगर पाना है कुछ तो जागना जरूरी है। अगर खोना है तो सोना पर्याप्त है।
हम सब खो रहे हैं, क्योंकि सोए हैं। हम सब भी पा सकते हैं, अगर हम जाग जाएं। और पाने की जो अंतिम अनुभूति है उसका नाम ही परमात्मा है। उसके आगे पाने को कुछ शेष नहीं रह जाता। उसे पाकर सब पाने की दौड़ समाप्त हो जाती है। क्योंकि वही जीवन है, वही आनंद है, वही अमृत है।
इस अमृत की दिशा में, इस जीवन की दिशा में, इन तीन सूत्रों में मैंने कुछ बातें कही हैं। मेरी बातें मुझे समझ लेने से कुछ परिणाम नहीं लाने वाली हैं। वह तो जो उस भिक्षु ने कहा, आप भी जाग कर खड़े हो जाएं, तो कुछ हो सकता है।
थोड़ी कोशिश करें। सोने की तो हम चौबीस घंटे कोशिश करते हैं, कभी घड़ी,
दो घड़ी जागने की कोशिश करें। और इतना मैं कहता हूं कि जीवन के अंत में वही हाथ आएगा जो जागने में पाया है, जो सोने में कमाया है वह सब व्यर्थ हो जाता है।

मेरी बातों को इतनी शांति और इतने प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।